श्री श्री रामकृष्ण कथामृत – 2

दक्षिणेश्वर-मन्दिर

प्रथम खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में नरेन्द्रादि अन्तरंगों के साथ

प्रथम परिच्छेद

पूर्वकथा— श्रीरामकृष्ण की प्रथम प्रेमोन्माद कथा, 1858

(भक्त कृष्णकिशोर, एँड़ेदा के साधु, हलधारी,
यतीन्द्र, जय मुखर्जी, रासमणि)

आज ठाकुर श्रीरामकृष्ण महानन्द में हैं। दक्षिणेश्वर–कालीबाड़ी में नरेन्द्र आए हैं। और भी कई–एक अन्तरंग हैं। नरेन्द्र ने ठाकुरबाड़ी में आकर स्नान करके प्रसाद पाया।

आज आश्विन–शुक्ला–चतुर्थी तिथि, 16 अक्तूबर 1882, सोमवार। आगामी बृहस्पतिवार को सप्तमी तिथि की श्री श्री दुर्गा–पूजा है।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पास राखाल, रामलाल और हाजरा हैं। नरेन्द्र के साथ और भी दो–एक ब्रह्मज्ञानी छोकरे हैं। आज मास्टर भी आए हैं।

नरेन्द्र ने ठाकुर के पास ही आहार लिया है। आहार के बाद ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने अपने कमरे की फरश पर बिछौना बिछाने को कहा, नरेन्द्रादि भक्तगण, विशेषत: नरेन्द्र विश्राम करेंगे। मादुर (बढ़िया चटाई) के ऊपर रजाई और तकिया रखे गए। ठाकुर भी नरेन्द्र के पास बालक की

न्यायीं बिछौने के ऊपर बैठ गए। भक्तों के साथ, विशेषत: नरेन्द्र के साथ, नरेन्द्र की ओर मुख करके सहास्यमुख महानन्द में बातें करते हैं। अपनी अवस्था, अपना चरित्र, बातों ही बातों में बता रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्रादि भक्तों के प्रति)*— मेरी इस अवस्था के पश्चात् केवल ईश्वर की कथा सुनने के लिए व्याकुलता होती थी। कहाँ पर भागवत, कहाँ अध्यात्म, कहाँ महाभारत हो रहा है, खोजता फिरता था। एँड़ेदा के कृष्णकिशोर के पास अध्यात्म सुनने जाया करता था।

''कृष्णकिशोर का कैसा विश्वास! वृन्दावन गया था, वहाँ पर एक दिन जल की प्यास लगी। कुएँ के निकट जाकर देखा, एक व्यक्ति खड़ा हुआ है। पूछने पर उसने कहा, 'मैं नीच जाति का हूँ, आप ब्राह्मण हैं; कैसे आपको जल निकाल कर दूँ?' कृष्णकिशोर ने कहा, 'तू बोल, 'शिव'।' 'शिव-शिव' कहते ही तू शुद्ध हो जाएगा।' उसने 'शिव-शिव' कहकर जल निकाल दिया। ऐसे आचारी ब्राह्मण ने वही जल पी लिया। कैसा विश्वास!

''एँड़ेदा के घाट पर एक साधु आया था। हमने सोचा एक दिन दर्शन करने जाएँगे। मैंने कालीबाड़ी में हलधारी को बताया कि कृष्णकिशोर और मैं साधु को मिलने जाएँगे। तुम चलोगे? हलधारी बोला, 'एक मिट्टी के खाँचे को देखने से क्या होगा?' हलधारी गीता-वेदान्त पढ़ता है ना! जभी तो साधु के लिए कहा, 'मिट्टी का खाँचा'। कृष्णकिशोर से जाकर मैंने यह बात कह दी। वह महाक्रोधित हुआ। और बोला, 'क्या! हलधारी ने ऐसी बात कही है? जो ईश्वर-चिन्तन करता है, राम-चिन्तन करता है, और उसी के लिए सर्वत्याग किया है, उसकी देह मिट्टी का खाँचा! वह नहीं जानता कि भक्त की देह चिन्मय होती है!' इतना गुस्सा कि कालीबाड़ी में फूल तोड़ने आता तो हलधारी के संग मेल होने पर भी मुख फेर लेता। बात नहीं करेगा।

''मुझ से कहा था, 'जनेऊ (यज्ञोपवीत) क्यों फेंक दिया है?' जब मेरी यह अवस्था हुई थी, तब आश्विन के तूफान की भाँति एक कुछ आकर कहाँ पर क्या उड़ाकर ले गया। पहले का चिह्न कुछ भी नहीं रहा! होश नहीं रही! धोती ही गिर जाती है तो 'जनेऊ' कैसे रहेगा! मैंने कहा, 'तुम्हारा एक

बार उन्माद हो तो फिर तुम समझोगे।'

''वही हुआ। उसका निज का ही उन्माद हो गया। तब वह केवल 'ॐ-ॐ' बोलता और एक कमरे में चुपचाप बैठा रहता। मस्तिष्क गरम हो गया है, सब ने यह सोच कर कविराज को बुला लिया। नाटागढ़ के कविराज आ गए। कृष्णकिशोर ने उनसे कहा, अरे भाई, मेरा रोग ठीक तो कर दो, किन्तु जैसे भी हो ये 'ॐकार' को आराम न कर देना! *(सब का हास्य)*।

''एक दिन जाकर देखा, सोच में बैठा हुआ है। पूछा 'क्या हुआ है?' बोला, 'टैक्स वाला आया था— वही सोच रहा हूँ।' कहता था, 'रुपया नहीं मिला तो लोटा-कटोरी बेचकर ले लूँगा।' मैंने कहा, 'क्या होगा सोचने से? लोटा-कटोरी ही तो ले जाएगा। बाँधकर भी यदि ले जाएगा तो तुम्हें तो ले जा नहीं सकेगा। तुम तो 'ख' हो जी'! *(नरेन्द्रादि का हास्य)*। कृष्णकिशोर कहता था, मैं आकाशवत् हूँ। अध्यात्म (रामायण) पढ़ता था कि ना! बीच-बीच में मैं उसे तुम 'ख' हो कहकर ठट्ठा किया करता था। हँस कर मैंने कहा, तुम 'ख' हो; टैक्स तुम्हें तो खींच नहीं सकेगा।

''उन्माद की अवस्था में लोगों से ठीक-ठीक बातें, हक की बातें कह दिया करता था। किसी को भी नहीं मानता था, बड़ा व्यक्ति देखकर भय नहीं होता था।

''यदु मल्लिक के बागान में यतीन्द्र आया था। मैं भी वहाँ पर था। मैंने उससे पूछा, 'कर्त्तव्य क्या है? ईश्वर-चिन्तन करना ही हमारा कर्त्तव्य है कि नहीं?' यतीन्द्र बोला, 'हम संसारी (गृही) लोग हैं। हमारी भी फिर क्या मुक्ति है! राजा युधिष्ठिर ने ही नरक-दर्शन किया था!' तब मुझे बड़ा क्रोध आया। कहा, 'तुम कैसे व्यक्ति हो जी? युधिष्ठिर का केवल नरक-दर्शन ही याद रखा हुआ है? युधिष्ठिर की सत्य-वाणी, क्षमा, धैर्य, विवेक, वैराग्य, ईश्वर में भक्ति— इन में से कुछ भी याद नहीं है!' और भी न जाने क्या-क्या कहने वाला था। हृदय ने मेरे मुख पर हाथ रख कर बन्द कर दिया। यतीन्द्र तनिक बाद ही 'मुझे कुछ काम है' कहकर चला गया।

''अनेक दिनों बाद 'काप्तेन'* के साथ सौरीन्द्र ठाकुर के घर गया था। उनको देखकर कहा था, 'तुम्हें राजा-वाजा नहीं कह सकूँगा, क्योंकि यह झूठी बात होगी।' मेरे संग तनिक देर बातें कीं। तत्पश्चात् साहेब-वाहेब आने-जाने लग गए। रजोगुणी व्यक्ति, नाना कार्य लिए रहता है। यतीन्द्र को सूचना भेजी गई। उसने कहलवा भेजा 'मेरे गले में दर्द है।'

''उसी उन्माद-अवस्था में और एक दिन बराहनगर के घाट पर जय मुखर्जी को देखा था, जप कर रहा था, किन्तु था अन्यमनस्क। तब पास जाकर दो चपेड़ें लगा दीं!

''एक दिन रासमणि कालीमन्दिर में आई। काली-घर में पूजा के समय आती थी और दो-एक गाने गाने के लिए कहती थी। मैं गाना गा रहा हूँ, देखा कि अन्यमनस्क होकर फूल चुन रही है। झट दो चपेड़ें लगा दीं। तब सम्भल कर हाथ जोड़े बैठी रही।

''हलधारी से कहा, 'दादा, यह कैसा स्वभाव हो गया है ? क्या उपाय करूँ ?' तब माँ को पुकारते-पुकारते वह स्वभाव गया।''

(मथुर के संग तीर्थ, 1868— काशी में विषय की बातों के श्रवण से ठाकुर का रोदन)

''उस अवस्था में ईश्वर-कथा के अतिरिक्त और कुछ भी अच्छा नहीं लगता था। विषय की बातें होती सुनकर बैठा-बैठा रोया करता। मथुर बाबू जब मुझे तीर्थों पर साथ ले गए थे, तब काशी में राजा बाबू के मकान में हम लोग कई दिन रहे थे। मथुर बाबू के संग बैठक में बैठा हूँ, राजा बाबू हर भी सब बैठे हैं। देखा कि विषय की बातें कर रहे हैं। इतने रुपए की हानि हुई है, ऐसी-ऐसी बातें। मैं रोदन करने लगा, 'माँ कहाँ पर ले आई हो ? मैं तो रासमणि के मन्दिर में बहुत अच्छा था, तीर्थ करने आकर भी वही कामिनी-कांचन की ही बातें! किन्तु वहाँ पर (दक्षिणेश्वर में) तो विषय की बातें नहीं सुननी

---

* काप्तेन— श्री विश्वनाथ उपाध्याय, नेपाल निवासी, नेपाल के राजा के वकील, राजप्रतिनिधि, कलकत्ता में रहते थे। अति सदाचारनिष्ठ ब्राह्मण और परम भक्त।

पड़ती थीं।'

ठाकुर ने भक्तों को, विशेषत: नरेन्द्र को, थोड़ा विश्राम करने के लिए कहा। स्वयं भी छोटी खाट पर थोड़ा विश्राम करने के लिए गए।

द्वितीय परिच्छेद

(कीर्त्तनानन्द में नरेन्द्रादि के संग में— नरेन्द्र का प्रेमालिंगन)

तीसरा पहर हो गया। नरेन्द्र गाना गा रहे हैं। राखाल, लाटू, मास्टर, नरेन्द्र के ब्राह्म मित्र प्रिय, हाजरा— सब हैं।

नरेन्द्र ने कीर्त्तन गाया, खोल (मृदंग) बजने लगा—

चिन्तय मम मानस हरि चिदघन निरंजन,
किवा अनुपम भाति, मोहन मूरति, भक्त-हृदय-रंजन।
नवरागे रंजित, कोटि शशी-विनिन्दित,
किवा बिजली चमके, से रूप आलोके, पुलके शिहरे जीवन।
हृदि-कमलासने भाबो ताँर चरण,
देखो शान्त मने, प्रेमनयने, अपरूप प्रियदर्शन।
चिदानन्द-रसे, भक्तियोगावेशे, होओ रे चिरमगन।

[भावार्थ— हे मेरे मन, हरि चिद्घन निरंजन का चिन्तन करो। भक्तों के हृदय को प्रसन्न करने वाली वह मोहन मूर्ति कैसी अनुपम ज्योतिर्मय है! नव प्रेम में रंगी हुई, करोड़ों चन्द्रमाओं को लज्जित करने वाली, कैसी अद्भुत बिजली चमकती है! उस रूप के आलोक में जीवन पुलकायमान होकर रोमांचित हुआ रहता है। अपने हृदय रूपी कमल-आसन पर तुम उनके चरणों का ध्यान करो, शान्त मन से प्रेम भरे नयनों से उस अपरूप प्रियदर्शन का दर्शन करो और चिदानन्द के रस में, भक्ति-योग के आवेश में, चिरकाल मग्न हो जाओ।]

नरेन्द्र ने फिर गाया—

सत्यं शिव सुन्दर रूप भाति हृदिमन्दिरे।

निरखि निरखि अनुदिन मोरा डुबिबो रूपसागरे॥
(शे दिन कबे होबे)। (दीनजनेर भाग्ये नाथ)।

ज्ञान-अनन्तरूपे पोशिबे नाथ मम हृदे,
अवाक् होइये अधीर मन शरण लोइबे श्रीपदे।

शान्तम् शिव अद्धितीय राज-राज चरणे,
बिकाइबो ओहे प्राणसखा, सफल करिबो जीवने।
एमन अधिकार, कोथा पाबोआर, स्वर्ग भोग जीवने (सशरीरे)।

शुद्धमपापविद्धम् रूप, हेरिये नाथ तोमार,
आलोक देखिले आँधार जेमन जाय पलाइये सत्वर;
तेमनि नाथ, तोमार प्रकाशे पलाइबे पाप आँधार।

आनन्द अमृतरूपे उदिबे हृदय आकाशे,
चन्द्र उदिले चकोर जेमन क्रीड़ये मन हरषे,
आमराओ नाथ, तेमनि कोरे मातिबो तव प्रकाशे।

ओहे ध्रुवतारासम मम हृदे ज्वलन्त विश्वास हे,
ज्वालि दिए दीनबन्धु पुराओ मनेर आश हे;
आमि निशिदिन प्रेमानन्दे मगन होइये हे;
आपनारे भूले जाबो, तोमारे पाइए हे।
(शे दिन कबे होबे हे)।

[भावार्थ— हृदय-मन्दिर में सत्यं-शिवं-सुन्दरं का रूप प्रकाशित हो रहा है। वह दिन कब होगा जब मेरा मन इस रूप-सागर में रात-दिन उसे देख कर डूबा रहेगा? मेरे हृदय में हे नाथ! कब ज्ञान अनन्त रूप में वृद्धि पाएगा और अवाक् होकर यह अधीर मन आपके श्रीचरणों की शरण लेगा? आप राज-राजेश्वर के श्रीचरणों में जो शान्त, शिव और अद्धितीय हैं— हे प्राणसखा, कब यह मन बिकेगा और जीवन सफल करेगा? और इसी जीवन में सशरीर ऐसा स्वर्गभोग का अधिकार कहाँ से पाऊँगा! हे नाथ! तुम्हारा शुद्ध और अपापविद्ध रूप देखकर, तुम्हारा प्रकाश देखकर, पाप-अंधेरा ऐसे ही भाग जाता है, जैसे आलोक को देखकर अंधेरा तुरन्त पलायन कर जाता है। जैसे चन्द्रमा के उदय होने पर चकोर मन में हर्षित होकर क्रीड़ा करने लगता है, वैसे ही मेरे हृदय-आकाश में आनन्द रूप

अमृत उदय होगा, और मैं हे नाथ! तब वैसे ही तुम्हारे प्रकाश में मतवाला हो जाऊँगा। हे दीनबन्धु! ध्रुवतारे की भाँति मेरे हृदय में ज्वलन्त विश्वास प्रकाशित करके मेरे मन की आशा पूर्ण करो; मैं तब रात-दिन प्रेमानन्द में मग्न होकर, आपको पाकर, अपने को भूल जाऊँगा। वह दिन कब होगा?]

आनन्द वदने बोलो मधुर ब्रह्म-नाम।
नामे उथलिबे सुधासिन्धु पिये अविराम।
(पान करो आर दान करो हे)॥

यदि होये कखनो शुष्क हृदय, करो नाम-गान।
(विषय-मरीचिकाय पड़े हे) (प्रेमे हृदय, सरस होबे हे)।

(देखो जेनो भूलो ना रे शेइ महामन्त्र)।
(विपदकाले डेको ताँरे दयाल पिता बोले)।

शबे हूँकारिए छिन्न करो पापेर बन्धन।
(जय ब्रह्म जय बोले हे)॥
एशो ब्रह्मानन्दे माति सबे होइ पूर्णकाम।
(प्रेमयोगे योगी होये हे)॥

[भावार्थ— आनन्द वदन से बोलो मधुर ब्रह्म-नाम। नाम से सुधा-सिन्धु उमड़ेगा, उसे अविराम पियो और दान करो हे। विषय-मरीचिका में पड़कर यदि कभी हृदय शुष्क हो जाए तो उसका नाम-गान करो जिससे हृदय प्रेम में सरस हो जाएगा। देखो, वह महामन्त्र कभी न भूलना और उन्हें 'दयालु पिता' कहकर विपद में पुकारना। आओ, 'जय ब्रह्म, जय ब्रह्म' बोलकर हुंकार से पाप के बन्धन तोड़ डालें और प्रेमयोग के योगी होकर ब्रह्मानन्द में मस्त होकर पूर्णकाम होवें।]

मृदंग और करताल के साथ कीर्त्तन हो रहा है। नरेन्द्रादि भक्तगण ठाकुर को घेरे हुए कीर्त्तन कर रहे हैं। कभी-कभी गाते हैं— 'प्रेमानन्द रसे होओ रे चिरमगन!' फिर और कभी-कभी गाते हैं— 'सत्यं शिव सुन्दररूप भाति हृदि मन्दिरे।'

अन्त में नरेन्द्र ने स्वयं खोल पकड़ ली और मस्त होकर ठाकुर के संग गाते हैं— 'आनन्दवदने बोलो मधुर हरिनाम।'

कीर्त्तन के अन्त में ठाकुर ने नरेन्द्र को पकड़ कर बहुत देर तक

आलिंगन किया। कह रहे हैं, 'तुमने आज मुझे जो आनन्द दिया!!!'

आज ठाकुर के हृदय में प्रेम का झरना फूट पड़ा है। रात के प्राय: आठ बजे हैं। तथापि प्रेमोन्मत्त होकर बरामदे में एकाकी विचरण कर रहे हैं। वे उत्तर वाले लम्बे बरामदे में आ गए हैं और बरामदे के एक छोर से दूसरे छोर तक तेज़ चाल से टहल रहे हैं। बीच-बीच में माँ के साथ कुछ बातें करते हैं। हठात् उन्मत्त की न्यायीं बोल पड़े, 'तू मेरा क्या करेगी?' (तुइ आमार कि करबि?)

माँ जिस की सहायी है, माया उसका क्या कर सकती है— क्या यही बात कह रहे हैं?

नरेन्द्र, मास्टर और प्रिय रात को ठहरेंगे। नरेन्द्र रहेंगे; ठाकुर के आनन्द की सीमा नहीं है। रात का आहार तैयार है। श्रीश्रीमाँ नहबत में हैं। रोटी, चने की दाल इत्यादि तैयार करके उन्होंने भक्तों को खाने के लिए कहला भेजा। भक्तगण बीच-बीच में रहते हैं; सुरेन्द्र महीने-महीने कुछ खर्च देते हैं। आहार प्रस्तुत है। ठाकुर के कमरे के दक्षिणपूर्व बरामदे में जगह तैयार की जा रही है।

(नरेन्द्रादि को स्कूल और अन्यान्य विषय की बातें करने का निषेध)

कमरे के पूर्व की ओर के द्वार के निकट नरेन्द्रादि बातें करते हैं।

नरेन्द्र— आजकल लड़के कैसे हो गए हैं, देखते हो न?

मास्टर— बुरे नहीं हैं, फिर भी धर्मोपदेश कुछ नहीं होता।

नरेन्द्र— मैंने जो स्वयं देखा है, उससे तो लगता है कि सब ही अध:पतन को जा रहे हैं। बार्डसाई (तुकबन्दी कसना), इयार्कि (गंदी रसिकता) बाबूपन, स्कूल से भागना इत्यादि— ये सब सर्वदा दिखाई देते हैं। यहाँ तक देखा है कि कुस्थानों पर भी जाते हैं।

मास्टर—जब मैं पढ़ता था तब मैंने तो ऐसा नहीं देखा और न सुना ही।

नरेन्द्र—लगता है आप उतना उनसे मिलते नहीं थे। यहाँ तक देखा है कि खराब लोगों के नाम लेकर पुकारते हैं; कौन जाने कब उनसे बातचीत हुई है।

मास्टर—कैसा आश्चर्य है!

नरेन्द्र—मैं जानता हूँ, अनेकों का ही चरित्र खराब हो गया है। स्कूल के व्यवस्थापक और लड़कों के अभिभावकगण इन सब बातों को देखते तो अच्छा होता।

(ईश्वर की कथा ही कथा— आत्मानं वा विजानीथ अन्या वाचं विमुंचथ)

ऐसी बातें चल रही थीं कि ठाकुर श्रीरामकृष्ण कमरे से उनके पास आए और हँसते-हँसते कहते हैं—

"क्यों जी, तुम लोगों की क्या बातें हो रही हैं?"

नरेन्द्र ने कहा—

"इनके संग स्कूल की कथावार्ता हो रही है। लड़कों का चरित्र ठीक नहीं रहता।"

ठाकुर थोड़ी-सी वे समस्त बातें सुनकर मास्टर से गम्भीर भाव में कहते हैं—

"ऐसी बातें अच्छी नहीं। ईश्वर की बातों के अतिरिक्त और बातें ठीक नहीं। तुम इस की अपेक्षा वयस में बड़े हो, सयाने हुए हो, तुम्हारे लिए ऐसी बातें उठने देना उचित नहीं था।"

(नरेन्द्र की वयस तब 19-20; मास्टर की 27-28)। मास्टर हैरान हैं।

नरेन्द्रादि भक्तगण चुप रहे।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण खड़े हुए हँसते-हँसते नरेन्द्रादि भक्तों को खिला रहे हैं। ठाकुर आज महानन्द में हैं।

नरेन्द्रादि भक्त आहार करके ठाकुर के कमरे में फरश पर बैठे हुए विश्राम कर रहे हैं और ठाकुर के संग बातें कर रहे हैं। आनन्द की हाट लगी है। बातें करते-करते नरेन्द्र से ठाकुर कह रहे हैं—

" 'चिदाकाशे होलो पूर्ण प्रेमचन्द्रोदय हे', यही गाना एक बार गा ना।"

नरेन्द्र ने गाना आरम्भ किया। तुरन्त ही अन्य भक्तगण संग-संग खोल-करताल बजाने लगे—

चिदाकाशे होलो पूर्ण प्रेमचन्द्रोदय हे।
उथलिलो प्रेमसिन्धु कि आनन्दमय हे।
(जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय)
चारिदिके झलमल करे भक्त ग्रहदल,
भक्तसंगे भक्तसखा लीलारसमय हे।
(जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय)
स्वर्गेर दुयार खुलि, आनन्द-लहरी तुलि;
नवविधान बसन्त समीरण बय,
फूटे ताहे मन्द-मन्द लीलारस प्रेमगंध,
घ्राणे योगीवृन्द योगानन्दे मत्त होए हे।
(जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय)
भवसिन्धु-जले, विधान-कमले, आनन्दमयी विराजे,
आवेशे आकुल, भक्त अलिकुल, पिये सुधा तार माझे।
देखो-देखो मायेर प्रसन्न वदन चित्त विनोदन भुवन-मोहन।
पदतले दले-दले साधुगण, नाचे गाय तारा होइये मगन;
किवा अपरूप आहा मरि मरि, जुड़ाइलो प्राण दरशन करि
प्रेमदासे बोले सबे पाये धरि, गाओ भाई मायेर जय॥

[भावार्थ—अरे, चिदाकाश में पूर्ण चन्द्रोदय हुआ है। उससे प्रेम-सिन्धु उथल-पुथल कर रहा है। अरे, यह कैसा आनन्दमय है! 'जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय।' चारों ओर भक्त रूपी ग्रह झिलमिलाते हैं। भक्तों के सखा (ईश्वर) भक्तों के संग लीला में रसमय हो रहे हैं। 'जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय।' स्वर्गद्वार खोल कर, आनन्द की लहरें उठाकर 'नवविधान' रूपी वसन्त-समीर बह रहा है और लीलारस की प्रेमगन्ध उससे फूट रही है जिससे योगीवृन्द योगानन्द में मत्त हुए हैं। (जय दयामय, जय दयामय, जय दयामय।) संसार-समुद्र के जल में, 'विधान' रूपी कमल पर आनन्दमयी विराजती हैं। आवेश में आकुल भक्त रूपी अलिकुल उसमें सुधापान कर रहे हैं। माँ का भुवनमोहन, चित्तविनोदन प्रसन्नवदन देखो, देखो! माँ के पदतले दल के दल साधुगण मग्न होकर नाचते हैं, गाते हैं। आहा! कितना अपरूप कि दर्शन पाकर जाय-जाय प्राण लौट आय। प्रेमदास सबके पाँव पकड़ कर बोलता है— 'गाओ भाई, माँ की जय'।]

कीर्त्तन करते-करते ठाकुर श्रीरामकृष्ण नृत्य कर रहे हैं। भक्त भी उनको घेर कर नृत्य करने लगे।

कीर्त्तन के पश्चात् ठाकुर उत्तर-पूर्व के बरामदे में टहलने लगे। हाजरा महाशय बरामदे के उत्तरांश में बैठे हैं। ठाकुर वहाँ जाकर बैठ गए, मास्टर वहाँ पर बैठे हुए हाजरा के साथ बातें कर रहे हैं। ठाकुर ने एक विशेष भक्त से पूछा—

''तुम स्वप्न-टप्न देखते हो?''

भक्त— एक विशेष अद्‌भुत स्वप्न देखा है; इस जगत में जल ही जल है। अनन्त जलराशि! कई-एक नौकाएँ तैर रही थीं; हठात् जलोच्छ्‌वास से डूब गईं। मैं और कई-एक लोग जहाज में चढ़ गए; इसी समय उसी अकूल समुद्र के ऊपर से एक ब्राह्मण चला जा रहा था। मैंने पूछा, आप कैसे जा रहे हैं? ब्राह्मण ने तनिक हँसकर कहा— यहाँ पर कोई कष्ट नहीं है; जल के नीचे लगातार पुल है। मैंने पूछा— आप कहाँ जा रहे हैं? वे बोले— भवानीपुर जा रहा हूँ। मैं बोला— तनिक ठहरें; मैं भी आपके संग चलूँगा।

श्रीरामकृष्ण— यह बात सुनकर मुझे रोमांच हो रहा है!

भक्त— वे ब्राह्मण बोले, 'मुझे अब जल्दी है; तुम्हारे उतरने में तो देर है! अब मैं चलता हूँ। यह रास्ता देख रखो, तुम उसके पश्चात् आना।'

श्रीरामकृष्ण— मुझे रोमांच हो रहा है! तुम शीघ्र मन्त्र लो।

रात के ग्यारह बजे हैं। नरेन्द्रादि भक्तगण ठाकुर के कमरे में फरश पर बिस्तर बिछाकर शयन करेंगे।

निद्राभंग होने पर भक्तों में से कोई-कोई देख रहे हैं कि प्रभात हो गया है। श्रीरामकृष्ण दिगम्बर बालकवत् देवताओं का नाम करते-करते घूम रहे हैं। कभी गंगादर्शन, कभी देवताओं की छवियों के निकट जाकर प्रणाम, अथवा कभी मधुर स्वर में नाम-कीर्त्तन कर रहे हैं। कभी कहते हैं— वेद, पुराण, तन्त्र, गीता, गायत्री, भागवत, भक्त, भगवान। गीता के उद्देश्य में अनेक बार कह रहे हैं— त्यागी, त्यागी, त्यागी, त्यागी। वे

कभी-कभी कहते हैं— तुम्हीं ब्रह्म, तुम्हीं शक्ति, तुम्हीं पुरुष, तुम्हीं प्रकृति, तुम्हीं विराट, तुम्हीं स्वराट, तुम्हीं नित्य, तुम्हीं लीलामयी, तुम्हीं चतुर्विंशति तत्त्व।

इधर काली-मन्दिर में और राधाकान्त-मन्दिर में मंगल आरती हो रही है, और शंख-घण्टे बज रहे हैं। भक्तगण उठकर देखते हैं कि कालीबाड़ी के पुष्पोद्यान में देवताओं की पूजा के लिए पुष्पचयन आरम्भ हो गया है और प्रभाती राग की लहरी फैलाती हुई नौबत बज रही है।

नरेन्द्रादि भक्तगण प्रातः-कृत्य समापन करके ठाकुर के पास आ उपस्थित हुए। ठाकुर सहास्यमुख उत्तर-पूर्व के बरामदे के पश्चिमांश में खड़े हुए हैं।

नरेन्द्र— पंचवटी में कई नानकपंथी साधु बैठे हुए हैं, मैंने देखा है।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वे कल आए थे। *(नरेन्द्र से)* तुम सब एक साथ चटाई पर बैठो, मैं देखूँ।

सबके सब भक्त मादुर पर बैठ गए। ठाकुर आनन्द से उन्हें देखने लगे और उनके साथ बातें करने लगे। नरेन्द्र ने साधन की बात चलाई।

(नरेन्द्रादि के लिए स्त्री लेकर साधन निषेध— सन्तानभाव अति शुद्ध)

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्रादि के प्रति)*— भक्ति ही सार। उनको प्यार करने पर विवेक-वैराग्य अपने-आप आ जाता है।

नरेन्द्र— अच्छा, स्त्री को लेकर साधन 'तन्त्र' में है?

श्रीरामकृष्ण— वह अच्छा पथ नहीं है, बड़ा कठिन है, और प्रायः पतन ही हो जाता है। वीरभाव में साधन, दासीभाव में साधन, और मातृभाव में साधन होता है! मेरा मातृभाव है। दासीभाव भी अच्छा। वीरभाव में साधन बड़ा कठिन है। सन्तानभाव बड़ा शुद्ध भाव है।

नानकपंथी साधुओं ने ठाकुर को अभिवादन करके कहा— "नमो नारायणाय।" ठाकुर ने उन्हें आसन-ग्रहण करने के लिए कहा।

(ईश्वर में सब सम्भव— Miracles विभूतियाँ)

ठाकुर कह रहे हैं—

ईश्वर के लिए कुछ असम्भव नहीं है। उनका स्वरूप कोई मुख से नहीं कह सकता। सब सम्भव। दो जन योगी थे; ईश्वर की साधना कर रहे थे। नारद ऋषि उधर से जा रहे थे। एक ने परिचय पाकर कहा— 'आप नारायण के पास से आ रहे हो; वे क्या कर रहे हैं?' नारद बोले, 'देखकर आ रहा हूँ, वे सूई के भीतर से ऊँट, हाथी को प्रवेश करवाते हैं और फिर बाहिर निकालते हैं।' एक ने कहा, 'इसमें फिर क्या आश्चर्य है? उनके लिए सब ही सम्भव है।' किन्तु दूसरा बोला, 'ऐसा भी क्या हो सकता है! आप कभी भी वहाँ पर नहीं गए!'

समय प्राय: नौ। ठाकुर अपने कमरे में बैठे हैं। मनोमोहन कोन्नगर से सपरिवार आए हैं। मनोमोहन ने प्रणाम करके कहा,

"इन्हें कलकत्ता ले जा रहा हूँ।"

ठाकुर ने कुशल प्रश्न करके कहा—

"आज पहला अगस्त्य* है, कलकत्ता जा रहे हो। मैं क्या जानूँ भाई!"

यह कहकर तनिक हँसकर और बातें करने लगे।

(नरेन्द्र को मग्न होकर ध्यान का उपदेश)

नरेन्द्र और उनके मित्र स्नान करके आ गए। ठाकुर ने व्यग्र होकर नरेन्द्र से कहा— "जाओ, वटतले में जाकर ध्यान करो। आसन दूँ?"

नरेन्द्र और उनके कुछ ब्राह्ममित्र पंचवटी के मूल में ध्यान करते हैं। समय प्राय: साढ़े दस। ठाकुर श्रीरामकृष्ण कुछ देर बाद वहाँ पर आ गए; मास्टर भी आए। ठाकुर बातें करते हैं—

श्रीरामकृष्ण *(ब्राह्म भक्तों के प्रति)*— ध्यान करने के समय उन में मग्न हो

---

* अगस्त्य यात्रा= बंगला सौर मास (भाद्रमास) की पहली तिथि, इस दिन की यात्रा अशुभ मानी जाती है क्योंकि अगस्त्य मुनि ने भाद्रपद की इसी पहली तिथि को विन्ध्याचल से दक्षिण की यात्रा शुरु की थी और वे फिर लौट कर नहीं आए।

जाना चाहिए। ऊपर-ऊपर तैरने से क्या जल के नीचे का रत्न मिलता है?

यह कहकर ठाकुर मधुर स्वर से गाना गाने लगे—

डूब दे रे मन काली बोले, हृदि-रत्नाकरेर अगाध जले।
रत्नाकर नहीं शून्य कखनो, दुचार डुबे धन ना पेले,
तुमि दम सामर्थ्य एकडूबे जाओ, कुलकुण्डलिनीर कूले।
ज्ञान-समुद्रेर माझे रे मन, शंतिरूपा मुक्ता फले,
तुमि भक्ति करे कुड़ाये पाबे, शिवयुक्ति मत चाइले।
कामादि छय कुम्भीर आछे, आहार-लोभे सदाई चले,
तुमि विवेकहल्दि गाये मेखे जाओ छोंबे ना तार गंध पेले।
रतन-माणिक्य कतो, पड़े आछे शेइ जले,
रामप्रसाद बोले झम्प दिले, मिलबे रतन फले फले॥

[भावार्थ— अरे मन, 'काली' बोलकर हृदय-रत्नाकर के अगाध जल में डुबकी लगा। दो चार डुबकियों में धन न मिले तो रत्नाकर कभी शून्य नहीं है। तुम दम सामर्थ्य से एक डुबकी दो। रे मन, कुल-कुण्डलिनी के पास ज्ञान-समुद्र में शान्ति रूपी मुक्ता हैं। भक्ति करके शिव की युक्ति से चाहने पर तुम उसे पाओगे। वहाँ कामादि छः घड़ियाल हैं जो आहार-लोभ में सदा ही चलते हैं। तुम विवेक रूपी हल्दी शरीर में मलकर जाओ, उसकी गन्ध पाकर वे तुम्हें नहीं छूवेंगे। उस जल में कितने ही रत्न-माणिक्य पड़े हैं। 'रामप्रसाद' कहता है, कूद पड़ने से खूब रत्न मिलेंगे।]

[ब्राह्मसमाज, वक्तृता और समाज सुधार (Social Reforms) पहले ईश्वर-लाभ, फिर लोकशिक्षा प्रदान]

नरेन्द्र और उनके बन्धु पंचवटी के चबूतरे से उतरे और ठाकुर के निकट आकर खड़े हो गए। ठाकुर दक्षिणास्य होकर उनके साथ बातें करते-करते अपने कमरे की ओर आ रहे हैं। ठाकुर कह रहे हैं—

"डुबकी लगाने पर मगरमच्छ (कुम्भीर) पकड़ सकता है, किन्तु हल्दी मलने पर वह छूता नहीं। 'हृदिरत्नाकर के अगाध जल में' कामादि छः मगरमच्छ हैं। किन्तु विवेक-वैराग्य रूप हल्दी मल लेने पर वे फिर तुम्हें छूते नहीं।

''पाण्डित्य से व लैक्चर से क्या होगा, यदि विवेक-वैराग्य नहीं आता। ईश्वर सत्य और सब अनित्य, वे ही वस्तु और सब अवस्तु; इस का नाम विवेक है।

''पहले हृदयमन्दिर में उनको प्रतिष्ठित करो। उसके पश्चात् वक्तृता, लैक्चर इच्छा हो तो करो। केवल 'ब्रह्म-ब्रह्म' बोलने से क्या होगा यदि विवेक-वैराग्य न रहे? वह तो फिर खाली शंख-ध्वनि!

''एक ग्राम में पद्मलोचन नामक एक लड़का था। लोग उसे पोदो-पोदो कहते थे। उसी गाँव में एक पुराना मन्दिर था। भीतर ठाकुर-विग्रह नहीं— मन्दिर के पास-पास पीपल तथा अन्य पेड़-पौधे उग आए थे। मन्दिर के भीतर चमगादड़ों ने घोंसले बना लिए थे। फरश पर धूल और चमगादड़ों की विष्ठा थी। मन्दिर में लोगों का यातायात नहीं।

''एक दिन सन्ध्या से कुछ बाद ग्रामवासियों ने शंख-ध्वनि सुनी। मन्दिर की दिशा से पौं-पौं करके शंख बज रहा है। ग्राम के लोगों ने सोचा कि सम्भवत: किसी ने देवता प्रतिष्ठित किया है, सन्ध्या होने पर आरती हो रही है। लड़के, बूढ़े, पुरुष, स्त्रियाँ सब दौड़े-दौड़े मन्दिर के सामने आ उपस्थित हुए— भगवान-दर्शन करेंगे और आरती देखेंगे। पद्मलोचन एक ओर खड़ा हुआ पौं-पौं शंख बजा रहा है। ठाकुर-प्रतिष्ठा नहीं, मन्दिर की सफाई नहीं, चमगादड़ों की बीठें पड़ी हैं। तब वे चीत्कार करके बोले—

मन्दिरे तोर नाहिक माधव!
पोदो, शांक फूंके तुइ करलि गोल!
ताय चामचिके एगार जना दिवानिशि दिच्छे थाना।

[भावार्थ— अरे पोदो, तेरे मन्दिर में माधव तो प्रतिष्ठित नहीं हुए। तूने व्यर्थ शंख फूँक कर गड़बड़ मचा दी है। तभी तो ग्यारह चमगादड़ रात-दिन पड़ाव डाले हुए हैं।]

''यदि हृदय-मन्दिर में माधव-प्रतिष्ठा करना चाहते हो, यदि भगवान प्राप्त करना चाहते हो, केवल पौं-पौं करके शंख फूँकने से क्या होगा? पहले चित्त-शुद्धि करो। मन शुद्ध होने पर भगवान पवित्र आसन पर आकर बैठेंगे। चमगादड़ों की विष्ठा रहने पर माधव को नहीं लाया जाता। ग्यारह चमगादड़ें

ग्यारह इन्द्रियाँ हैं— पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन। पहले माधव-प्रतिष्ठा, उसके बाद इच्छा हो तो वक्तृता, लैक्चर देना! पहले डुबकी लगाओ। डुबकी लगाकर रत्न निकालो, तत्पश्चात् अन्य कार्य।

''कोई डुबकी लगाना नहीं चाहता। साधन नहीं, भजन नहीं, विवेक-वैराग्य नहीं, दो-चार बातें सीखकर ही झट से लैक्चर!

''लोक-शिक्षा देना कठिन है। भगवान के दर्शन के पश्चात् यदि कोई उनका आदेश पाए, फिर लोक-शिक्षा दे सकता है।''

(अविद्यास्त्री— आन्तरिक भक्ति होने पर सब बस में आ जाते हैं)

बातें करते-करते ठाकुर उत्तर के बरामदे के पश्चिम अंश में आकर खड़े हो गए। मणि भी निकट खड़े हैं। ठाकुर बार-बार कह रहे हैं— ''विवेक-वैराग्य के बिना हुए भगवान को नहीं पाया जाता।''

मणि ने विवाह किया है; जभी व्याकुल होकर सोच रहे हैं, क्या होगा! वयस 28 वर्ष, कॉलिज में शिक्षा लेकर अंग्रेज़ी लिखना-पढ़ना कुछ सीखा है। सोच रहे हैं विवेक-वैराग्य माने क्या कामिनी-कांचन का त्याग है?

मणि *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— स्त्री यदि कहे, मुझे नहीं देखते, मैं आत्म-हत्या कर लूँगी। तब फिर क्या होगा?

श्रीरामकृष्ण *(गम्भीर स्वर में)*— ऐसी स्त्री का त्याग करेगा, जो ईश्वर के पथ में विघ्न डालती है। आत्महत्या ही करे, या चाहे कुछ भी करे। जो ईश्वर के पथ में विघ्न डालती है, वह अविद्या स्त्री है।

गम्भीर चिन्तामग्न होकर मणि दीवार के सहारे एक ओर खड़े रहे। नरेन्द्रादि भक्त भी क्षणभर अवाक् रहे।

ठाकुर उनसे कुछ बातें करते हैं, हठात् मणि के निकट आकर एकान्त में आहिस्ता-आहिस्ता कहते हैं—

''किन्तु जिसकी ईश्वर में आन्तरिक भक्ति है, उसके सब ही बस में हैं—

राजा, दुष्ट लोग, स्त्री। अपनी आन्तरिक भक्ति रहे तो स्त्री भी क्रमश: ईश्वर के पथ पर जा सकती है। आप भला हो तो वह भी ईश्वर की इच्छा से भली हो सकती है।''

मणि की चिन्ताग्नि पर जल पड़ा। वे इतनी देर से सोच रहे थे कि आत्महत्या करती है तो करे, मैं क्या करूँ?

मणि *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— गृहस्थ-संसार में बड़ा भय है।

श्रीरामकृष्ण *(मणि और नरेन्द्र के प्रति)*— इसीलिए तो चैतन्यदेव ने कहा था— सुनो-सुनो नित्यानन्द भाई, संसारी जीव की कभी गति नहीं।

(मणि के प्रति एकान्त में)— ''ईश्वर में शुद्धा भक्ति यदि न हो, तो फिर कोई गति नहीं है। कोई यदि ईश्वर-लाभ करके गृह-संसार में रहे तो उसे कोई भय नहीं। निर्जन में बीच-बीच में साधन करके यदि कोई शुद्धा भक्ति-लाभ कर ले सकता है, तो गृह-संसार में रहने पर उसके लिए कोई भय नहीं है! चैतन्यदेव के गृही भक्त भी थे। वे गृहस्थ-संसार में नाम मात्र को थे। अनासक्त होकर रहते थे।''

देवताओं की भोग-आरती हो गई। तुरन्त नौबत बजने लगी। अब देवता विश्राम करेंगे। ठाकुर श्रीरामकृष्ण आहार करने बैठे। नरेन्द्रादि भक्तगण आज भी ठाकुर के पास प्रसाद पाएँगे।

श्री श्री रामकृष्ण कथामृत के लेखक
श्री महेन्द्रनाथ गुप्त
(1854 – 1932)

द्वितीय खण्ड

दक्षिणेश्वर में
ठाकुर श्रीरामकृष्ण का जन्मोत्सव

प्रथम परिच्छेद

(प्रभात में भक्तों के संग)

कालीबाड़ी में आज श्रीरामकृष्ण का जन्मोत्सव है— फाल्गुन द्वितीया तिथि, रविवार, 11 मार्च, 1883 ईसवी। आज ठाकुर के अन्तरंग भक्तगण प्रत्यक्ष उन्हें लेकर जन्मोत्सव करेंगे।

प्रातः से ही भक्तगण एक-एक करके आकर जमा होने लगे। सामने माँ भवतारिणी का मन्दिर है। मंगल आरती के पश्चात् ही प्रभाती राग में नहबतखाने में मधुर तान में रौशनचौकी* बज रही है। एक तो वसन्तकाल है, वृक्षलता सब ही नूतनवेश पहने हुए हैं; उस पर भक्तहृदय ठाकुर के जन्मदिन को स्मरण करके नाच रहा है। चारों ओर आनन्द का समीरण बह रहा है। मास्टर जाकर देखते हैं; भवनाथ, राखाल, भवनाथ के मित्र कालीकृष्ण आए हुए हैं। तब बहुत सवेरा था। ठाकुर इनके साथ पूर्व की ओर के बरामदे में बैठे हुए सहास्य बातें कर रहे हैं। मास्टर ने पहुँचकर ठाकुर को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— तुम आ गए!
(भक्तों के प्रति) लज्जा, घृणा, भय— ये तीनों रहें तो नहीं होता। आज

---

* रौशनचौकी = शहनाई का बाजा।

कितना आनन्द होगा! किन्तु जो साले हरिनाम में मस्त होकर नृत्य-गीत नहीं कर सकेंगे, उनका कभी भी नहीं होगा। ईश्वर की कथा में क्या लज्जा, क्या भय? लो, अब तुम लोग गाओ।

भवनाथ और कालीकृष्ण गाना गाते हैं—

धन्य धन्य आजि दिन आनन्दकारी,
सबे मिले तव सत्यधर्म भारते प्रचारि।
हृदये-हृदये तोमारि धाम, दिशि-दिशि तव पुण्य नाम;
भक्तजन समाज आजि स्तुति करे तोमारि।
नाहि चाहि प्रभु धन जन मान, नाहि प्रभु अन्य काम;
प्रार्थना करे तोमारे आकुल नर नारि।
तव पदे प्रभु लइनु शरण, कि भय विपदे कि भय मरण,
अमृतेर खनि पाइनु जखन जय जय तोमारि।

[भावार्थ— आज का दिन धन्य है और बड़ा ही आनन्दकारी है। हम सब मिलकर तुम्हारा सत्यधर्म भारत में प्रचार कर रहे हैं। हृदय-हृदय में तुम्हारा ही धाम है, प्रत्येक दिशा में तुम्हारा ही पुण्य नाम है। भक्तजनों का समाज आज तुम्हारी स्तुति कर रहा है। नहीं चाहते प्रभु हम धन, जन, मान और ना ही चाहते हैं प्रभु अन्य काम। आकुल नर-नारी तुमसे प्रार्थना कर रहे हैं— प्रभु, तुम्हारे चरणों में शरण ली है तो विपद से क्या भय, मरण से क्या भय? अमृत की खान पा ली है। तुम्हारी जय हो, जय हो।]

ठाकुर बद्धांजलि होकर एक मन से गाना सुन रहे हैं। गाना सुनते-सुनते मन एकदम भावराज्य में चला गया। ठाकुर का मन तो सूखी दियासलाई है— एक बार घिसने से ही उद्दीपन हो जाता है। प्राकृत व्यक्ति का मन भीगी दियासलाई जैसा होता है— जितना घिसो, जलता ही नहीं, क्योंकि मन विषयासक्त रहता है। ठाकुर बहुत देर तक ध्यान में निमग्न रहे। कितनी देर के बाद कालीकृष्ण भवनाथ के कान में कुछ कहते हैं।

(पहले हरिनाम या श्रमजीवियों की शिक्षा ?)

कालीकृष्ण ठाकुर को प्रणाम करके उठे। ठाकुर हैरान होकर पूछते हैं, "कहाँ पर जाओगे?"

भवनाथ— जी महाराज, थोड़ा काम है, इसलिए जाएगा।

श्रीरामकृष्ण— क्या आवश्यकता है ?

भवनाथ— जी महाराज, ये श्रमजीवियों के शिक्षालय में (Baranagore Workingmen's Institute) जाएँगे।

कालीकृष्ण का प्रस्थान।

श्रीरामकृष्ण— उसके भाग्य में नहीं है। आज हरिनाम में कितना आनन्द होगा, देखो तो! उसके 'कपाल' में नहीं है।

द्वितीय परिच्छेद

(जन्मोत्सव में भक्तों के संग में— संन्यासी का कठिन नियम)

समय प्राय: साढ़े आठ या नौ का है। ठाकुर ने आज गंगा में अवगाहन करके स्नान नहीं किया— शरीर उतना ठीक नहीं है। उनके स्नान करने के लिए जल उसी पूर्वोक्त बरामदे में कलसी में लाया गया। ठाकुर स्नान कर रहे हैं, भक्तों ने स्नान करवा दिया। ठाकुर ने स्नान करते-करते कहा, ''एक लोटा जल अलग रख दें।'' अन्त में उसी लोटे का जल सिर पर डाला। ठाकुर श्रीरामकृष्ण आज बड़े सावधान हैं, एक लोटा जल से अधिक सिर पर नहीं डाला।

स्नानान्ते मधुर कण्ठ से भगवान का नाम कर रहे हैं। शुद्ध वस्त्र पहनकर दो-एक भक्तों के संग दक्षिणास्य होकर कालीबाड़ी के पक्के आँगन के बीच से माँ काली के मन्दिर की ओर मुख किए जा रहे हैं। मुख से अविरत नाम-उच्चारण कर रहे हैं। दृष्टि अर्धनिमीलित— अण्डे को जब सेता है, पक्षी की दृष्टि तब ऐसी होती है।

माँ काली के मन्दिर में जाकर प्रणाम और पूजा की। पूजा का नियम नहीं है— गन्ध-पुष्प कभी माँ के चरणों में देते हैं, वा फिर कभी अपने मस्तक पर धारण करते हैं। अन्त में माँ-निर्माल्य मस्तक पर धारण

करके भवनाथ से कहते हैं, 'डाब ले रे, माँ काली का प्रसादी डाब*।'

फिर दोबारा पक्के आँगन के पथ से अपने कमरे की ओर जा रहे हैं। संग में मास्टर और भवनाथ हैं। भवनाथ के हाथ में डाब है। मार्ग के दायीं ओर श्री श्री राधाकान्त का मन्दिर है; ठाकुर कह रहे हैं, 'विष्णुघर।' इस युगलरूप का दर्शन करके भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया! और बायीं ओर द्वादश शिव मन्दिर है। सदाशिव के उद्देश्य में प्रणाम करने लगे।

अब ठाकुर अपने कमरे में आ पहुँचे। देखा— और भक्तों का समागम हो गया है। राम, नित्यगोपाल, केदार चैटर्जी इत्यादि अनेक ही आए हैं। उन सबने उनको भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। ठाकुर ने भी उनसे कुशल-प्रश्न किए।

ठाकुर नित्यगोपाल को देखकर कहते हैं—"तू कुछ खाएगा?" उस भक्त का तब बालकभाव था। उन्होंने विवाह नहीं किया, वयस 23/24 होगी। सर्वदा ही भाव-राज्य में वास करते हैं। ठाकुर के पास कभी अकेले, कभी राम के संग प्रायः आते हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण उनकी भावावस्था देखकर उनसे स्नेह करते हैं। उनकी परमहंस अवस्था है— यह बात ठाकुर बीच-बीच में कहते हैं। जभी उन्हें गोपाल की न्यायीं देखते हैं।

वे (भक्त) कहते हैं, "खाऊँगा।" बातें ठीक बालक की न्यायीं हैं।

(नित्यगोपाल को उपदेश— त्यागी का नारी-संग बिल्कुल निषेध)

खाने के पश्चात् ठाकुर गंगा के ऊपर के कमरे के पश्चिमी किनारे के गोल बरामदे में उनको लेकर चले और बातें करने लगे।

एक स्त्री परम भक्त, वयस 31/32 होगी, ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पास प्रायः आती हैं और उन पर अत्यन्त भक्ति करती हैं। वह स्त्री भी उस भक्त की अद्‌भुत भावावस्था देखकर उनको सन्तानवत् स्नेह करती हैं और उन्हें प्रायः अपने घर ले जाती हैं।

---

* डाब = हरा नारियल, पानी निकालने के बाद इसे छुरे से काट कर इसकी मलाई चम्मच से खाई जाती है।

श्रीरामकृष्ण *(भक्त के प्रति)*— वहाँ पर तू क्या जाता है?

नित्यगोपाल *(बालकवत्)*— हाँ जाता हूँ। ले जाती है।

श्रीरामकृष्ण— अरे साधु, सावधान! एक-आध बार जाना। अधिक मत जा— गिर जाएगा! कामिनी-कांचन ही माया है। साधु को स्त्री जाति से अनेक दूर रहना चाहिए। वहाँ पर सब डूब जाते हैं। वहाँ पर ब्रह्मा, विष्णु का भी गिर कर दम घुटता है।

भक्त ने समस्त सुना।

मास्टर *(स्वगत)*— क्या आश्चर्य! इस भक्त की तो परमहंस अवस्था— ठाकुर कभी-कभी कहते हैं। ऐसी उच्च अवस्था के होते हुए भी इन्हें विपद की सम्भावना! साधु के लिए ठाकुर ने कैसा कठिन नियम बनाया है! स्त्रियों के साथ मेलजोल रखने से साधु के पतन की सम्भावना होती है। ऐसा उच्च आदर्श न हो तो जीव का उद्धार ही फिर कैसे होगा? वह स्त्री तो विशेष भक्तिमती है। तब भी भय! अब समझा, श्री चैतन्य ने छोटे हरिदास को क्यों इतनी कठोर सजा दी थी। महाप्रभु के रोकने पर भी छोटे हरिदास ने एक विधवा भक्त के साथ बातें की थीं। किन्तु हरिदास संन्यासी जो हैं। तभी महाप्रभु ने उनको त्याग दिया था। कैसा दण्ड! संन्यासी का कैसा कठिन नियम! और इस भक्त के ऊपर ठाकुर श्रीरामकृष्ण का कितना प्यार! पीछे, उत्तरकाल में, उन्हें कोई विपद न हो— शीघ्र पहले से ही सावधान कर रहे हैं। भक्तगण अवाक्! 'साधु, सावधान'— भक्तगण यही मेघ गम्भीर ध्वनि सुन रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(साकार निराकार— ठाकुर श्रीरामकृष्ण की रामनाम में समाधि)

अब ठाकुर श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग में कमरे के उत्तर-पूर्व वाले बरामदे में आ गए हैं। भक्तों के मध्य में दक्षिणेश्वरवासी एक गृहस्थ भी बैठे हैं। वे घर में वेदान्त-चर्चा किया करते हैं। ठाकुर के सम्मुख श्रीयुक्त केदार चैटर्जी के संग वे शब्द ब्रह्म के सम्बन्ध में बातें कर रहे हैं।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और अवतारवाद— ठाकुर श्रीरामकृष्ण और सर्वधर्मसमन्वय)

दक्षिणेश्वरवासी— यह अनाहत शब्द सर्वदा अन्तर और बाहिर हो रहा है।

श्रीरामकृष्ण— केवल शब्द होने से तो नहीं होगा, शब्द का प्रतिपाद्य एक (कोई) है। तुम्हारे नाम से ही केवल क्या मुझे आनन्द होता है? तुम्हें बिना देखे सोलह आना आनन्द नहीं होता।

दक्षिणेश्वरवासी— वही शब्द ही ब्रह्म है। वही अनाहत शब्द।

श्रीरामकृष्ण *(केदार के प्रति)*— ओह समझा! इन का ऋषियों का मत है। ऋषियों ने रामचन्द्र से कहा, 'हे राम, हम जानते हैं तुम दशरथ के बेटे हो। भरद्वाज आदि ऋषि तुम्हें अवतार मान कर चाहे पूजा करें। हम तो अखण्ड सच्चिदानन्द को चाहते हैं।' राम यह बात सुनकर हँसकर चले गए।

केदार— ऋषिगण राम को अवतार नहीं मानते थे। ऋषि मूर्ख थे।

श्रीरामकृष्ण *(गम्भीर भाव से)*— आप ऐसी बातें मत कहें। जिसकी जैसी रुचि। और फिर जिसके पेट को जो सहन हो। एक ही मछली लाकर माँ बच्चों को नाना प्रकार से बनाकर खिलाती है। किसी को पुलाव करके देती है; किन्तु सबके पेट को पुलाव नहीं सहन होता। तभी उनको मछली का झोल बना देती है। जिसके पेट को जो सह्य है। और फिर कोई-कोई माछभाजा,[1] माछ का अम्मल[2] पसन्द करते हैं। *(सब का हास्य)*। जिसकी जैसी रुचि।

"ऋषि ज्ञानी थे, इसीलिए वे अखण्ड सच्चिदानन्द को चाहते थे। और फिर, भक्त अवतार को चाहते हैं— भक्ति-आस्वादन करने के लिए। उनका दर्शन कर लेने पर मन का अन्धकार दूर हो जाता है। पुराण में है, रामचन्द्र जब सभा में आए, तब सभा में मानो सौ सूर्य उदय हो गए। तो फिर सभा में बैठे लोग जले क्यों नहीं? उसका उत्तर है— उनकी ज्योति जड़ ज्योति नहीं है। सभा में बैठै हुए सब जनों के हृत्पद्म खिल उठे। सूर्य उदय होने पर पद्म प्रस्फुटित हो जाता है।"

---

1 माछभाजा = भुनी हुई मछली, तली हुई।

2 अम्मल = खट्टी, खटाईदार सब्जी।

श्रीरामकृष्ण खड़े हुए भक्तों से यह बात कर रहे थे। बोलते-बोलते एकदम बाह्यराज्य छोड़कर मन अन्तर्मुख हो गया! 'हृत्पद्म प्रस्फुटित हो गया', यह बात उच्चारण करते ना करते ठाकुर एकदम समाधिस्थ।

ठाकुर समाधि-मन्दिर में। भगवान-दर्शन करके श्रीरामकृष्ण का हृत्पद्म क्या प्रस्फुटित हो गया! उसी एक प्रकार से दण्डायमान हैं। किन्तु बाह्यशून्य चित्रार्पित की न्यायीं। श्रीमुख उज्ज्वल और सहास्य। भक्तों में से कोई खड़े हैं, कोई बैठे हैं; अवाक्; एक दृष्टि से इस अद्‌भुत प्रेम-राज्य की छवि, यह अदृष्टपूर्व समाधि-चित्र, सन्दर्शन कर रहे हैं।

अनेक क्षणों के पश्चात् समाधि भंग हुई।

ठाकुर दीर्घ निःश्वास छोड़कर 'राम'— यह नाम बार-बार उच्चारण करने लगे। नाम के वर्ण-वर्ण से मानो अमृत झर रहा है। ठाकुर बैठ गए। भक्त लोग चारों ओर बैठकर एकदृष्टि से देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— अवतार जब आते हैं, साधारण लोग जान नहीं सकते, गोपन में आते हैं। दो-चार अन्तरंग भक्त ही जान पाते हैं! राम पूर्ण ब्रह्म, पूर्ण अवतार हैं, यह बात केवल बारह ऋषि समझते थे। अन्यान्य ऋषियों ने कहा था, 'हे राम, हम तुम्हें दशरथ का बेटा ही मानते हैं।'

"अखण्ड सच्चिदानन्द को सब नहीं पकड़ सकते। किन्तु नित्य में जाकर जो विलास के लिए लीला में रहता है, उसकी ही पक्की भक्ति है। विलायत में क्वीन (रानी) को देख आने के बाद, तब क्वीन की बातें; क्वीन का कार्य, इन सबका वर्णन किया जा सकता है। क्वीन की बातें तब ठीक-ठीक होती हैं। भरद्वाज आदि ऋषियों ने राम का स्तव किया था, और कहा था— 'हे राम, तुम्हीं वही अखण्ड सच्चिदानन्द हो। तुम हमारे निकट मनुष्यरूप में अवतीर्ण हुए हो। वस्तुतः तुमने अपनी माया का आश्रय कर रखा है, इस कारण, तुम मनुष्य की न्यायीं दिखाई दे रहे हो!' भरद्वाज आदि राम के परम भक्त हैं। उनकी ही भक्ति पक्की भक्ति है।"

चतुर्थ परिच्छेद

(कीर्त्तनानन्द में और समाधि-मन्दिर में)

भक्तगण यह अवतार-तत्त्व अवाक् होकर सुन रहे हैं। कोई-कोई सोच रहे हैं, कैसा आश्चर्य! वेदोक्त अखण्ड सच्चिदानन्द— जिस को वेद में वाक्य-मन के अतीत कहा गया है— वही पुरुष हमारे सामने चौदह चौथाइयाँ अर्थात् साढ़े तीन हाथ का मनुष्य बनकर आए हुए हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ही जब स्वयं कह रहे हैं तब तो अवश्य ही ठीक है। यदि वैसा न होता तो फिर 'राम-राम' करके इन महापुरुष को समाधि क्यों होती? निश्चय ही ये हृत्पद्म में रामरूप-दर्शन कर रहे थे।

देखते-देखते कोन्नगर से भक्त लोग खोल (मृदंग)-करताल लेकर संकीर्त्तन करते-करते बाग में आ उपस्थित हुए। मनोमोहन, नबाई और अन्य अनेक लोग नाम-संकीर्त्तन करते-करते ठाकुर के निकट उसी उत्तर-पूर्व के बरामदे में आ गए। ठाकुर श्रीरामकृष्ण प्रेमोन्मत्त होकर उनके संग संकीर्त्तन करते हैं।

नृत्य करते-करते बीच-बीच में समाधिस्थ! तब फिर दोबारा संकीर्त्तन के मध्य चित्रार्पितवत् खड़े हैं। उसी अवस्था में भक्तों ने उनको पुष्पमाला से सजा दिया। बड़ी-बड़ी गुंथी हुई मालाएँ हैं। भक्त देख रहे हैं, मानो श्रीगौरांग सम्मुख खड़े हैं। गम्भीर भावसमाधिमग्न! प्रभु की कभी अन्तर्दशा होती है— तब जड़वत् चित्रार्पितवत् बाह्यशून्य हो जाते हैं। वा कभी अर्धबाह्यदशा— तब प्रेमाविष्ट होकर नृत्य करते हैं। वा फिर कभी श्रीगौरांगवत् बाह्यदशा होती है— तब भक्तों के संग संकीर्त्तन करते हैं।

ठाकुर समाधिस्थ, खड़े हैं। गले में मालाएँ हैं। कहीं गिर न जाएँ, इसलिए एक भक्त ने उन्हें पकड़ रखा है; चारों ओर भक्तगण खड़े हुए खोल-करताल लेकर कीर्त्तन कर रहे हैं। ठाकुर की दृष्टि स्थिर। चन्द्रवदन प्रेमानुरंजित। ठाकुर पश्चिमास्य।

इसी आनन्दमूर्ति को भक्तगण अनेक क्षण तक देखते रहे। समाधि भंग हुई। समय हो गया है। कुछ देर पश्चात् कीर्त्तन भी थम गया। भक्त ठाकुर को आहार करवाने के लिए व्यस्त हो गए।

ठाकुर कुछ काल विश्राम करके, नववस्त्र पीताम्बर पहन कर छोटी

खाट पर बैठ गए। पीताम्बरधारी उन्हीं आनन्दमय महापुरुष के ज्योतिर्मय, भक्त-चित्त-विनोदन, अपरूप रूप का भक्तगण दर्शन कर रहे हैं। इस देवदुर्लभ, पवित्र, मोहनमूर्ति के दर्शन करके नयनों की तृप्ति नहीं हो रही है। इच्छा है, और भी देखें, और भी देखें; उसी रूप-सागर में मग्न हो जाएँ!

ठाकुर आहार करने बैठे। भक्तों ने भी आनन्द से प्रसाद पाया।

पंचम परिच्छेद

(गोस्वामी के संग में— सर्वधर्मसमन्वय प्रसंग)

आहारान्ते ठाकुर श्रीरामकृष्ण छोटी खाट पर विश्राम कर रहे हैं। कमरे में लोगों की भीड़ बढ़ गई है। बाहिर के बरामदे भी लोगों से परिपूर्ण हैं। कमरे में भक्तगण जमीन पर बैठे हुए हैं और ठाकुर की ओर एकदृष्टि से देख रहे हैं। केदार, सुरेश, राम, मनोमोहन, गिरीन्द्र, राखाल, भवनाथ, मास्टर इत्यादि अनेक ही कमरे में उपस्थित हैं। राखाल के पिता आए हैं; वे भी उसी कमरे में हैं।

एक वैष्णव गोस्वामी भी उसी कमरे में बैठे हैं। ठाकुर उनको सम्बोधन करके बातें कर रहे हैं। गोस्वामियों को देखने पर ठाकुर मस्तक झुका कर प्रणाम किया करते हैं— कभी-कभी साष्टांग हो जाते हैं।

(नाम-माहात्म्य या अनुराग— अजामिल)

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, तुम क्या कहते हो? उपाय क्या है?

गोस्वामी— जी, नाम से ही होगा। कलि में तो नाम-माहात्म्य ही है।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, नाम का खूब माहात्म्य तो निश्चत ही है। तथापि अनुराग न हो तो क्या होता है? ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल होना आवश्यक है। खाली नाम किए जाता हूँ, किन्तु कामिनी-कांचन में मन पड़ा रहता है, उससे क्या होगा?

"बिच्छु अथवा मकड़ी का डंक ऐसे नहीं हटता— 'घूँटेर भावरा'-

उपले का धुआँ देना पड़ता है।''

गोस्वामी— तब फिर अजामिल? अजामिल महापातकी था, ऐसा पाप नहीं है जो उसने न किया हो। किन्तु मरने के समय 'नारायण' बोलकर बेटे को पुकारने से उद्धार हो गया।

श्रीरामकृष्ण— शायद अजामिल ने पूर्वजन्म में अनेक कर्म किए हुए थे। और यह भी है कि उसने पीछे तपस्या की थी।

''ऐसे भी कहा जा सकता है कि उसका तब अन्तिम काल था। हाथी को नहलाने से क्या होगा? फिर दोबारा मिट्टी-कीचड़ मलकर जो था, सो हो जाता है! तथापि हाथीशाला (पीलखाने) में घुसने से पहले यदि कोई धूल झाड़ दे और स्नान करवा दे तो फिर शरीर स्वच्छ रहता है।

''नाम से एक बार शुद्ध हो भी गया; किन्तु उसके पश्चात् ही हो सकता है नाना पापों में लिप्त हो जाता है। मन में बल नहीं; प्रतिज्ञा नहीं करता कि फिर पाप नहीं करूँगा। गंगा-स्नान से सब पाप चले जाते हैं। जाने से क्या होगा? कहते हैं, पापसमूह वृक्ष के ऊपर रहते हैं। गंगा-स्नान करके मनुष्य जब लौटता है, तब वे ही पुराने पापसमूह वृक्ष से छलाँग मारकर उसके कन्धों के ऊपर चढ़ जाते हैं। *(सब का हास्य)*। वे ही पुराने पाप फिर दोबारा कन्धों पर चढ़ गए। स्नान करके दो पग आते न आते फिर दोबारा कन्धों पर चढ़ गए!

''इसीलिए नाम भी करो, साथ-साथ प्रार्थना करो, जिससे ईश्वर में अनुराग हो जाए और सब वस्तुएँ जो दो दिन के लिए हैं, जैसे रुपया, मान, देह-सुख; इनके ऊपर जिस प्रकार प्यार कम हो जाए, प्रार्थना करो।''

(वैष्णवधर्म और साम्प्रदायिकता— सर्वधर्मसमन्वय)

श्रीरामकृष्ण *(गोस्वामी के प्रति)*— आन्तरिक हो जाने पर सब धर्मों के द्वारा ही ईश्वर को प्राप्त किया जाता है। वैष्णव ईश्वर को पाएँगे, शाक्त भी पाएँगे,

वेदान्तवादी भी पाएँगे, ब्रह्मज्ञानी भी पाएँगे, और फिर मुसलमान, क्रिश्चियन ये लोग भी पाएँगे। आन्तरिक हो जाने पर सब ही पाएँगे। कोई-कोई झगड़ा कर बैठते हैं। वे कहते हैं, 'हमारे श्रीकृष्ण को बिना भजे कुछ भी नहीं होगा' या 'हमारी माँ काली को बिना भजे कुछ भी नहीं होगा'; 'हमारे ईसाई धर्म को न लेने से कुछ भी नहीं होगा।'

"ऐसी बुद्धि का नाम है 'मतुयार बुद्धि' अर्थात् मेरा धर्म ठीक है, और सब का मिथ्या— यह बुद्धि खराब है। ईश्वर के पास नाना पथों द्वारा पहुँचा जाता है।

"और फिर कोई-कोई कहता है, ईश्वर साकार हैं, वे निराकार नहीं। ऐसा कहकर झगड़ा करते हैं। जो वैष्णव है, वह वेदान्तवादी के साथ झगड़ा करता है।

"यदि ईश्वर सामने दर्शन दें तभी ठीक-ठीक कहा जाता है। जिसने दर्शन किया है, वह ठीक जानता है, ईश्वर साकार, और फिर निराकार हैं। वे और भी क्या-क्या हैं, बताया नहीं जाता।

"कई अन्धे हाथी के निकट पहुँच गए थे। किसी ने बता दिया इस जानवर का नाम हाथी है। तब अन्धों ने पूछा, हाथी कैसा है? वे हाथी का शरीर स्पर्श करने लगे। एक ने कहा, 'हाथी एक स्तम्भ जैसा है।' उस अन्धे ने हाथी का केवल पाँव स्पर्श किया था। और एक जन बोला, 'हाथी तो एक सूप (छाज) के समान है।' उसने केवल एक कान पर हाथ लगाकर देखा था। इसी प्रकार जिन्होंने सूण्ड या पेट पर हाथ लगाकर देखा था वे नाना प्रकार से कहने लगे। वैसे ही ईश्वर के सम्बन्ध में जिसने जितना देखा है वह सोचता है, ईश्वर उतना ही, वैसा ही है; और कुछ नहीं।

"एक व्यक्ति जंगल (बाह्य) से आकर बोला, वृक्ष के नीचे एक सुन्दर लाल गिरगिट देखकर आया हूँ। और एक बोला, मैं तुम्हारे से पहले उसी पेड़ के नीचे गया था— लाल क्यों? वह तो हरा है, मैंने अपनी आँखों से देखा है। और एक व्यक्ति बोला, उसे मैं खूब जानता हूँ, तुम लोगों से पहले मैं गया था, वह गिरगिट मैंने भी देखा है— नीला है। और दो जन थे। वे बोले, पीला और

खाकी— नाना रंग का। अन्त में खूब झगड़ा लग गया। सभी समझते हैं, मैंने जो देखा है, वही ठीक है। उनका झगड़ा देखकर एक व्यक्ति ने पूछा, बात क्या है भाई ? जब समस्त विवरण सुन लिया, तब बोला, मैं उसी वृक्ष के नीचे रहता हूँ; और वह जानवर क्या है, मैं पहचानता हूँ। तुम प्रत्येक जन जो-जो कह रहे हो, वह समस्त सत्य है; वह गिरगिट है— कभी हरा, कभी नीला इसी प्रकार नाना रंगों का होता है! और फिर कभी देखता हूँ, बिल्कुल भी कोई रंग नहीं होता। निर्गुण।''

(साकार कि निराकार)

(गोस्वामी के प्रति)— ''तो फिर ईश्वर को केवल साकार कहने से क्या होगा ? वे श्रीकृष्ण की न्यायीं मनुष्य-देह धारण करके आते हैं, यह भी सत्य है; नाना रूप लेकर भक्त को दर्शन देते हैं, यह भी सत्य है। और फिर वे निराकार, अखण्ड सच्चिदानन्द हैं, यह भी सत्य है। वेद में उनको साकार, निराकार दोनों ही कहा है; सगुण कहा है, निर्गुण भी कहा है।

''कैसा है, जानते हो ? सच्चिदानन्द मानो अनन्त सागर है। ठण्ड के कारण जैसे सागर का जल बरफ बनकर तैरता है, नाना रूप धारण कर बरफ की चाँई (सिल) सागर के जल पर तैरती है; वैसे ही भक्तिहिम लगने पर सच्चिदानन्द-सागर में साकार मूर्ति-दर्शन होता है। भक्त के लिए साकार। और, ज्ञान-सूर्य के निकलने पर फिर बरफ गल जाती है, पहले जैसा जल था, वैसा ही जल बन जाता है— अध: ऊर्ध्व परिपूर्ण। (नीचे-ऊपर भरा हुआ।) जल ही जल। तभी तो श्रीमद्भागवत में सब स्तव करते हैं— 'ठाकुर! तुम्हीं साकार हो, तुम्हीं निराकार हो; हमारे सामने तुम मनुष्य बनकर घूम-फिर रहे हो, किन्तु वेद में तुम्हें ही वाक्य-मन के अतीत कहा है।'

''इसलिए कह सकते हो, किसी-किसी भक्त के लिए वे नित्य साकार हैं। ऐसी जगह भी है जहाँ पर बरफ पिघलती नहीं, स्फटिक का आकार धारण कर लेती है।''

केदार— जी, श्रीमद्भागवत में व्यास* तीन दोषों के लिए भगवान से क्षमा-प्रार्थना करते हैं। एक जगह कहते हैं, हे भगवन्! तुम वाक्य-मन के अतीत हो, किन्तु मैं केवल तुम्हारी लीला— तुम्हारा साकार रूप ही वर्णन कर रहा हूँ, अतएव अपराध क्षमा करें।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, ईश्वर साकार और फिर निराकार, और फिर साकार-निराकार के भी पार हैं। उनकी इति नहीं की जाती।

षष्ठ परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण— नित्यसिद्ध और कौमार वैराग्य)

राखाल के पिता बैठे हैं। राखाल आजकल ठाकुर के पास रह रहे हैं। राखाल की माता ठाकुराणी की परलोक-प्राप्ति के बाद पिता ने द्वितीय विवाह किया है। राखाल यहाँ पर हैं, जभी पिता कभी-कभी आते हैं। वे यहाँ रहने पर विशेष आपत्ति नहीं करते। ये सम्पन्न और विषयी व्यक्ति हैं, मामलों-मुकद्दमों आदि में सर्वदा पड़े रहना पड़ता है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पास कई वकील, डिप्टी मैजिस्ट्रेट इत्यादि आते हैं। राखाल के पिता उन लोगों के साथ बातचीत करने कभी-कभी आते हैं। उनसे विषयकर्म के सम्बन्ध में भी अनेक परामर्श मिलता है।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बीच-बीच में राखाल के बाप को देखते हैं। ठाकुर की इच्छा है कि राखाल उनके पास दक्षिणेश्वर में रह जाए।

श्रीरामकृष्ण *(राखाल के बाप और भक्तों के प्रति)*— आहा, राखाल का स्वभाव आजकल कैसा हो रहा है! उसके मुख की ओर ताक कर देखो— देखोगे, बीच-बीच में होंठ हिल रहे हैं! अन्तर में ईश्वर का नाम-जप करते

---

* ''रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यायेन यत् कल्पितं,
स्तुत्यानिर्वाचनीयताऽखिलगुरो दूरीकृता यन्मया।
व्यापित्वं च निराकृतं भगवती यत्तीर्थयात्रादिना,
क्षन्तव्य जगदीश! तद्विकलतादोषत्रयं मत्कृतम्।''

हैं ना; तभी होंठ हिलते हैं।

"ये सब छोकरे (लड़के) नित्य सिद्ध की श्रेणी के हैं। ईश्वर का ज्ञान लेकर जन्मे हैं। थोड़ी उमर होते ही समझ सकेंगे, स्त्री का शरीर लग जाने पर फिर रक्षा नहीं है। वेद में होमा पक्षी की बात है; वह पक्षी आकाश में ही रहता है, धरती पर कभी नहीं आता। आकाश में ही अण्डे देता है। अण्डा गिरता रहता है, किन्तु इतने ऊँचे से गिरता है कि गिरते-गिरते ही अण्डा फूट जाता है। तब पक्षी का बच्चा निकल पड़ता है, वह भी गिरता रहता है। किन्तु तब भी इतने ऊँचे पर होता है कि गिरते-गिरते उसके पंख निकल आते हैं और आँखें खुल जाती हैं। तब वह देख लेता है कि मैं धरती के ऊपर गिर पड़ूँगा! मिट्टी पर गिरते ही मृत्यु है! ज्यों ही धरती दिखाई दी त्यों ही माँ की ओर सरपट दौड़। एकदम उड़ना आरम्भ कर दिया— जिससे माँ के पास पहुँच सके। एक लक्ष्य— माँ के पास जाना।

"ये सब छोकरे ठीक वैसे ही हैं। बचपन से ही संसार देखकर भय होता है! एक चिन्ता है— कैसे माँ के पास जाऊँ, किसी तरह ईश्वर-लाभ हो जाए।

"यदि कहो कि विषयियों के मध्य रहना, विषयी लोगों के वीर्य से जन्म, तब फिर ऐसी भक्ति, ऐसा ज्ञान कैसे होता है? उसका अर्थ है। मल के ढेर पर यदि चना पड़े, तो फिर उससे चने का पौधा ही होता है। उस चने से कितना अच्छा काम होता है! मल के ढेर पर पड़ा है तो इसलिए क्या अन्य पौधा होगा?

"आहा, राखाल का स्वभाव आजकल कैसा हो रहा है! फिर वह होगा क्यों नहीं? यदि सूख (जमींकंद) अच्छा होता है तो उसकी गाँठ भी अच्छी ही तो होती है। *(सब का हास्य)* जैसा बाप वैसा ही बेटा।"

मास्टर *(एकान्त में, गिरीन्द्र के प्रति)*— साकार-निराकार की बात को इन्होंने किस प्रकार से समझा दिया है! वैष्णव लोग, लगता है, केवल साकार ही कहते हैं?

गिरीन्द्र— हो सकता है। वे कट्टर होते हैं।

मास्टर— 'नित्य साकार' आप ने समझ लिया? स्फटिक की बात? मैं तो वह

अच्छी तरह नहीं समझ पाया।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— हाँ बई, तुम क्या बातें कर रहे हो?

मास्टर और गिरीन्द्र थोड़ा हँसकर चुप हो गए।

वृन्दे दासी *(रामलाल के प्रति)*— अरे रामलाल, इस व्यक्ति को अब खाने को दो, मेरा खाना उसके बाद दियो।

श्रीरामकृष्ण— अरे, वृन्दे को खाना अभी तक नहीं दिया?

सप्तम परिच्छेद

(पंचवटी में कीर्त्तनानन्द में)

अपराह्न में भक्तगण पंचवटी में कीर्त्तन करते हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने उनके संग योगदान किया। आज भक्तों के संग में माँ का नाम करते-करते आनन्द में प्लावित हो रहे हैं—

श्यामापद आकाशेते मन घुड़िखान उड़ितेछिलो।
कलुषेर कुवातास पेये गोप्ता खेये पड़े गेलो॥
मायाकान्नि होलो भारी, आर आमि उठाते नारि।
दारासुत कलेर-दड़ि, फाँस लेगे से फेंसे गेलो॥
ज्ञान-मुण्ड गेछे छिंड़े, उठिए दिले अमनि पड़े।
माथा नाइ से आर कि उड़े, संगेर छ'जन जयी होलो॥
भक्ति डोरे छिलो बाँधा, खेलते एसे लागलो धांधा।
नरेशचन्द्रेर हासा कांदा, ना आसा एक छिलो भालो॥

[भावार्थ— श्यामा माँ के पद रूपी आकाश में मन रूपी पतंग उड़ रही थी। 'कलुष' की कुवायु पाकर वह चकरियाँ (गोप्ता) खाकर गिर गई। माया रूपी कन्नी भारी हुई और मैं उसे फिर उठा नहीं पाया। पत्नी-पुत्र रूपी डोर में फँसकर वह उलझ गई। उसका ज्ञान रूपी मस्तक फट गया है, उठाते ही वह (पतंग) गिर जाती है। 'माथा' ही नहीं तो वह क्या उड़े? संगी छ:जन (कामादि) जयी हुए। वह भक्तिरूपी डोर से बँधी थी, खेलने आते ही यह लगा कि नरेशचन्द्र के इस हँसने-रोने से तो न आना ही भला था।]

और फिर गाना हुआ। गाने के साथ-साथ खोल-करताल बजने लगे। ठाकुर भक्तों के साथ नाच रहे हैं—

मजलो आमार मन भ्रमरा श्यामापद नील कमले।
(श्यामा पद नील कमले, कालीपद नील कमले!)
यतो विषय मधु तुच्छ होलो कामादि कुसुम सकले॥

चरण कालो भ्रमर कालो, कालय कालो मिशे गेलो।
पंच तत्त्व, प्रधान मत्त, रंग देखे भंग दिलो॥

कमलाकान्तेर मने, आशापूर्ण ऐतोदिने।
तार सुख-दु:ख समान होलो आनन्द-सागर उथले॥

[भावार्थ— श्यामा के नीलकमल जैसे चरणों में, काली के चरणों में मेरा मन-भ्रमर रम गया। संसार की कामना, वासना आदि पुष्पों का विषयरूपी मधु अब तुच्छ प्रतीत हो रहा है। काली के काले चरणों में मनरूपी काले भौंरे के बैठने से दोनों काले मिलकर एक हो गए, और भुलाने वाली पाँच तत्त्व रूपी अविद्या माया इस तमाशे को देखकर भाग गई। कमलाकान्त (कवि) के मन की आशाएँ इतने दिनों बाद आज पूर्ण हुईं। आनन्द-समुद्र में उथल-पुथल होने से सुख-दु:ख समान हो गए।]

कीर्त्तन चल रहा है। भक्तगण गा रहे हैं—

श्यामा माँ कि एक कल करेछे।
(काली माँ कि एक कल करेछे)
चौद्द पौया कलेर भितरी, कतो रंग देखातेछे।

आपनि थाकि कलेर भितरी, कल घुराय धरे कल डुरि;
कल बोले आपनि घुरि, जाने ना के घुरातेछे।

जे कले जेनेछे तारे, कल होते होबे ना तारे,
कोन कलेर-भक्ति डोरे आपनि श्यामा बाँधा आछे।

[भावार्थ— श्यामा माँ ने कैसी कल रची है। काली माँ ने कैसी कल रची है। चौदह पाव (साढ़े तीन हाथ) की कल के भीतर कितने खेल दिखाती है। वही स्वयं कल के भीतर रहकर, कल की डोर पकड़ कर उसे घुमाया करती है। कल कहती है मैं अपने-आप घूमती हूँ, नहीं जानती कौन उसे घुमा रहा है। जिसने कल को पहचान लिया है, उसे कल (यन्त्र) नहीं बनना पड़ेगा। किसी-किसी कल की भक्ति रूपी डोर में श्यामा माँ खुद बँधी हुई है।]

भवे आसा खेलते पाशा कतो आशा करेछिलाम।
आशार आशा भांगा दशा प्रथमे पंजड़ि पेलाम॥
पो बार आठार षोल, जुगे-जुगे एलाम भालो।
शेषे कचे बारो पोडे मागो, पंजाछक्काय बन्दी होलाम॥

[भावार्थ— इस संसार में पासा खेलने के लिए आना होता है। यहाँ आकर मैंने बड़ी-बड़ी आशाएँ की थीं। आशा की आशा करना ही भग्न दशा है। पहले मुझे पंजा मिला। पौ-बारह! अठारह, सोलह, जिस प्रकार बार-बार आया करते हैं, मैं भी उसी तरह युग-युग में आया। (अन्त में) ओ माँ, कच्चे बारह पड़ने पर पंजे और छक्के में मैं बँध गया।]

भक्तगण आनन्द करने लगे। वे तनिक थमे तो ठाकुर उठे। कमरे में और आस-पास अब बहुत-से भक्त आ गए हैं।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण पंचवटी से दक्षिणास्य होकर अपने कमरे की ओर जा रहे हैं। साथ में मास्टर हैं। बकुलतले आने पर श्रीयुक्त त्रैलोक्य के साथ मेल हुआ। उन्होंने प्रणाम किया।

श्रीरामकृष्ण *(त्रैलोक्य के प्रति)*— पंचवटी में वे लोग गाने गा रहे हैं। चलो तो एक बार!

त्रैलोक्य— मैं जाकर क्या करूँगा?

श्रीरामकृष्ण— क्यों, सुन्दर है, देखने चलो एक बार।

त्रैलोक्य— एक बार देख आया हूँ।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, बड़ा अच्छा, सुन्दर।

अष्टम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और गृहस्थ-धर्म)

प्राय: साढ़े पाँच-छ: बजे हैं। ठाकुर भक्तों के संग दक्षिण-पूर्व के बरामदे में बैठे हैं। भक्तों को देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(केदार आदि भक्तों के प्रति)*— संसार-त्यागी साधु! वह तो हरिनाम करेगा ही। उसका तो और कोई कार्य नहीं है। वह यदि ईश्वर-चिन्तन

करता है तो आश्चर्य की बात नहीं है। वह यदि ईश्वर-चिन्तन न करे, वह यदि हरिनाम न करे, तो फिर तो सब निन्दा करेंगे।

"संसारी व्यक्ति यदि हरिनाम करता है, तब तो फिर बहादुरी है। देखो, राजा जनक बहुत बहादुर थे। दो-धारी तलवार चलाते थे— एक ज्ञान की और एक कर्म की। इस ओर पूर्ण ब्रह्मज्ञान है और एक ओर संसार का कर्म करते हैं। व्यभिचारिणी स्त्री गृहस्थ का सब कार्य बड़े परिश्रम से करती है किन्तु सर्वदा ही उपपति का ध्यान करती है।

"साधु-संग है सर्वदा दरकार। साधु ईश्वर के संग आलाप करवा देते हैं।"

केदार— जी हाँ! महापुरुष जीव के उद्धार के लिए आते हैं। जैसे रेल का इंजन, पीछे कितनी गाड़ियाँ बँधी रहती हैं, खींचकर ले जाता है। अथवा जैसे नदी या तालाब कितने जीवों की प्यास शान्त करते हैं।

क्रमशः भक्तगण घरों को वापिस जाने के लिए तैयार हुए। एक-एक करके सबने ठाकुर श्रीरामकृष्ण को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया और उनकी पदधूलि ग्रहण की। भवनाथ को देखकर ठाकुर कह रहे हैं, "तू आज फिर मत जा। तुम लोगों को देखकर ही उद्दीपन होता है।"

भवनाथ ने अभी तक संसार में प्रवेश नहीं किया है। वयस 19/20 है, गौरवर्ण, सुन्दर देह। ईश्वर के नाम से उनके नेत्रों में जल आ जाता है। ठाकुर उन्हें साक्षात् नारायण देखते हैं।

तृतीय खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तसंगे ठाकुर श्रीरामकृष्ण

श्रीयुक्त अधर सेन का द्वितीय दर्शन

प्रथम परिच्छेद

(मणिलाल और काशीदर्शन)

आओ भाई, आज फिर दक्षिणेश्वर के मन्दिर में ठाकुर श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने चलें। वे भक्तों के संग में किस प्रकार विलास करते हैं, ईश्वर के भाव में सर्वदा किस प्रकार समाधिस्थ रहते हैं, देखेंगे। कभी समाधिस्थ, कभी कीर्त्तनानन्द में मतवाले और या फिर कभी प्राकृत (साधारण) मनुष्य की न्यायीं भक्तों के साथ बातें करते हैं, देखेंगे। श्रीमुख में ईश्वर-वाणी के अतिरिक्त और कुछ नहीं है; मन सर्वदा अन्तर्मुख है, व्यवहार पाँच बरस के बालक जैसा। प्रति निश्वास के साथ माँ का नाम कहते हैं। बिल्कुल अभिमान-शून्य पाँच वर्ष के बालकवत् व्यवहार है। पंचवर्षीय बालक विषय में आसक्तिशून्य, सदानन्द, सरल और उदार प्रकृति होता है। 'ईश्वर सत्य और समस्त अनित्य, दो दिन का'— यही एक वाणी है। चलो, उसी प्रेमोन्मत्त बालक को देखने चलें। महायोगी! अनन्त सागर के तीर पर एकाकी विचरण कर रहे हैं। उस अनन्त सच्चिदानन्द सागर के बीच जाने क्या देखते हैं! देखकर प्रेम में उन्मत्त होकर टहल रहे हैं।

आज चैत्र मास की शुक्ला प्रतिपदा तिथि, रविवार। गत कल

शनिवार अमावस्या को ठाकुर बलराम के घर में गए थे। अमावस्या; घने अन्धकार में एकाकी महाकाली; महाकाल के साथ रमण कर रही हैं। इसी कारण ठाकुर अमावस्या में अधिक स्थिर नहीं रह सकते। जभी है बालक की अवस्था। जो माँ को अहर्निश देख रहे हैं, और जिनका 'माँ' बिना नहीं चलता, वे बालक।

आज रविवार, 8 अप्रैल, 1883 ईसवी, 26वाँ चैत्र, प्रात:काल। और ये ठाकुर बालक की न्यायीं हँस रहे हैं। पास बैठा है एक छोकरा भक्त— राखाल।

मास्टर ने आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। ठाकुर के भतीजे रामलाल हैं, किशोरी भी हैं और भी कई भक्त जमा हो गए हैं। पुराने ब्राह्मभक्त श्रीयुक्त मणिलाल मल्लिक आए और ठाकुर श्रीरामकृष्ण को प्रणाम किया।

मणि मल्लिक काशीधाम गए थे। वे व्यापारी व्यक्ति हैं, काशी में उनकी कोठी (कार्यालय) है।

श्रीरामकृष्ण— हाँ जी, काशी गए थे, वहाँ कोई साधु-वाधु मिला?

मणिलाल— जी हाँ, त्रैलंग स्वामी, भास्करानन्द इत्यादि को मिलने गया था।

श्रीरामकृष्ण— बतलाओ तो, कैसा देखा सब को?

मणिलाल— त्रैलंग स्वामी उसी मन्दिर में ही हैं, मणिकर्णिका घाट पर वेणीमाधव के पास। लोग कहते हैं, पहले उनकी उच्च अवस्था थी। कितने चमत्कार कर सकते थे! अब बहुत कम हो गए हैं।

श्रीरामकृष्ण— यह तो सब विषयी लोगों की निन्दा है।

मणिलाल— भास्करानन्द सबके साथ मिलते हैं, वे त्रैलंग स्वामी जैसे नहीं हैं कि बातें बिल्कुल ही बन्द।

(सिद्ध के लिए 'ईश्वर कर्त्ता'— औरों के लिए पापपुण्य— 'फ्रीविल')

श्रीरामकृष्ण— भास्करानन्द के साथ तुम्हारी कोई बात हुई?

मणिलाल— जी हाँ, अनेक बातें हुईं। उनमें पापपुण्य की बात भी हुई। वे

बोले, पाप के रास्ते पर न जाओ, पापचिन्तन छोड़ दो, ईश्वर ऐसा चाहते हैं। जिन कार्यों के करने पर पुण्य होता है, वे ही समस्त कार्य करो।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वैसा होता है, ऐहिकों (संसारियों) के लिए। जिन्हें चैतन्य हो गया है, जिन्हें ईश्वर सत् और सब असत्, अनित्य— यह बोध हो गया है, उनका और एक प्रकार का भाव होता है। वे जानते हैं कि ईश्वर ही एकमात्र कर्त्ता हैं, और सब अकर्त्ता हैं। जिनको चैतन्य हो गया है, उनका पाँव बेताला नहीं पड़ता, हिसाब करके पाप-त्याग नहीं करना पड़ता, ईश्वर के ऊपर इतना प्यार होता है कि जो कर्म वे करते हैं, वह कर्म ही है सत्कर्म! किन्तु वे जानते हैं इस कर्म का कर्त्ता मैं नहीं हूँ, मैं ईश्वर का दास हूँ। मैं यन्त्र हूँ, वे यन्त्री हैं। वे जैसा करवाते हैं, वैसा ही करता हूँ, जैसा बुलवाते हैं, वैसा ही बोलता हूँ; वे जैसा चलाते हैं, वैसा ही चलता हूँ।

"जिन्हें चैतन्य हो गया है, वे पापपुण्य के पार हैं। वे देखते हैं ईश्वर ही सब कुछ कर रहे हैं। एक स्थान पर एक मठ था। मठ के साधुगण रोज मधुकरी (भिक्षा) करने जाया करते थे। एक दिन एक साधु ने भिक्षा करते-करते देखा कि एक जमींदार एक व्यक्ति को खूब मार रहा है। वह साधु बड़ा दयालु था; वह बीच में पड़कर जमींदार को मारने से मना करने लगा। जमींदार तब बहुत क्रोध में था, उसका सारा कोप उस साधु के शरीर पर झड़ गया। ऐसा प्रहार किया कि वह साधु बेहोश होकर गिर पड़ा। किसी ने जाकर मठ में खबर दी, 'तुम्हारे एक साधु को जमींदार ने खूब मारा है।' मठ के साधुओं ने आकर देखा कि वह साधु बेहोश पड़ा हुआ है। तब वे पाँच जन उठाकर उसको मठ में ले आए और एक कमरे में लिटा दिया। साधु बेहोश पड़ा है, चारों ओर मठ के लोग दु:खित भाव से बैठे हैं, कोई-कोई हवा करता है। एक ने कहा, 'मुँह में थोड़ा-सा दूध देकर देखो।' मुँह में दूध देते-देते साधु को होश आ गया। आँखें खोलकर देखने लगा। एक व्यक्ति ने कहा, 'ज़रा देखें होश आया कि नहीं? लोगों को पहचान सकता है कि नहीं?' तब उसने साधु से खूब चिल्ला कर पूछा, 'महाराज! तुम्हें कौन दूध पिला रहा है?' साधु आस्ते-आस्ते बोला, 'भाई! जिन्होंने मुझे मारा था, वे ही दूध

पिला रहे हैं।'

"ईश्वर को बिना जाने ऐसी अवस्था नहीं होती।"

मणिलाल— जी, आप जो बात कह रहे हैं, वह बड़ी उच्च बात है! भास्करानन्द के संग ऐसी ही तरह-तरह की बातें हुई थीं।

श्रीरामकृष्ण— किसी के घर में रहते हैं?

मणिलाल— एक व्यक्ति के घर रहते हैं।

श्रीरामकृष्ण— कितनी वयस है?

मणिलाल— पचपन होगी।

श्रीरामकृष्ण— और कोई बात हुई?

मणिलाल— मैंने पूछा था, भक्ति कैसे होती है? उन्होंने कहा, 'नाम करो, राम-राम बोलो।'

श्रीरामकृष्ण— यह बड़ी बढ़िया बात है।

द्वितीय परिच्छेद

(गृहस्थ और कर्मत्याग)

मन्दिर में श्री श्री भवतारिणी, श्री श्री राधाकान्त और द्वादश शिव की पूजा शेष हो गई। क्रमशः भोग-आरती का बाजा बज रहा है। चैत्र मास, दोपहर का समय। तेज़ धूप है। अभी-अभी ज्वार आरम्भ हुआ है। दक्षिण दिशा से हवा चली। पूतसलिला भागीरथी अभी-अभी उत्तरवाहिनी हुई हैं। ठाकुर आहार के बाद कमरे में थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। राखाल का गाँव बसिरहाट के पास है। गर्मियों में वहाँ पर जल-अभाव बहुत होता है।

श्रीरामकृष्ण *(मणि मल्लिक के प्रति)*— देखो, राखाल कह रहा था, उसके देश में जलकष्ट बहुत है। तुम वहाँ पर एक तालाब क्यों नहीं खुदवा देते! उससे तो कितने ही लोगों का उपकार होगा। *(सहास्य)* तुम्हारे पास तो बहुत-सा रुपया है, इतना रुपया लेकर क्या करोगे? यह सुना है कि तेली बड़े

हिसाबी होते हैं। *(ठाकुर का और भक्तों का हास्य)*।

मणिलाल मल्लिक का घर कलकत्ते में सिन्दुरियापट्टी में है। सिन्दुरियापट्टी के ब्राह्मसमाज के अधिवेशन उनके घर में ही होते हैं। ब्राह्मसमाज के वार्षिक उत्सव के उपलक्ष्य में वे बहुतों को निमन्त्रण दिया करते हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण को भी बुलाते हैं। मणिलाल का बराहनगर में एक बागान है। वहाँ पर वे प्राय: एकाकी आकर रहते हैं और साथ ही ठाकुर का दर्शन कर जाते हैं। मणिलाल यथार्थ हिसाबी व्यक्ति निश्चय ही हैं! सारी गाड़ी भाड़े पर लेकर वे प्राय: बराहनगर नहीं आते; ट्राम में चढ़कर पहले शोभाबाज़ार आते हैं, वहाँ से सवारी के हिसाब से चढ़कर बराहनगर पहुँचते हैं; धन का अभाव नहीं है; कई वर्ष पहले गरीब छात्रों के भरण-पोषण के लिए एकदम से पच्चीस हज़ार रुपये का बन्दोबस्त कर दिया था।

मणिलाल चुप रहे। कुछ देर पश्चात् इधर-उधर की बातों के बाद पहली बात पर बोले—

महाशय, आपने तालाब की बात कही थी। वह तो कहनी भी चाहिए, तो फिर और तेली-वेली क्यों कहना?

भक्तों में से कोई-कोई मुख को दबाकर हँस रहे हैं। ठाकुर भी हँस रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण और ब्राह्मभक्त— प्रेमतत्त्व)

कुछ समय पश्चात् कलकत्ते से कई पुराने ब्राह्मभक्त आ गए। उनमें एक श्रीयुक्त ठाकुरदास सेन हैं। कमरे में बहुत-से भक्तों का समागम हुआ है। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हैं। सहास्यवदन, बालकमूर्ति! उत्तरास्य बैठे हैं। ब्राह्मभक्तों के संग में आनन्द से आलाप कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(ब्राह्म और अन्य भक्तों के प्रति)*— तुम लोग 'पैम पैम' करते

हो; किन्तु प्रेम क्या सामान्य वस्तु है ? चैतन्यदेव को 'प्रेम' हुआ था। प्रेम के दो लक्षण हैं—

"प्रथम— जगत भूल जाएगा। इतना ईश्वर में प्यार हो जाता है कि बेहोश! चैतन्यदेव को 'वन देखकर वृन्दावन का भाव और समुद्र देखकर श्री जमुना जी का भाव हो जाता था।'

"द्वितीय लक्षण— अपनी देह जो इतनी प्रिय वस्तु है, इसके ऊपर भी ममता नहीं रहती, देहात्मबोध बिल्कुल चला जाता है।

"ईश्वर-दर्शन बिना हुए प्रेम नहीं होता।

"ईश्वर-लाभ के कुछ लक्षण हैं। जिसके भीतर अनुराग के ऐश्वर्य का प्रकाश होता है, उसे ईश्वर-लाभ करने में फिर देर नहीं।

"अनुराग का ऐश्वर्य क्या-क्या है ? विवेक, वैराग्य, जीव पर दया, साधुसेवा, साधुसंग, ईश्वर का नामगुण-कीर्त्तन, सत्य वाणी— यही सब।

"अनुराग के ऐसे लक्षण देखकर ठीक-ठीक कहा जा सकता है कि ईश्वर के दर्शन में और देरी नहीं है। बाबू किसी खानसामा के घर जाएँगे, यह बात यदि निश्चित हो जाए, तो खानसामे के घर की अवस्था देखकर यह बात भली प्रकार समझ में आ सकती है। प्रथम झाड़-झंकाड़ कटे होते हैं, जाले झड़े होते हैं। झाड़ा-बुहारा होता है। बाबू स्वयं ही दरी, हुक्का इत्यादि वस्तुएँ भेज देते हैं। इन सब को आते देखकर ही लोगों को समझने में देरी नहीं लगती कि बाबू आ रहे हैं।"

एक भक्त— जी, क्या पहले विचार करके इन्द्रियनिग्रह करना चाहिए ?

श्रीरामकृष्ण— वह एक पथ है, विचार-पथ। भक्तिपथ से भी अन्तर-इन्द्रिय-निग्रह अपने-आप हो जाता है। और सहज में हो जाता है। ईश्वर के ऊपर जितना प्यार आएगा, उतना ही इन्द्रियसुख अलोना लगेगा।

"जिस दिन सन्तान मर जाती है, उस दिन शोक में क्या स्त्री-पुरुष का देहसुख की ओर मन जा सकता है ?"

एक भक्त— उन्हें प्यार ही कहाँ कर सकता हूँ ?

(नाम-माहात्म्य— उपाय— माँ का नाम)

श्रीरामकृष्ण— उनका नाम करने से सब पाप कट जाते हैं! काम, क्रोध, शरीरसुख की इच्छा इत्यादि सब भाग जाते हैं।

एक भक्त— उनका नाम करना अच्छा ही कहाँ लगता है?

श्रीरामकृष्ण— व्याकुल होकर उनसे प्रार्थना करो ताकि उनके नाम में रुचि हो। वे ही मनोवांछा पूर्ण करेंगे. . .

यह कह कर ठाकुर देवदुर्लभ कण्ठ से गाने लगे। जीव के दुःख में कातर होकर माँ के पास हृदय की वेदना बता रहे हैं। साधारण जीव की अवस्था का अपने ऊपर आरोप करके माँ के निकट जीव का दुःख बता रहे हैं—

दोष कारु नय गो मा, आमि स्वखात सलिले डूबे मरि श्यामा।

षडरिपु होलो कोदण्डस्वरूप, पुण्यक्षेत्र माझे काटिलाम कूप,
से कूपे बेड़िलो कालरूप जल, काल-मनोरमा॥

आमार कि होबे तारिणी, त्रिगुणधारिणी—विगुण करेछे स्वगुणे!

किसे ए बारि निबारि भेवे दाशरथिर अनिवार वारि नयने;
छिलो वारि कक्षे, क्रमे एलो वक्षे, जीवने जीवन केमने होय माँ रक्षे,

आछि तोर अपिक्षे, दे मा मुक्तिभिक्षे, कटाक्षेते कोरे पार॥

[भावार्थ— हे माँ श्यामा, दोष किसी का नहीं है, मैं अपने खोदे हुए कुएँ में डूब कर स्वयं मर रहा हूँ। छः रिपु— काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदि धनुष स्वरूप हैं, पवित्र क्षेत्र में कुआँ खोद लिया था। उस कूप में कालरूप जल भर गया है। हे काल-मनोरमा! काल की कामिनी! हे तारिणी, मेरा क्या होगा? हे त्रिगुणधारिणी, तुम तो अपने गुणों द्वारा गुणरहित कर देती हो। कैसे इस जल को हटाऊँ— यह सोच कर दाशरथी के नेत्रों से सतत जल बह रहा है। जल पहले तो जल के स्थान (नेत्रों) तक ही था, धीरे-धीरे छाती तक आ गया है। अब जीवन की रक्षा कैसे होगी माँ? मैं तो तुम्हारी आशा में हूँ। माँ! तुम मुक्ति दो, तुम तो अपने कटाक्ष, मात्र एक नज़र, से ही पार कर देती हो।

फिर और गा रहे हैं। जीव का विकार रोग! उनके नाम में रुचि होने से ही विकार कटेगा—

ए कि विकार शंकरी, कृपा-चरणतरी पेले धन्वन्तरी!

अनित्य गौरव होलो अंगदाह, आमार आमार एकि होलो पाप मोह;
(ताय) धन जन तृष्णा ना होय विरह; किसे जीवन धरि॥
अनित्य आलाप, कि पाप प्रलाप, सतत सर्वमंगले;
माया— काकनिद्रा ताहे दाशरथि नयनयुगले;
हिंसा रूप ताहे से उदरे कृमि, मिछे काजे भ्रमि सेइ होय भ्रमि,
रोगे बाँचि कि ना बाँचि त्वन्नामे अरुचि दिवा शर्बरी॥

[भावार्थ— हे माँ शंकरी, आपकी कृपाचरण रूपी नाव में धन्वन्तरी को पाकर भी यह कैसा मेरा विकार (रोग) है! नाशवान (अनित्य) गर्व अंगों में जलन कर रहा है। 'मेरा-मेरा' यह कैसा पाप-मोह हो गया है! धन, जन की तृष्णा जाती नहीं, जीवन को कैसे धारण करूँ? हे सर्वमंगलमयी, मुझ में सतत, सर्वदा अनित्य आलाप; पाप-प्रलाप होता रहता है और दाशरथी कहते हैं, मेरे दोनों नयनों में माया-काक-निद्रा भर गई है और तभी हिंसा रूप कीड़े पेट में हैं, और मैं मिथ्या जागतिक कार्यों में भ्रमित होकर घूम रहा हूँ। रात-दिन तेरे नाम में अरुचि हो गई है— अब मैं इस रोग से बचूँगा कि नहीं बचूँगा!]

श्रीरामकृष्ण— 'उनके नाम में अरुचि!' विकार में यदि रुचि हो जाए तो फिर बचने का और कोई पथ नहीं रहता। यदि थोड़ी रुचि रहे तब फिर बचने की बहुत आशा है। इसीलिए नाम में रुचि। ईश्वर के नाम करने ही चाहिएँ— दुर्गानाम, कृष्णनाम, शिवनाम, कोई भी नाम लेकर ईश्वर को पुकारते क्यों नहीं? यदि नाम करते हुए अनुराग दिन-दिन बढ़ता है, यदि आनन्द होता है तो फिर कोई और भय नहीं है, विकार कटेगा ही कटेगा। उनकी कृपा होगी ही होगी।

(आन्तरिक भक्ति और दिखावटी भक्ति
ईश्वर मन देखते हैं)

"जैसा भाव वैसा लाभ। दो मित्र मार्ग में जा रहे थे। एक जगह पर भागवत-पाठ हो रहा था। एक मित्र ने कहा, 'आओ भाई, थोड़ा भागवत सुनें!' दूसरे ने भी थोड़ा-सा झाँक कर देखा। फिर वहाँ से वह चला गया वेश्यालय में। वहाँ पर तनिक पश्चात् ही उसके मन में बड़ी विरक्ति आ गई, वह अपने-आप ही कहने लगा, 'मुझे धिक्कार है! मेरा मित्र हरिकथा सुन रहा है, और

मैं कहाँ आ पड़ा हूँ!' इधर जो भागवत सुन रहा था, उसे भी धिक्कार आ रहा था। वह सोचता है, 'मैं कितना मूर्ख हूँ! यह क्या अण्डबण्ड बक रहा है। मैं यहाँ बैठा हुआ हूँ! मेरा मित्र कैसा आमोद–प्रमोद कर रहा है।' ये जब मर गए, तो जो भागवत सुन रहा था, उसको यमदूत ले गए; जो वेश्यालय में गया था, उसको विष्णुदूत वैकुण्ठ में ले गए।

''भगवान मन देखते हैं। कौन क्या काम कर रहा है, कौन कहाँ पर पड़ा हुआ है, उसे नहीं देखते। 'भावग्राही जनार्दन।'

''कर्त्ताभजा लोग मन्त्र देने के समय कहते हैं, अब 'मन तोर'। अर्थात् अब सब तेरे मन के ऊपर निर्भर करता है।

''वे कहते हैं, 'जिसका ठीक मन है, उसका ठीक करण है, उस का लाभ भी ठीक है।'

''मन के गुण से हनुमान समुद्र पार कर गए थे। 'मैं राम का दास, मैं राम–नाम करता हूँ, मैं क्या नहीं कर सकता!' यह विश्वास!

(क्यों ईश्वर-दर्शन नहीं होता ?— 'अहं' बुद्धि के कारण)

''जब तक अहंकार तब तक अज्ञान। अहंकार रहते मुक्ति नहीं।

''गायें हाम्मा हाम्मा करती हैं और बकरियाँ म्यैं–म्यैं करती हैं। इसी कारण उन्हें कितनी यन्त्रणा होती है! कसाई काटता है, जूते, ढोल का चमड़ा तैयार करता है। यन्त्रणा का अन्त नहीं। हिन्दी में 'हम' का अर्थ है मैं, और 'मैं' का मतलब भी है मैं। 'मैं'–'मैं' करने के कारण कितना कर्मभोग होता है। अन्त में पेट की अन्तड़ियों से ताँत तैयार करता है। तब धुनिये के हाथ में 'तुंहु–तुंहु' बोलता है अर्थात् 'तुमि–तुमि' कहता है। 'तुम्हीं–तुम्हीं' कहने के पश्चात् ही तब निस्तार होता है! फिर और यन्त्रणा भोगनी नहीं पड़ती।

''हे ईश्वर, तुम कर्त्ता हो और मैं अकर्त्ता, इसी का नाम है ज्ञान।

''नीचे होने पर ही तब ऊँचे हुआ जाता है। चातक पक्षी का घोंसला नीचे होता है; किन्तु चढ़ता खूब ऊँचाई पर है। ऊँची जमीन पर खेती नहीं

होती। नीची धरती चाहिए, तब फिर जल जमता है, तब खेती होती है।''

(गृहस्थियों को साधुसंग आवश्यक— यथार्थ दरिद्र कौन ?)

''थोड़ा-सा कष्ट करके सत्संग करना चाहिए। घर में तो केवल विषयों की बात होती है। रोग लगा ही रहता है। पक्षी डण्डे पर बैठता है तब ही राम-राम कहता है। वन में उड़ते हुए तो फिर काँव-काँव ही करता है।

''रुपया रहने से ही मनुष्य बड़ा नहीं हो जाता। बड़े मनुष्य के घर का एक लक्षण विशेष है, सारे घर में आलोक रहता है। गरीब लोग तेल खरच नहीं कर सकते, तभी उतने आलोक का बन्दोबस्त नहीं करते। इस देहमन्दिर को अन्धकार में नहीं रखते, ज्ञानदीप जला देना चाहिए।

''ज्ञानदीप ज्वेले घरे ब्रह्ममयीर मुख देखो ना।''

(प्रार्थना-तत्त्व— चैतन्य का लक्षण)

''सब को ही ज्ञान हो सकता है— जीवात्मा और परमात्मा। प्रार्थना करो— उस परमात्मा के संग में सब का ही योग हो सकता है। गैस का नल सब घरों में ही लगा हुआ है। गैस कम्पनी से गैस मिल जाती है। अर्जी दो; अर्जी देने पर ही गैस का बन्दोबस्त कम्पनी कर देगी, घर में आलोक हो जाएगा। सियालदाह में ऑफिस है। *(सब का हास्य)।*

''किसी को चैतन्य हो गया है। किन्तु इसका लक्षण है। ईश्वरीय बात के अतिरिक्त उसे और कुछ सुनना अच्छा नहीं लगता। और ईश्वरीय बातों के अतिरिक्त और कुछ बोलना अच्छा नहीं लगता। जैसे सात समुद्र, गंगा, यमुना सब में ही जल है; किन्तु चातक वर्षा का जल चाहता है। प्यास से छाती फटी जा रही है, तो भी अन्य जल नहीं पीता।''

चतुर्थ परिच्छेद

(श्री रामलाल आदि का गाना और श्रीरामकृष्ण की समाधि)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने गाना गाने के लिए कहा। रामलाल और कालीबाड़ी के एक ब्राह्मण कर्मचारी गाते हैं। संगत में एक बाएँ का ठेका—

हृदि-वृन्दावने वास यदि करो कमलापति।
ओहे भक्तिप्रिय, आमार भक्ति होबे राधासति॥

मुक्ति कामना आमारि, होबे वृन्दे गोपनारी,
देह होबे नन्देरपुरी, स्नेह होबे मा यशोमती॥

आमाय धरो-धरो जनार्दन, पापभार गोवर्धन,
कामादि छः कंसचरे ध्वंस करो सम्प्रति॥

बाजाये कृपा बाँशरी, मनधेनुके वश करि,
तिष्ठ-हृदि-गोष्ठे पुराओ इष्ट एइ मिनति॥

आमार प्रेमरूप जमुना-कूले, आशा वंशीवटमूले,
स्वदास भेवे सदय-भावे, सतत करो बसति॥

यदि बोलो राखाल-प्रेमे, बन्दी थाकी व्रजधामे,
ज्ञानहीन राखाल तोमार, दास होबे हे दाशरथि॥

[भावार्थ— हे कमलापति, आप यदि हृदय रूपी वृन्दावन में निवास करो, तो अरे ओ भक्तिप्रिय, मेरी भक्ति होगी सती राधा के प्रति! मेरी मुक्ति की कामना गोपनारी होगी और देह होगी नन्द की पुरी, इस में स्नेह होगा यशोदा माता। हे जनार्दन! तुम मेरे पापों के भार रूपी गोवर्धन को धारण करो। मेरे कामादि छह कंस के चरों को अब जल्दी ही ध्वंस कर दो। अपनी कृपा-बंसरी बजाकर मनरूप धेनु को वश में कर लो और मेरी यही विनती है कि आप हृदय रूप गोष्ठ में रहकर मेरा इष्ट-दर्शन पूरा करो। तेरे प्रेमरूप जमुना के तट पर, आाशा के वंशीवट के तले अपने दास पर सस्नेह सदय भावना से सदा-सर्वदा वास करो। यदि कहो कि ग्वालों के प्रेम में मैं ब्रजधाम में बन्दी रहता हूँ तब तो यह ज्ञान हीन राखाल (ग्वाला) तुम्हारा दास बन जाएगा।]

नवनीरदवर्ण किसे गण्य श्यामचाँदरूप हेरे,
करेते बाँशी अधरे हासि, रूपे भुवन आलो करे॥

जड़ित पीतबसन, जिनि तड़ित करे झलमल,
आन्दोलित चरणावधि हृदिसरोजे बनमाल,
निते युवती-जाति कुल, आलो करे जमुनाकूल,
नन्दकुल चन्द्र जतो चन्द्र जिनि विहरे॥
श्यामगुणधाम पशि, हाम हृदि-मन्दिरे,
प्राण मन ज्ञान सखी हरे निलो बाँशीर स्वरे,
गंगानारायणेर जे दुःख से कथा बोलिबो कारे,
जानते यदि जेते गो सखी जमुनाय जल आनिबारे॥

[भावार्थ— प्रिय श्याम का चाँद-जैसा रूप देखकर अब नव नीरद बादलों का वर्ण किस गिनती में है? हाथ में बंसी, होठों पर हँसी लिए अपने रूप से जगत को रोशन कर रहे हैं। पीतवस्त्र में लिपटे हुए वे मानो बिजली से झलमल कर रहे हैं। उनके हृदयकमल पर वनमाल चरणों तक झूल रही है और युवा गोपियों के संग यमुना के तट को प्रकाशित करते हुए वे नन्दकुल के चन्द्र अनन्त चन्द्रों को भी लजा रहे हैं। वे, हे सखि, गुणों के धाम वहाँ खड़े हुए अपनी बंसी के स्वर से मेरे प्राण, मन, होश सब हरण करके मेरे हृदय-मन्दिर में प्रवेश कर गए हैं। गंगानारायण कहते हैं कि जो दुःख मुझे है, उसे मैं किससे कहूँ? ओ सखि, तुम यदि यमुना जी के तट पर जल लेने जाती तो अपने-आप समझ जाती।]

श्यामापद-आकाशेते मन घुड़िखान उड़तेछिलो;
कलुषेर कु-बातास पेये गोप्ता खेये पोड़े गेलो।*

(ईश्वर-लाभ का उपाय
अनुराग— गोपीप्रेम— 'अनुराग-बाघ')

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— बाघ जैसे गप-गप करके जानवर खा डालता है, वैसे ही 'अनुराग-बाघ' काम, क्रोध इत्यादि रिपुओं को खा डालता है। ईश्वर में एक बार अनुराग हो जाने पर फिर काम-क्रोधादि नहीं रहते। गोपियों की ऐसी ही अवस्था हो गई थी— कृष्ण में अनुराग।

''फिर और है 'अनुराग-अंजन'। श्रीमती कहती हैं, 'सखी, चारों दिशाएँ कृष्णमय देख रही हूँ!' वे बोलीं, 'सखी, 'अनुराग-अंजन' आँखों में

---

* पूरे गाने तथा अर्थ के लिए इसी ग्रन्थ का पृ० 35 देखिए।

लगा रखा है, तभी तो ऐसा देख रही हो।' यह भी है कि मेंढक का सिर जलाकर काजल तैयार करके, उस काजल को आँखों में लगा लेने पर चारों दिशाएँ सर्पमय दिखाई देती हैं।

"जो केवल कामिनी-कांचन ही लिए रहते हैं— ईश्वर का एक बार भी विचार नहीं करते, वे बद्ध जीव हैं। उनके द्वारा क्या महत् कार्य होगा? जैसे कव्वे द्वारा चोंच मारा आम देवता की सेवा में नहीं लगता, स्वयं खाने में भी सन्देह रहता है।

"बद्धजीव— संसारी जीव, ये रेशम के कीड़े जैसे हैं। इच्छा करने से काटकर बाहिर निकल सकते हैं; किन्तु स्वयं घर बनाया है, छोड़कर आते हुए माया आ जाती है। अन्त में मृत्यु।

"जो मुक्तजीव हैं, वे कामिनी-कांचन के वश में नहीं हैं। कोई-कोई रेशमकीट बड़ी होशियारी से कोआ काटकर निकल आता है। किन्तु वे दो-एक ही होते हैं।

"माया में भूले रहते हैं। दो-एक जन को ज्ञान होता है; वे माया के जादू के भुलावे में नहीं आते; कामिनी-कांचन के वश में नहीं आते। जच्चाखाने की राख की खुली हांडी जिसके पाँव पर गिर जाती है, उस को जादूगर के डैम-डैम शब्द का जादू नहीं लगता। जादूगर क्या कर रहा है, वह ठीक-ठीक देख लेता है।

"साधनसिद्ध और कृपासिद्ध। कोई-कोई बहुत कष्ट से खेत को सींचने का जल लाता है; ला सकने पर ही फसल होती है। किसी को जल सींचना नहीं पड़ता— वर्षा का जल भर जाता है। उसे कष्ट करके जल लाना नहीं पड़ता। इस माया के हाथ से बचने के लिए कष्ट करके साधन करना पड़ता है। कृपासिद्ध को कष्ट नहीं करना पड़ता! किन्तु वे दो-एक जन ही होते हैं।

"और नित्यसिद्ध, इनको जन्मजन्मान्तरों से ज्ञान, चैतन्य हुआ रहता है। जैसे फव्वारा बन्द रहता है। मिस्त्री ने इसे खोलते हुए, उसे खोलते हुए उस फव्वारे को भी खोल दिया, और फर-फर करके जल निकलने लगा।

नित्यसिद्ध के प्रथम अनुराग को जब लोग देखते हैं, तब अवाक् हो जाते हैं। कहते हैं— इतनी भक्ति, इतना वैराग्य, इतना प्रेम कहाँ पर था!''

ठाकुर अनुराग की बातें कह रहे हैं। गोपियों के अनुराग की बात। और फिर गाना होने लगा। रामलाल गाते हैं—

नाथ! तुमि सर्वस्व आमार। प्राणाधार सारात्सार;
नाहि तोमा बिने केहो त्रिभुवने, बोलिबार आपनार॥

तुमि सुख-शान्ति, सहाय-सम्बल, सम्पद-ऐश्वर्य, ज्ञान, बुद्धिबल,
तुमि वासगृह, आरामेर स्थल, आत्मीय, बन्धु, परिवार॥

तुमि इहकाल, तुमि परित्राण, तुमि परकाल, तुमि स्वर्गधाम,
तुमि शास्त्रविधि, गुरु, कल्पतरु, अनन्त सुखेर आधार॥

तुमि हे उपाय, तुमि हे उद्देश्य, तुमि स्रष्टा, पाता, तुमि हे उपास्य,
दण्डदाता पिता, स्नेहमयी माता, भवार्णबे कर्णधार (तुमि)॥

[भावार्थ— हे नाथ! तुम्हीं हमारे सर्वस्व हो, तुम्हीं प्राणों के आधार हो, सब वस्तुओं के सार हो। तीनों लोकों में तुम्हारे सिवा कोई नहीं जिसे मैं अपना कह सकूँ। तुम्हीं सुख, शान्ति, सहाय, सम्बल, सम्पद, ऐश्वर्य, ज्ञान, बुद्धि और बल हो। तुम्हीं वासगृह, आरामस्थल, आत्मीय, बन्धु और परिवार हो। तुम्हीं हमारे इहकाल, परकाल, परित्राण और स्वर्गधाम हो। तुम्हीं शास्त्रविधि, गुरु, कल्पतरु और अनन्त सुख के आधार हो। तुम्हीं हमारे उपाय हो, तुम्हीं उद्देश्य हो; स्रष्टा, पालनकर्त्ता और उपास्य भी तुम्हीं हो। दण्ड देने वाले पिता, स्नेहमयी माता, संसार-सागर से पार ले जाने वाले कर्णधार भी तुम्हीं हो।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— आहा कैसा गाना! 'तुमि सर्वस्व आमार!'— 'तुम्हीं हमारे सर्वस्व हो!' गोपियों ने अक्रूर के आने के पश्चात् श्रीमती से कहा, 'राधे! तेरा सर्वस्व धन हरण करने के लिए वह आया है!' ऐसा प्यार! भगवान के लिए ऐसी व्याकुलता!

फिर और गाना होने लगा—

धोरो ना धोरो ना रथचक्र रथ कि चक्रे चले,
जे चक्रेर चक्री हरि जार चक्रे जगत चले।

[भावार्थ— (श्री कृष्ण जब अक्रूर जी के संग वृन्दावन से मथुरा जाने के लिए रथ पर सवार हो गए, तो गोपियों ने रथ के पहिए पकड़ लिए ताकि रथ हिल न सके। तब अक्रूर

जी बोले—) जिस रथ की चक्री (सुदर्शनचक्र-धारी) विष्णु हैं, जिनके चक्र (शासन, शक्ति) से जगत चलता है, उनका रथ क्या पहियों पर चलता है? अरी गोपियो, रथ को मत पकड़ो, मत पकड़ो।]

प्यारी! कार तरे आर, गाँथो हार यतने।

[भावार्थ— हे प्यारी सखि, अब और फिर किसके लिए तुम इतने यत्न से हार गूँथ रही हो?]

गाना सुनते-सुनते ठाकुर श्रीरामकृष्ण गम्भीर समाधि-सिन्धु में मग्न हो गए! भक्तगण एक दृष्टि से ठाकुर की ओर अवाक् होकर देख रहे हैं। और कोई भी शब्द नहीं है। ठाकुर समाधिस्थ! हाथ जोड़ कर बैठे हुए हैं, जैसे फोटोग्राफ में दिखाई देते हैं। केवल चक्षुओं के बाहिर के कोनों से आनन्द-धारा बह रही है।

(ईश्वर के साथ बातें
श्रीरामकृष्ण-दर्शन— कृष्ण सर्वमय)

काफी देर बाद ठाकुर थोड़े से प्रकृतिस्थ हुए। किन्तु समाधि में जिन के दर्शन किए थे, उन्हीं के संग क्या बातें कर रहे हैं? केवल एक-आध बात भक्तों के कान में पहुँच रही है। ठाकुर अपने-आप बोल रहे हैं—
'तुम ही मैं, मैं ही तुम। तुम खाओ; तुम, मैं खाऊँ!... सुन्दर किन्तु कर रहे हो।'

''यह क्या पीलिया हो गया है? चारों ओर ही तुम्हें देख रहा हूँ।

''कृष्ण, हे दीनबन्धु, प्राणवल्लभ! गोविन्द!''

प्राणवल्लभ! गोविन्द! बोलते-बोलते फिर दोबारा समाधिस्थ हो गए। कमरा निस्तब्ध। भक्तगण महाभावमय ठाकुर श्रीरामकृष्ण को अतृप्त नयनों से बार-बार देख रहे हैं।

पंचम परिच्छेद

श्रीरामकृष्ण का ईश्वर-आवेश, उनके मुख से ईश्वर की वाणी

(श्रीयुक्त अधर सेन का द्वितीय दर्शन— गृहस्थ के प्रति उपदेश)

श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ! छोटी खाट पर बैठे हैं। भक्तगण चारों ओर बैठे हुए हैं। श्रीयुक्त अधर सेन कई बन्धुओं के साथ आए हैं। अधर हैं डिप्टी मैजिस्ट्रेट। ये ठाकुर का अब दूसरी बार दर्शन कर रहे हैं। अधर की आयु 29/30 होगी। अधर के मित्र सारदाचरण पुत्रशोक से सन्तप्त हुए हैं। वे स्कूल के डिप्टी इन्सपैक्टर थे; पैंशन लेकर, और पहले से भी, वे साधन-भजन किया करते हैं। बड़े लड़के के मरने से किसी प्रकार भी सान्त्वना नहीं पा सक रहे हैं। जभी अधर ठाकुर का नाम बताकर उनके पास ले आए हैं। अधर की अपनी भी ठाकुर को फिर दोबारा देखने की इच्छा हुई है।

समाधि भंग हुई। ठाकुर ने देखा, कमरा-भर लोग उनकी ओर देख रहे हैं। तब वे अपने-आप कुछ कहते हैं।

क्या ईश्वर अपने मुख से बातें कह रहे हैं और उपदेश दे रहे हैं?

श्रीरामकृष्ण— विषयी व्यक्तियों का ज्ञान कभी-कभी दिखाई देता है। कभी-कभी दीपशिखा की न्यायीं। न, न, सूर्य की किरण की न्यायीं। छेद में से जैसे किरण आती है। विषयी लोगों का ईश्वर का नाम करना ही है— अनुराग नहीं। बालक जैसे कहता है, तुझे परमेश्वर की सौगन्ध। चाची-ताई का झगड़ा सुनकर 'परमेश्वर की सौगन्ध' सीखा है!

"विषयी लोगों में तेज़ नहीं होता। हो गया तो हो गया, नहीं हुआ तो न सही। जल का प्रयोजन है, कुआँ खोद रहा है। खोदते-खोदते ज्यों ही पत्थर निकलने लगे, त्यों ही वह स्थान छोड़ दिया। और अन्य एक स्थान पर खोदते हुए रेत मिल गया; केवल रेत ही रेत निकलने लगा। वह स्थान भी छोड़ दिया। जहाँ खोदना आरम्भ किया है, उसी स्थान को ही खोदता रहेगा तभी तो जल मिलेगा।

"जीव जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल मिलता है। वही गाने में है—

दोष कारो नय गो मा।
आमि स्वखात सलिले डूबे मरि श्यामा।"

[भावार्थ— किसी का भी दोष नहीं है, माँ। मैं तो अपने खोदे हुए जल में स्वयं ही डूब रहा हूँ।]

"मैं और मेरा अज्ञान है। विचार करने लगो तो जिसे मैं-मैं करते हो, देखोगे वह आत्मा के अतिरिक्त और कोई नहीं है। विचार करो— तुम शरीर हो, या हाड़, या मांस, या और कुछ? तब देखोगे तुम कुछ नहीं हो। तुम्हारी कोई भी उपाधि नहीं है। तब फिर सोचो, 'मैं कुछ नहीं करता, मेरा दोष भी नहीं, गुण भी नहीं। पाप भी नहीं, पुण्य भी नहीं।'

"यह सोना है, यह पीतल है— इसका नाम अज्ञान है। सब सोना है— इसका नाम ज्ञान है।

(ईश्वर-दर्शन के लक्षण
श्रीरामकृष्ण क्या अवतार हैं?)

"ईश्वर-दर्शन हो जाने पर विचार बन्द हो जाता है। ईश्वर-लाभ हो गया है, तो भी विचार करता है, यह भी है। अथवा कोई भक्ति के साथ उनका नाम-गुणगान करता है।

"बच्चा कब तक रोता है? जब तक स्तन-पान नहीं करता। उस के पश्चात् ही रोदन बन्द हो जाता है। केवल आनन्द। आनन्द से माँ का दूध पीता है। तब भी एक बात है। दूध पीते-पीते बीच-बीच में खेलता है, और फिर हँसता है।

"वे ही सब कुछ बने हैं। फिर भी मनुष्य में उनका अधिक प्रकाश है। जहाँ पर शुद्ध सत्त्व बालक का स्वभाव होता है, हँसता है, रोता है, नाचता है, गाता है— वहाँ पर वे साक्षात् वर्तमान होते हैं।"

(पुत्रशोक— 'जीव साज समरे')

ठाकुर ने अधर से उनकी कुशल का परिचय लिया। अधर ने अपने मित्र के पुत्रशोक की बात निवेदन की। ठाकुर अपने-आप गाना गाते हैं—

जीव साज समरे, रणवेशे काल प्रवेशे तोर घरे।
भक्ति रथे चड़ि, लये ज्ञान तूण, रसना-धनुके दिये प्रेम गुण,
ब्रह्ममयीर नाम ब्रह्म अस्त्र ताहे सन्धान करे॥
आर एक युक्ति रणे, चाइ ना रथरथी, शत्रुनाशे जीव होबे सुसंगति,
रणभूमि यदि करे दाशरथी भागीरथीर तीरे॥

[भावार्थ— हे जीव, समर के लिए सजो, रणवेश में काल ने तेरे घर में प्रवेश कर लिया है। भक्ति के रथ पर चढ़कर, ज्ञान-तरकश लेकर, रसना रूपी धनुष को प्रेम की डोरी लगाकर, ब्रह्ममयी के नाम रूपी ब्रह्मास्त्र को उस पर सन्धान करो। रण की एक युक्ति और है। दाशरथी कहता है कि यदि तुम भागीरथी के तीर को रणभूमि बना लेते हो तो रथ-रथी की जरूरत नहीं पड़ेगी, शत्रु का नाश होगा और जीव को सुसंगति मिल जाएगी।]

''क्या करोगे? इस काल के लिए तैयार हो जाओ। काल ने घर में प्रवेश कर लिया है, उनका नाम-रूप अस्त्र लेकर युद्ध करना होगा, वे ही कर्त्ता हैं। मैं कहता हूँ, जैसे करवाती हो, वैसे ही करता हूँ; जैसे बुलवाती हो वैसे ही बोलता हूँ; मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो; मैं घर हूँ, तुम घरणी हो; मैं गाड़ी, तुम इंजीनियर।

''उनको आम मुखत्यारी दे दो! भले मनुष्य के ऊपर भार दे देने से अमंगल नहीं होता। जो होना हो, वे करें।

''अरे भाई, शोक नहीं होगा क्या? आत्मज है न! रावण-वध हो चुका था; लक्ष्मण ने दौड़ के जाकर देखा कि हड्डियों के भीतर ऐसी जगह नहीं है जहाँ पर छिद्र न हो। तब राम से बोले, 'राम! तुम्हारे वाणों की कैसी महिमा है! रावण के शरीर में ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ पर छिद्र न हुआ हो!' तब राम बोले, 'भाई, हड्डियों में जो ये छिद्र देख रहे हो, वे बाणों के कारण नहीं हैं; शोक में उसके हाड़ जर्जर हो गए हैं। वे छिद्र-समूह उसी शोक के चिह्न हैं। उसने हाड़ विदीर्ण कर दिए हैं।'

''इसीलिए यह सब अनित्य है। गृह, परिवार, सन्तान— दो दिनों के लिए हैं। तालवृक्ष ही सत्य है। दो-एक ताल गिर गए हैं। उसका फिर क्या दुःख?

''ईश्वर तीन काम कर रहे हैं— सृष्टि, स्थिति, प्रलय। मृत्यु तो है ही। प्रलय के समय सब ध्वंस हो जाएगा, कुछ भी नहीं रहेगा। केवल माँ सृष्टि के बीज आदि समेट कर रख देंगी। फिर दोबारा नूतन सृष्टि के समय उन बीजों को बाहिर निकालेंगी। गृहिणियों की जैसे निकशुक की हांडी होती है। *(सब का हास्य)*। उसमें खीरे के बीज, समुद्र-झाग, नील की गोली छोटी-छोटी पोटलियों में बँधे रहते हैं।''

षष्ठ परिच्छेद

(अधर के प्रति उपदेश— सामने काल)

ठाकुर अधर के संग अपने कमरे के उत्तर के बरामदे में खड़े हुए बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(अधर के प्रति)*— तुम डिप्टी हो। यह पद भी ईश्वर के अनुग्रह से मिला है। उनको मत भूलो। किन्तु यह जान लो कि सब को ही एक पथ से ही जाना होगा।* यहाँ पर दो-दिन के लिए हो।

''संसार कर्मभूमि है। यहाँ पर कर्म करने के लिए आना हुआ है। जैसे गाँव में घर है और कलकत्ता जाकर कर्म करते हैं।

''कुछ कर्म करना आवश्यक है। साधन। शीघ्र-शीघ्र कर्मों को समाप्त कर लेना चाहिए। सुनार सोने को गलाने के समय 'हापर, पाखा,

---

* श्रीयुक्त अधरचन्द्र सेन ने डेढ़ वर्ष पश्चात् देह त्याग की। ठाकुर उस संवाद को सुनकर काफी समय तक माँ के पास रोए थे। अधर ठाकुर के परम भक्त थे। ठाकुर ने कहा था, 'तुम मेरे अपने हो'। अधर का घर कलकत्ता, शोभा बाजार, बेनेटोला में है। उनकी कई कन्या सन्तान अब भी वर्तमान हैं। कलकत्ते के घर में श्रीयुक्त श्यामलाल, श्रीयुक्त हीरालाल इत्यादि भाई कोई-कोई अब भी हैं। उनके घर की बैठक और ठाकुर-दालान तीर्थ हो गए हैं।

चोंग' (धौंकनी, पंखा, फूँकनी) सब के द्वारा हवा करता है जिससे आग खूब तेज़ हो जाए और सोना गल जाए। सोना गल जाने पर तब कहता है, हुक्का बना। अब तक माथे से पसीना बहने लगा था। उसके पश्चात् हुक्का पिएगा।

''खूब 'रोक' (तेज़) चाहिए। तभी साधन होता है। दृढ़ प्रतिज्ञा।

''उनके नाम-बीज की बड़ी शक्ति है। अविद्या का नाश कर देती है। बीज इतना कोमल होता है, अंकुर इतना कोमल होता है; तो भी सख्त मिट्टी भेदन कर देता है। मिट्टी फट जाती है।

''कामिनी-कांचन के भीतर रहने से मन को वे खूब खींच लेते हैं। सावधानी से रहना चाहिए। त्यागियों को इतना भय नहीं। ठीक-ठीक त्यागी कामिनी-कांचन से दूर रहता है। तभी साधना रहने पर ईश्वर में सर्वदा मन रख सकता है।

''ठीक-ठीक त्यागी। जो सर्वदा ईश्वर में मन लगा सकते हैं, वे मधु-मक्खीवत् केवल फूल के ऊपर ही बैठ कर मधुपान करते हैं। गृहस्थ में कामिनी-कांचन के भीतर जो है, उसका ईश्वर में मन हो सकता है; और फिर कभी कामिनी-कांचन में भी मन चला जाता है। जैसे साधारण मक्खी सन्देश (मिठाई) पर भी बैठती है और सड़े घाव पर भी बैठती है; विष्ठा पर भी बैठ जाती है।

''ईश्वर में ही सर्वदा मन को रखना है। प्रथम थोड़ा-सा परिश्रम कर लेना चाहिए। तत्पश्चात् पैन्शन उपभोग करो।''

चतुर्थ खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण सुरेन्द्र-भवन के उत्सव-मन्दिर में

प्रथम परिच्छेद

(श्री श्री अन्नपूर्णा-पूजा के उपलक्ष्य में भक्तसंगे सुरेन्द्र-भवन में)

सुरेन्द्र के घर के आँगन में ठाकुर श्रीरामकृष्ण सभा को आलोकित किए हुए बैठे हैं, अपराह्न के छः बजे हैं।

आँगन से पूर्वास्य होकर देव-दालान में चढ़ना होता है। दालान के भीतर सुन्दर देव-प्रतिमा है। माँ के पादपद्मों में जवा, बिल्व तथा गले में पुष्पमाला है। माँ भी देव-दालान को आलोकित किए बैठी हैं।

आज श्री श्री अन्नपूर्णा-पूजा है। चैत्र शुक्लाष्टमी, 15 अप्रैल, 1883-रविवार, (3रा वैशाख, 1290 बं० साल)। सुरेन्द्र ने माँ का आह्वान किया है, तभी ठाकुर निमन्त्रित हैं। ठाकुर भक्तों के संग में आए हैं, आकर दालान पर चढ़कर श्री श्री अन्नपूर्णा-प्रतिमा-दर्शन किया। प्रणाम और दर्शन के बाद खड़े होकर माँ की ओर ताकते हुए हाथों पर मूलमन्त्र-जप कर रहे हैं। भक्तगण श्री श्री अन्नपूर्णा-प्रतिमा-दर्शन और प्रणाम के बाद प्रभु के निकट खड़े हुए हैं।

ठाकुर भक्तों के संग आँगन में आ गए हैं। आँगन में दरी बिछी हुई है। उसके ऊपर चादर, उसके ऊपर कई 'गाओ' तकिए हैं। एक किनारे खोल-करताल लेकर कई वैष्णव बैठे हुए हैं— संकीर्त्तन होगा। ठाकुर

को घेर कर भक्तगण बैठ गए।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण को एक गाओ तकिया लेकर बैठने के लिए कहा। वे तकिए के निकट नहीं बैठे। तकिया दूर खिसका कर बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— तकिए के सहारे बैठना! कैसा है, जानते हो? अभिमान त्याग करना बड़ा कठिन है। अभी-अभी विचार करते हो अभिमान कुछ नहीं है। और फिर कहाँ से आ पड़ता है!

''बकरे को काट दिया गया है, तब भी अंग-प्रत्यंग हिलते हैं।

''स्वप्न में भय देख रहे थे; नींद टूट गई, अच्छी तरह जाग गए हो तथापि छाती धक्-धक् करती है। अभिमान ठीक ऐसा ही है। मार भगाने पर भी कहाँ से आ पड़ता है! ऐसे मुख फुला कर कहता है, मेरी खातिर नहीं की।''

केदार— तृणादपि सुनीचेन, तरोरिव सहिष्णुना।

श्रीरामकृष्ण— मैं भक्त की रेणु की रेणु।

(वैद्यनाथ का प्रवेश) वैद्यनाथ विद्याप्राप्त हैं। कलकत्ते की बड़ी अदालत के वकील हैं। इन्होंने ठाकुर को हाथ जोड़कर प्रणाम किया और एक तरफ आसन ग्रहण किया।

सुरेन्द्र *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— ये मेरे रिश्तेदार हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, देखता हूँ, इनका स्वभाव तो सुन्दर है।

सुरेन्द्र— ये आपसे कुछ पूछेंगे, तभी आए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(वैद्यनाथ के प्रति)*— जो कुछ देख रहे हो, सब ही उनकी शक्ति है। उनकी शक्ति के बिना कोई कुछ भी नहीं कर सकता। तथापि एक बात है कि उनकी शक्ति सब स्थानों पर समान नहीं है। विद्यासागर ने कहा था, 'ईश्वर ने क्या किसी को अधिक शक्ति दी है?' मैंने कहा, 'शक्ति कम या अधिक न दिए हुए होते तो तुम्हें हम देखने क्यों आए हैं? तुम्हारे क्या दो सींग निकले हैं?' तो भी यह तो निश्चित है कि ईश्वर विभुरूप में सर्वभूतों में हैं; केवल शक्ति विशेष है।

(स्वाधीन इच्छा या ईश्वर की इच्छा ?
Free will or God's will ?)

वैद्यनाथ— महाशय! मेरा एक सन्देह है। यही जो कहते हैं Free will अर्थात् स्वाधीन इच्छा— मन में सोचता हूँ, अच्छा काम भी कर सकता हूँ, मन्द काम भी कर सकता हूँ, यह क्या सत्य है ? सचमुच ही क्या हम स्वाधीन हैं ?

श्रीरामकृष्ण— समस्त ही ईश्वराधीन है— उनकी ही लीला है। उन्होंने नाना चीजें बनाई हैं— छोटा, बड़ा, बलवान्, दुर्बल, भला, मन्दा। भला मनुष्य; बुरा मनुष्य— यह सब उनकी माया है; खेल है। यही देखो ना, बाग के सब वृक्ष समान नहीं होते।

"जब तक ईश्वर प्राप्त नहीं होते, तब तक लगता है हम स्वाधीन हैं। यह भ्रम वे ही रख देते हैं, वैसा न होता तो पाप बढ़ता। पाप का भय न होता। पाप की सज़ा न होती।

"जिसने ईश्वर प्राप्त कर लिया है, जानते हो उसका भाव कैसा है ? मैं यन्त्र, तुम यन्त्री; मैं घर, तुम घरणी; मैं रथ, तुम रथी; जैसे चलाते हो वैसे ही चलता हूँ; जैसे बुलवाते हो, वैसे ही बोलता हूँ।

(ईश्वर-दर्शन क्या एक दिन में होता है ? साधुसंग आवश्यक)

श्रीरामकृष्ण *(वैद्यनाथ के प्रति)*— तर्क करना अच्छा नहीं; आप क्या कहते हैं ?

वैद्यनाथ— जी हाँ, तर्क करने का भाव तो ज्ञान होने पर ही जाता है।

श्रीरामकृष्ण— Thank you. (थैंक यू)। *(सब का हास्य)*। तुम्हारा होगा! ईश्वर की बात यदि कोई कहता है तो लोग विश्वास नहीं करते। यदि कोई महापुरुष कहते हैं, मैंने ईश्वर को देखा है, तब भी साधारण लोग उस महापुरुष की बात नहीं लेते। लोग सोचते हैं कि यदि उसने ईश्वर देखा है, हमें भी दिखा दे। किन्तु एक दिन में क्या नाड़ी देखना सीख जाता है ? वैद्य के साथ बहुत दिनों तक घूमना पड़ता है; तब कौनसी तो कफ की है, कौनसी वायु की

और कौनसी पित्त की नाड़ी है, बतलाया जा सकता है। जिसका नाड़ी देखना व्यवसाय है, उसका संग करना चाहिए। *(सब का हास्य)*।

''अमुक नम्बर का सूत है, यह क्या हर कोई पहचान सकता है? सूत का व्यवसाय करो तो जो व्यवसाय करते हैं, उनकी दुकान पर कुछ दिन रहो; तभी कौनसा चालीस नम्बर का है और कौनसा इकतालीस नम्बर का सूत है, झट से बता सकता है।''

द्वितीय परिच्छेद

(भक्तों के साथ कीर्त्तनानन्द में— समाधि-मन्दिर में)

अब कीर्त्तन आरम्भ होगा। मृदंग (खोल) बज रहा है। गोष्ठ* मृदंग बजा रहा है। अभी तक गाना आरम्भ नहीं हुआ। खोल का मधुर वाद्य, गौरमण्डल और उनके नामसंकीर्त्तन की बात का उद्दीपन करता है। ठाकुर भाव में मग्न हो रहे हैं। बीच-बीच में खोली की ओर देख कर कहते हैं— ''आहा! आहा! कैसा आनन्द! मुझे रोमांच हो रहा है।''

गायकगण पूछते हैं, क्या गावें? ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने विनीत भाव से कहा— ''थोड़ी गौरांग की कथा गाओ।''

कीर्त्तन आरम्भ हुआ। प्रथम गौर-चन्द्रिका। तत्पश्चात् अन्य गीत—

लाखवान कांचन जिनि।
रसे ढर ढर गोरा मुँजाङ निछनि॥
कि काज शरद कोटि शशी।
जगत करिले आलो गोरा मुखेर हासि॥

[भावार्थ— प्रेम-रस में ओत-प्रोत गौर के चेहरे का वर्ण अत्यधिक चमकदार सोने से भी अधिकतर लावण्यमय है। जगत को आलोकित करने वाली उनके मुख की हँसी के सामने शरद् ऋतु के करोड़ों चन्द्रमाओं का क्या काम!]

---

* एक मृदंगवादक

कीर्त्तन में गौरांग का रूप-वर्णन हो रहा है। कीर्त्तनिये नूतन पद जोड़ रहे हैं—

(सखि! देखिलाम पूर्णशशी) (ह्रास नाइ मृगांक नाई।)
[सखि! देखा था पूर्णशशि] [न ह्रास है न मृगांक]
(हृदय आलो करे।)
[हृदय को आलोकित करता है।]

कीर्त्तनिया फिर कहता है—

कोटि शशीर अमृते मुख माजा।
[कोटि चन्द्र के अमृत से उसका मुख धुला हुआ है]

यह बात सुनते-सुनते ठाकुर समाधिस्थ हो गए।

गाना चलने लगा। कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर श्रीरामकृष्ण की समाधि भंग हो गई। वे भाव में विभोर होकर हठात् खड़े हो गए और प्रेमोन्मत्त गोपियों की भाँति श्रीकृष्ण के रूप का वर्णन करते-करते कीर्त्तनिये के संग-संग आखर (मूल संगीत के साथ सुर-संयोग) देते हैं—

(सखि! रूपेर दोष, ना मनेर दोष?)
(आन् हेरिते श्याममय हेरि त्रिभुवन!)
[सखि! रूप का दोष कि मन का दोष? अन्य कुछ देखने की जगह मैं श्याममय त्रिभुवन देखती हूँ।]

ठाकुर नृत्य करते-करते आखर दे रहे हैं। भक्तगण अवाक् होकर देख रहे हैं। कीर्त्तनिये फिर कह रहे हैं।
गोपी की उक्ति—

बांशी बाजिस् ना! तोर कि निद्रा नाई को?
[बंसी री! तू अब न बज! क्या तुझे नींद नहीं आती?]

आखर देकर कह रहे हैं—

(आर निद्रा होबेइ वा केमन करे!) (शय्या तो कर-पल्लव!)
(आहार तो श्रीमुखेर अमृत।) (ताते अंगुलिर सेवा!)

[भावार्थ— और निद्रा होगी भी कैसे? शय्या तो करपल्लव जो है, आहार है श्रीमुख का

अमृत और उस पर अंगुलियों की सेवा!]

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने फिर आसन ग्रहण किया। कीर्त्तन चलने लगा।

श्रीमती कहती हैं—

चक्षु गेलो, श्रवण गेलो, घ्राण गेलो,
इन्द्रिय सकले चले गेलो,—
आमि एकेला केनो बा र'लाम गो।

[भावार्थ— आँखें गईं, श्रवण गए, घ्राण गया— सभी इन्द्रियाँ गईं, मैं ही फिर अकेली क्यों रह गई रे!]

अन्त में श्री राधाकृष्ण का मिलन-गान हुआ—

धनी माला गाँथे, श्यामगले दोलाइते,
एमन समय आइलो सम्मुखे श्याम गुणमणि।

[भावार्थ— राधा माला गूँथ रही हैं, श्याम के गले में झुलाने के लिए। ऐसे समय गुणों की खान श्याम उनके सामने आ गए हैं।]

(गाना— युगल-मिलन)

निधुबने श्यामविनोदिनी भोर।
दुंहार रूपेर नाहिको उपमा प्रेमेर नाहिको ओर॥
हिरण किरण आध बरण आध नीलमणि-ज्योति।
आध गले बनमाला विराजित आध गले गजमति॥
आध श्रवणे मकर-कुण्डल आध रतन छबि।
आध कपाले चाँदरे उदय आध कपाले रबि॥
आध शिरे शोभे मयूर शिखण्ड आध शिरे दोले वेणी।
कनक कमल करे झलमल, फणी उगारबे मणि॥

[भावार्थ— कुंजवन में श्यामविनोदिनी राधिका विभोर हैं (कृष्णावेश में)। दोनों के रूप की न तो कोई उपमा है ओर न ही उनके प्रेम का छोर है। आधे वर्ण में सुनहरी किरण है, आधे में नीलमणि की ज्योति। आधे गले में वनमाला विराजित है और आधे में गजमुक्ता। आधे श्रवणों में मकर-कुण्डल हैं और आधे में रत्न-छवि। आधे मस्तक पर चाँद का उदय है और आधे पर रवि। आधे सिर में मयूर-शिखण्ड है और आधे में वेणी। स्वर्णकमल झिलमिल कर रहा है और फणि मानो मणि उगलने को है।]

कीर्त्तन थम गया। ठाकुर 'भागवत-भक्त-भगवान' यह मन्त्र उच्चारण करके बार-बार भूमिष्ठ होकर प्रणाम कर रहे हैं। चारों ओर के भक्तों को उद्देश्य करके प्रणाम कर रहे हैं और संकीर्त्तनभूमि की धूलि ग्रहण करके मस्तक पर लगा रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और साकार-निराकार)

रात्रि प्राय: साढ़े नौ। श्री श्री अन्नपूर्णा ठाकुर-दालान को आलोकित किए हुए बैठी हैं। सम्मुख ठाकुर श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग खड़े हैं। सुरेन्द्र, राखाल, केदार, मास्टर, राम, मनोमोहन और अन्यान्य अनेक भक्त वहाँ पर हैं। उन सब ने ठाकुर के संग में प्रसाद पाया है। सुरेन्द्र ने सब को परितोषपूर्वक खिलाया है। अब ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर लौटेंगे। भक्तगण भी अपने-अपने घर को चले जाएँगे। सब ही ठाकुर-दालान में आकर मिल गए हैं।

सुरेन्द्र *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— किन्तु आज माँ का नाम एक भी नहीं हुआ।

श्रीरामकृष्ण *(देवी प्रतिमा को दिखलाकर)*— आहा, कैसे आज दालान की शोभा हो रही है! माँ मानो आलोकित किए हुए बैठी हैं। इस प्रकार दर्शन करने पर कितना आनन्द होता है! भोग की इच्छा, शोक इत्यादि सब भाग जाते हैं। तो भी निराकार का क्या दर्शन नहीं होता— वह बात नहीं है। विषय-बुद्धि ज़रा-सी भी रहने से नहीं होगा, ऋषियों ने सर्वत्याग करके अखण्ड सच्चिदानन्द का चिन्तन किया था।

"आजकल ब्रह्मज्ञानीगण 'अचलघन' कहकर गाना गाते हैं— मुझे अलोना लगता है। जो गाना गाता है, वह मानो मीठा रस नहीं पाता। राबगुड़ का शरबत लेकर भूले रहने से मिश्री के शरबत की खोज की इच्छा ही नहीं होती।

"तुम लोग देखो, कैसे बाहिर दर्शन कर रहे हो और आनन्द पा रहे हो। जो निराकार-निराकार करते हैं, कुछ नहीं पाते, उनके न बाहिर है और न भीतर।"

ठाकुर माँ का नाम करके गाना गा रहे हैं—

गो आनन्दमयी होये मा आमाय निरानन्द कोरो ना।

ओ दुटि चरण बिने आमार मन, अन्य किछु आर जाने ना।
तपन-तनय, आमाय मन्द कय, कि दोषे तातो जानि ना॥

भवानी बोलिए, भवे जाबो चले, मने छिलो एइ वासना।
अकूलपाथारे डुबाबि आमारे, स्वप्नेओ तातो जानि ना॥

अहर्निशि श्रीदुर्गानामे भासि, तबु दुःखराशि गेलो ना।
एबार यदि मरि, ओ हरसुन्दरी, (तोर) दुर्गानाम केउ आर लबे ना॥

[भावार्थ— ओ माँ, आनन्दमयी होकर आप मुझे निरानन्द मत करो। तुम्हारे दो चरणों के बिना मेरा मन और कुछ नहीं जानता। तपन-तनय मुझे बुरा कहता है, मैं उसे क्या कहूँ, आप बता दो। मन में मेरे तो यही वासना थी कि भवानी कहते हुए मैं भवसागर में चलता चलूँगा। आप मुझे अथाह समुद्र में डुबो देंगी, ऐसा तो माँ, स्वप्न में भी नहीं जानता था। मैं रात-दिन श्री दुर्गा नाम में तर रहा हूँ, तब भी दुःख-राशि नहीं गई। अब की बार यदि मैं मरता हूँ तो हे हरसुन्दरी! तेरा दुर्गा नाम फिर कोई नहीं लेगा।]

और फिर गा रहे हैं—

बोलो रे बोलो श्री दुर्गानाम। (ओ रे आमार आमार मन रे॥)

दुर्गा दुर्गा दुर्गा बोले पथे चले जाय।
शूलहस्ते शूलपाणि रक्षा करेन ताय॥

तुमि दिवा, तुमि सन्ध्या, तुमि से यामिनी।
कखनो पुरुष होओ मा, कखनो कामिनी॥

तुमि बोलो छाड़ो छाड़ो आमि ना छाड़िबो।
बाजन नूपुर होये मा चरणे बाजिबो (जय दुर्गा श्री दुर्गा बोले)॥

मीन होय रबो जले नखे तुले लोबे।
शंकरी होइये मागो गगने उडिबे॥

नखाघाते ब्रह्ममयी जखन जाबे मोर पराणी।
कृपा करे दिओ रांगा चरण दुखानि॥

[भावार्थ— श्री दुर्गा नाम बोलो। जो तीन बार दुर्गा नाम लेकर पथ में निकलता है, उसकी रक्षा स्वयं शूलपाणि करते हैं। हे दुर्गा! तुम दिन हो, तुम सन्ध्या हो, तुम रात्रि हो। तुम कभी तो पुरुष हो और कभी स्त्री। तुम कहती हो मैं तुम्हें छोड़ दूँ पर मैं नहीं छोड़ूँगा। मैं

नुपूर बन तुम्हारे चरणों में बजता रहूँगा। मैं मीन बन पानी में रहूँगा। मुझे नाखून से उठाने के लिए तुम्हें पक्षी बन आकाश में उड़ना पड़ेगा। तुम्हारे नखों के आघात से जब मेरे प्राण निकलेंगे, उस समय हे ब्रह्ममयी माँ! तुम मुझे अपने श्रीचरणों में स्थान देना।]

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने फिर प्रतिमा के सम्मुख प्रणाम किया। अब सीढ़ियों से उतरते समय पुकार कर कह रहे हैं; "ओ रा-जू-आ?" (ओ राखाल, जूते सब हैं या खो गए?)

ठाकुर गाड़ी पर चढ़े। सुरेन्द्र ने प्रणाम किया। अन्यान्य भक्तों ने भी प्रणाम किया। मार्ग में चाँद का आलोक अभी भी है। ठाकुर की गाड़ी ने दक्षिणेश्वर की ओर यात्रा की।

रामचन्द्र दत्त का उद्यान-भवन

पंचम खण्ड

कलकत्ता में भक्तमन्दिर में ठाकुर श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(श्रीयुक्त रामचन्द्र दत्त के मकान पर कीर्त्तनानन्द में)

आज वैशाखी कृष्णा द्वादशी, शनिवार, 2 जून, 1883 ईसवी। ठाकुर ने कलकत्ता में शुभागमन किया है। बलराम के मकान से अधर के मकान पर आए। वहाँ से कलहान्तरिता*-कीर्त्तन सुनकर राम के मकान पर आए हैं— सिमुलिया मधु राय की गली में।

रामचन्द्र डॉक्टरी शिक्षा लेकर फिर मैडिकल कॉलिज में सहकारी कैमिकल ऐग्ज़ामिनर हुए थे और Science Association (साईंस ऐसोसिएशन) में रसायन-शास्त्र के अध्यापक थे। उन्होंने अपनी कमाई से मकान बनाया है। इस स्थान पर ठाकुर ने कई बार शुभागमन किया था, तभी तो भक्तों के लिए आजकल यह महातीर्थस्थान है। रामचन्द्र श्री गुरु के करुणाबल से विद्या की गृहस्थी करने की चेष्टा करते हैं। श्री श्री ठाकुर दस मुखों से राम की सुख्याति करते हैं— कहते हैं, राम घर में भक्तों को स्थान देता है, कितनी सेवा करता है, उसका मकान भक्तों का एक विशेष अड्डा है। नित्यगोपाल, लाटु, तारक (शिवानन्द), रामचन्द्र के एक प्रकार से घर के व्यक्ति हो गए थे। उनके साथ बहुत

---

* कलहान्तरिता = वह नायिका जो नायक या पति का अपमान करके पीछे स्वयं पछताती है।

दिन तक एक साथ वास किया था। और, घर में श्री नारायण की नित्य सेवा है।

राम ठाकुर को वैशाखी पूर्णिमा के दिन— फूलदोलन* के दिन— इसी निजी वासस्थान पर लाए थे। प्रायः प्रतिवर्ष इसी दिन ठाकुर को लाकर भक्तों के साथ महोत्सव करते हैं। रामचन्द्र के अनेक सन्तानसदृश शिष्यगण अब भी इसी दिन उत्सव करते हैं।

आज राम के वासस्थान में उत्सव है! प्रभु आएँगे। राम ने श्रीमद्भागवत-कथामृत उन्हें सुनाने का आयोजन किया है। आँगन छोटा है किन्तु उसके भीतर ही कितना सुन्दर प्रबन्ध है— वेदी रची गई है, उसके ऊपर कथावाचक पण्डित बैठे हैं। राजा हरिश्चन्द्र की कथा हो रही है, इस समय ठाकुर बलराम और अधर के घर से होकर आ गए। रामचन्द्र ने आगे बढ़कर ठाकुर की पदधूलि मस्तक पर ग्रहण की और उनके संग-संग आकर वेदी के सम्मुख उनके लिए पहले से ही निर्दिष्ट आसन पर उन्हें बिठा दिया। चारों ओर भक्तगण हैं। निकट मास्टर हैं।

(राजा हरिश्चन्द्र की कथा और ठाकुर श्रीरामकृष्ण)

राजा हरिश्चन्द्र की कथा चल रही है—

विश्वामित्र बोले, 'महाराज, आपने मुझे ससागरा पृथ्वी दान कर दी है, अतएव इसके भीतर तुम्हारा स्थान नहीं है। तो भी श्री काशीधाम में तुम रह सकते हो। वह महादेव का स्थान है। चलो, तुम्हें, तुम्हारी सहधर्मिणी शैव्या और तुम्हारे पुत्र सहित वहाँ पर पहुँचा देता हूँ। वहाँ जाकर तुम दक्षिणा दे देना।'

ऐसा कहकर राजा को लेकर भगवान विश्वामित्र श्री काशीधाम की ओर चल दिए। काशी में पहुँचकर सबने श्री विश्वेश्वर के दर्शन किए।

विश्वेश्वर-दर्शन की बात होने मात्र से ही ठाकुर एकदम भावाविष्ट हो गए। 'शिव-शिव' यह वाणी अस्पष्ट उच्चारण कर रहे हैं।

---

* फूलदोलन = बंगाल में होली के दिन फूलों के हिंडोले में राधा को झुलाते हैं।

राजा हरिश्चन्द्र दक्षिणा दे नहीं सके— अतः शैव्या को बेच दिया। पुत्र रोहिताश्व शैव्या के संग रह गए।

कथावाचक पण्डित ने शैव्या के मालिक ब्राह्मण के घर रोहिताश्व के पुष्पचयन की और सर्पदंशन की कथा भी सुनाई।

उस अन्धकार से ढकी हुई कालरात्रि में सन्तान की मृत्यु हो गई। दाह करने वाला कोई नहीं है। वृद्ध ब्राह्मण शय्या छोड़कर नहीं उठे। शैव्या अकेली पुत्र की शवदेह को गोद में लेकर श्मशान की ओर चल पड़ी। बीच-बीच में मेघ-गर्जन और वज्रपात! बार-बार अन्धकार को फाड़कर मानो बिजली खेल रही थी। शैव्या भयाकुला, शोकाकुला, रोती-रोती आ रही है।

हरिश्चन्द्र ने दक्षिणा का रुपया पूरा न होने के कारण अपने-आप को चाण्डाल के हाथ बेच दिया था। वे श्मशान में चाण्डाल बनकर बैठे हुए हैं। कौड़ी लेकर दाह-कार्य पूरा करेंगे। कितने शव जल रहे हैं, कितने ही भस्म हो गए हैं। उस अन्धेरी रात में श्मशान कैसी भयंकर हो गई है! शैव्या उसी स्थान पर आकर रोदन कर रही है।

उस क्रन्दन का वर्णन सुनकर किसका हृदय विदीर्ण नहीं होता? किस देहधारी जीव का हृदय विगलित नहीं होता? इकट्ठे हुए श्रोतागण हाहाकार करके रो रहे हैं।

ठाकुर क्या कर रहे हैं— स्थिर होकर सब सुन रहे हैं, एकदम स्थिर— मात्र एक बार नेत्रों के कोने से एक ही जलबिन्दु निकला था, उसको भी पोंछ डाला है। अस्थिर होकर हाहाकार क्यों नहीं किया?

अन्त में विश्वामित्र का आगमन, रोहिताश्व का जीवनदान, सब का श्री विश्वेश्वर-दर्शन और हरिश्चन्द्र को पुनः राज्यप्राप्ति का वर्णन करके, कथावाचक पण्डित ने कथा समाप्त की। ठाकुर ने वेदी के सम्मुख बैठ कर काफी देर तक हरिकथा सुनी। कथा समाप्त होने पर वे बाहिर के कमरे में जाकर बैठ गए। चारों ओर भक्तमण्डली। कथावाचक पण्डित जी भी निकट आकर बैठ गए। ठाकुर कथावाचक से कहते हैं, कुछ उद्धव-संवाद कहो।

(मुक्ति और भक्ति— गोपीप्रेम— गोपियाँ मुक्ति नहीं माँगतीं)

कथावाचक बोले—

जब उद्धव ने श्री वृन्दावन में आगमन किया, गोप और व्रजगोपियाँ उनका दर्शन करने के लिए व्याकुल होकर दौड़े आए। सबने पूछा, 'श्री कृष्ण कैसे हैं? वे क्या हमें भूल गए हैं? वे क्या हमें याद करते हैं?' यह कहकर कोई रोने लगे, कोई-कोई उन्हें ले जाकर वृन्दावन के नाना स्थान दिखाने लगे और कहने लगे, 'इस स्थान पर श्री कृष्ण ने गोवर्धन धारण किया था, यहाँ पर धेनुकासुर-वध, यहाँ पर शकटासुर-वध किया था। इस मैदान में गायें चराया करते थे, इस यमुनातट पर वे विहार किया करते थे। यहाँ पर राखालों को लेकर खेल किया करते थे; इस सारे कुंज में गोपियों के साथ बातें करते थे।' उद्धव बोले, 'आप लोग श्री कृष्ण के लिए इतने कातर क्यों हो रहे हैं? वे सर्वभूतों में हैं। वे साक्षात् भगवान हैं। उनके बिना कुछ नहीं है।' गोपियाँ बोलीं, 'हम वह सब नहीं समझ सकतीं। हम लिखना-पढ़ना कुछ नहीं जानतीं। केवल अपने वृन्दावन के कृष्ण को जानती हैं, जो यहाँ पर अनेक क्रीड़ा कर गए हैं।' उद्धव बोले, 'वे साक्षात् भगवान हैं, उनका चिन्तन करने से फिर इस संसार में आना नहीं पड़ता, जीव मुक्त हो जाता है।' गोपियाँ बोलीं, 'हम मुक्ति इत्यादि की बात नहीं समझतीं। हम अपने प्राणों के कृष्ण को देखना चाहतीं हैं।'

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ये समस्त बातें एक मन से सुनते रहे और भाव में विभोर हो गए। बोले, 'गोपियों ने ठीक कहा है।' यह कहकर वे अपने उसी मधुरकण्ठ से गाने लगे—

आमि मुक्ति दिते कातर नइ,
शुद्धा भक्ति दिते कातर होइ (गो)।

आमार भक्ति जेबा पाय, तारे केबा पाय,
से जे सेवा पाय, होये त्रिलोकजयी॥

शुन चन्द्रावली भक्तिर कथा कइ,
मुक्ति मिले कभु भक्ति मिले कोई।

भक्तिर कारणे पाताल भवने,
बलिर द्वारे आमि द्वारी होये रइ।
शुद्धा भक्ति एक आछे वृन्दाबने,
गोप गोपी बिने अन्ये नाहि जाने।
भक्तिर कारणे नन्देर भवने,
पिता ज्ञाने नन्देर बाधा माथाय बोई।

[भावार्थ— (श्री कृष्ण कह रहे हैं) मैं मुक्ति देता हुआ कातर नहीं रे भाई, शुद्धा भक्ति देता हुआ कातर होता हूँ। मेरी भक्ति जो प्राप्त कर लेता है वह मेरी सेवा प्राप्त करता है। उससे वह त्रिलोकजयी हो जाता है। सुनो चन्द्रावली, मैं तुम्हें भक्ति की बात बताता हूँ— मुक्ति तो मिल जाती है पर भक्ति क्या कभी मिलती है? भक्ति के कारण मैं पाताल में बलि के द्वार पर द्वारी होकर रहता हूँ। शुद्धा भक्ति तो एक वृन्दावन में है। गोप-गोपियों के सिवाय उसे और कोई नहीं जानता। भक्ति के कारण मैं नन्द के भवन में पिता-ज्ञान में उनका बोझा सिर पर उठाता हूँ।]

श्रीरामकृष्ण *(कथावाचक के प्रति)*— गोपियों की भक्ति प्रेमाभक्ति है; अव्यभिचारिणी भक्ति, निष्ठा भक्ति। व्यभिचारिणी भक्ति किसको कहते हैं, जानते हो? ज्ञानमिश्रा भक्ति। जैसे, कृष्ण ही सब कुछ हुए हैं। वे ही परब्रह्म, वे ही राम, वे ही शिव, वे ही शक्ति। किन्तु यह ज्ञान प्रेमाभक्ति के संग मिश्रित नहीं है। द्वारका में हनुमान ने आकर कहा 'सीता-राम देखूँगा।' भगवान ने रुक्मिणी से कहा, 'तुम सीता बनकर बैठो, वैसा न हुआ तो हनुमान से रक्षा नहीं।' पाण्डव लोग जब राजसूय यज्ञ कर रहे थे, तब जितने राजा थे, सब युधिष्ठिर को सिंहासन पर बिठाकर प्रणाम करने लगे। विभीषण बोले, 'मैं तो एक नारायण को प्रणाम करूँगा और किसी को नहीं करूँगा।' तब भगवान स्वयं भूमिष्ठ होकर युधिष्ठिर को प्रणाम करने लगे। फिर विभीषण ने राजमुकुट समेत साष्टाँग होकर प्रणाम किया।

"यह कैसा है, जानते हो? जैसे घर की बहू! देवर, जेठ, श्वसुर, पति सब की सेवा करती है, पाँव धोने के लिए जल देती है, तौलिया देती है, पटड़ा बिछा देती है, किन्तु एक पति के साथ ही अन्य प्रकार का सम्बन्ध है।

"इस प्रेमाभक्ति में दो वस्तुएँ हैं— 'अहंता' और 'ममता'। यशोदा

सोचती हैं, मैं न देखूँगी तो गोपाल को कौन देखेगा, फिर तो मेरा गोपाल बीमार हो जाएगा। कृष्ण जो भगवान हैं, यशोदा को यह बोध नहीं था। और 'ममता'— मेरा कृष्ण, मेरा गोपाल। उद्धव ने कहा, 'माँ! तुम्हारे कृष्ण साक्षात् भगवान हैं, वे जगत-चिन्तामणि हैं। वे सामान्य नहीं हैं।' यशोदा बोलीं, 'ओ रे तेरे चिन्तामणि का नहीं, मेरा गोपाल कैसा है, पूछ रही हूँ। —चिन्तामणि नहीं; मेरा गोपाल।'

"गोपियों की कैसी निष्ठा! मथुरा में द्वारपाल की बहुत खुशामद-मिनती करके सभा में गईं। द्वारी कृष्ण के पास ले गया। किन्तु पगड़ी बाँधे श्री कृष्ण को देखकर वे सिर नीचे किए रहीं। परस्पर कहने लगीं, 'यह पगड़ी बाँधे हुए फिर कौन हैं! इनके साथ बातें करके क्या हम पीछे द्विचारिणी बनेंगी! हमारा पीतधड़ा मोहनचूड़ा पहने हुए वह प्राणवल्लभ कहाँ है?'

"देखते हो, इनकी कैसी निष्ठा! वृन्दावन का भाव ही अलग है। द्वारका के निकट लोग अर्जुन के कृष्ण की पूजा करते हैं। वे राधा नहीं चाहते।"

(गोपियों की निष्ठा— ज्ञानभक्ति और प्रेमाभक्ति)

भक्त— कौन-सी अच्छी है, ज्ञानमिश्रिता भक्ति, या प्रेमाभक्ति?

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर पर खूब प्यार न हो तो प्रेमाभक्ति नहीं होती। और 'मेरा' ज्ञान नहीं होता। तीन मित्र वन से जा रहे थे, बाघ आ गया। एक व्यक्ति बोला, 'भाई! हम सब मारे गए।' और दूसरे ने कहा, 'क्यों? मरेंगे क्यों? आओ ईश्वर को पुकारें।' और तीसरा बोला, 'नहीं, उन्हें अधिक कष्ट देने से क्या होगा? आओ, इस वृक्ष पर चढ़ जाएँ।'

"जिस व्यक्ति ने कहा था, 'हम मारे गए,' वह नहीं जानता कि ईश्वर रक्षाकर्त्ता हैं। जिसने कहा था, 'आओ, हम ईश्वर को पुकारें,' वह ज्ञानी है; उसे बोध है कि ईश्वर सृष्टि-स्थिति-प्रलय इत्यादि करते हैं, और जिसने कहा था, 'उनको कष्ट देने से क्या होगा, आओ वृक्ष पर चढ़ जाएँ,' उसके भीतर प्रेम जन्मा है, प्यार जन्मा है। उस प्रेम का स्वभाव ही यही है कि अपने को बड़ा

मानता है, और प्रेमास्पद को छोटा। कहीं पीछे उसको कष्ट हो। केवल यही इच्छा होती है कि जिसको प्यार करता है, उसके पाँव में काँटा तक भी न चुभे।''

ठाकुर और भक्तों को राम ने ऊपर ले जा कर नाना प्रकार की मिठाइयाँ देकर उनकी सेवा की। भक्तों ने भी महानन्द में प्रसाद पाया।

श्रीरामकृष्ण के कमरे का प्रवेशद्वार

ठाकुर श्रीरामकृष्ण का कमरा (दक्षिणेश्वर)

षष्ठ खण्ड

दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में भक्तों के साथ श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर में फलहारिणी पूजा-दिवस पर भक्तों के संग)

(मणिलाल, त्रैलोक्य विश्वास, राम चैटर्जी, बलराम, नरेन्द्र, राखाल)

आज ज्येष्ठ-कृष्णा-चतुर्दशी। सावित्री-चतुर्दशी-व्रत है। अमावस्या की रात में फलहारिणी पूजा होगी। ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में अपने मन्दिर में बैठे हुए हैं। भक्तगण उनके दर्शन करने के लिए आ रहे हैं। सोमवार, अंग्रेज़ी 4 जून, 1883 ईसवी।

मास्टर पहले दिन, रविवार को आए थे। कल रात को कात्यायनी-पूजा हुई थी। प्रेमाविष्ट ठाकुर नाटमन्दिर में माँ के सम्मुख खड़े हुए कह रहे हैं—

माँ, तुमिइ व्रजेर कात्यायनी,
तुमि स्वर्ग, तुमि मर्त्य माँ, तुमि शे पाताल।
तोमा होते हरि, ब्रह्मा, द्वादश गोपाल,
दश महाविद्या माता, दश अवतार।
एबार कोनोरूपे आमाय करिते होबे पार।

[भावार्थ— माँ, तुम्हीं व्रज की कात्यायनी हो। तुम्हीं स्वर्ग, तुम्हीं मर्त्य, तुम्हीं वह पाताल

हो। तुम्हीं से हुए हरि, ब्रह्मा, द्वादश गोपाल, दस महाविद्या और दस अवतार। इस बार किसी न किसी रूप में मुझे भी करना होगा पार।]

ठाकुर गाना गा रहे थे और माँ के साथ बातें कर रहे थे। प्रेम में एकदम मतवाले हो रहे थे। अपने कमरे में आकर चौकी (खाट) के ऊपर बैठ गए।

रात के दूसरे प्रहर तक उस रात माँ का नाम होता रहा।

सोमवार प्रात: बलराम और अन्य कई भक्त आए। फलहारिणी-पूजा के उपलक्ष्य में त्रैलोक्य आदि बाग के बाबू लोग सपरिवार आए हैं।

समय नौ का। ठाकुर सहास्यवदन— गंगा के ऊपर के गोल बरामदे में बैठे हैं। साथ में मास्टर हैं। खेल के बहाने से ठाकुर ने राखाल का सिर गोद में रख लिया है! राखाल लेटे हुए हैं। ठाकुर कई दिनों से राखाल को साक्षात् गोपाल देख रहे हैं।

त्रैलोक्य सामने से माँ काली के दर्शन करने जा रहे हैं। संग में अनुचर छतरी पकड़े हुए जा रहा है। ठाकुर राखाल से कहते हैं— "ओ रे उठ, उठ।"

ठाकुर बैठे हैं। त्रैलोक्य ने नमस्कार किया।

श्रीरामकृष्ण *(त्रैलोक्य के प्रति)*— क्यों बई, क्या कल यात्रा (गीतिनाटक) नहीं हुई?

त्रैलोक्य— हाँ, यात्रा की ठीक सुविधा नहीं हुई थी।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, इस बार जो हुआ, सो हुआ। देख, जैसे फिर ऐसा न हो! जैसा नियम है, उसी प्रकार ही लगातार होना ठीक है।

त्रैलोक्य यथोचित उत्तर देकर चले गए। कुछ देर पश्चात् विष्णु-मन्दिर के पुरोहित श्रीयुक्त राम चैटर्जी आ गए।

ठाकुर— राम! त्रैलोक्य से कहा, यात्रा नहीं हुई; देखो, जैसे फिर ऐसा न हो। अच्छा, यह बात कहनी क्या ठीक थी?

राम चटर्जी— महाशय, इसमें फिर क्या हुआ! ठीक ही तो कहा। जैसा नियम है, उसी प्रकार होना उचित है।

श्रीरामकृष्ण *(बलराम के प्रति)*— जी, आज तुम यहाँ पर खाना।

आहार के कुछ पहले ठाकुर अपनी अवस्था के विषय में भक्तों को बहुत कुछ बताने लगे। राखाल, बलराम, मास्टर, रामलाल तथा और भी दो-एक भक्त आ गए थे।

(हाजरा के ऊपर रोष— ठाकुर श्रीरामकृष्ण और मनुष्य में ईश्वर-दर्शन)

श्रीरामकृष्ण— हाजरा तो फिर शिक्षा भी देता था, तुम क्यों छोकरों के लिए इतना सोचते हो? गाड़ी द्वारा बलराम के घर जा रहा था। तब मार्ग में महाचिन्ता हुई। कहा, 'माँ, हाजरा कहता है, नरेन्द्र तथा अन्य छोकरों के लिए मैं इतना क्यों सोचता हूँ; वह कहता है, ईश्वर-चिन्तन छोड़कर इन सब छोकरों के लिए चिन्ता क्यों करते हो?' यह बात बोलते-बोलते एकदम दिखाया कि वे ही मनुष्य हुई हैं। शुद्ध आधार में स्पष्ट प्रकाशित होती हैं। उस प्रकार का दर्शन करके जब समाधि थोड़ी टूटी, तब हाजरा के ऊपर क्रोध करने लगा। कहा, साले ने मेरा मन खराब कर दिया। फिर सोचा, उस बेचारे का भी क्या दोष, वह कैसे जानेगा?

(नरेद्र के साथ श्रीरामकृष्ण का प्रथम मिलन)

''मैं इनको समझता हूँ, साक्षात् नारायण। नरेन्द्र को जब प्रथम मिला था, देखा, देह-बुद्धि नहीं है। तनिक-सा छाती पर हाथ देते ही बाह्यशून्य हो गया। होश होने पर बोल उठा, 'अजी, आपने मेरा यह क्या कर दिया? मेरे तो माँ-बाप हैं!' यदु मल्लिक के घर में भी ठीक वैसा ही हुआ था। क्रमशः उसे देखने के लिए व्याकुलता बढ़ने लगी, प्राण छटपटाने लगा। तब भोलानाथ* से कहा, 'हाँ भाई, मेरा मन ऐसे क्यों होता है? नरेन्द्र नामक एक कायस्थ का लड़का है, उसके लिए ऐसा क्यों होता है?' भोलानाथ ने बताया, 'इसका अर्थ महाभारत में है। समाधिस्थ व्यक्ति का मन जब नीचे आता है, सत्त्वगुणी

---

* भोलानाथ = भोलानाथ मुखोपाध्याय, ठाकुरबाड़ी के मुहर्रिर (मुन्शी) थे, पीछे खजांची हो गए थे।

लोगों के साथ विलास करता है। सत्त्वगुणी लोग देखने पर ही तब उसका मन ठण्डा होता है।' यह बात सुनकर तब मेरे मन को शान्ति हुई। बीच-बीच में नरेन्द्र को देखने के लिए बैठा-बैठा रोया करता था।''

द्वितीय परिच्छेद

पूर्वकथा— श्रीरामकृष्ण का प्रेमोन्माद और रूपदर्शन

श्रीरामकृष्ण— ओह, कैसी अवस्था हो गई है! प्रथम जब यह अवस्था हुई थी, दिनरात कैसे चले जाते थे, बता नहीं सकता। सब ने कहा, पागल हो गया है। तभी तो इन्होंने विवाह कर दिया। उन्माद-अवस्था— प्रथम तो फिकर हुआ, फिर सोचा स्त्री भी इसी प्रकार रहेगी, खाएगी, पिएगी। ससुराल गया, वहाँ पर खूब संकीर्त्तन हुआ। नफर, दिगम्बर बैनर्जी के पिता आदि आए। खूब संकीर्त्तन हुआ। कभी-कभी चिन्ता किया करता, क्या होगा? फिर कहता, माँ, गाँव का जमींदार यदि आदर करेगा तो फिर समझूँगा यह सत्य है। वह भी अपने-आप आकर बातें करता।

पूर्वकथा— सुन्दरीपूजा और कुमारीपूजा— रामलीला दर्शन— गढ़ के मैदान में बैलून-दर्शन— शिहोड़ में राखाल-भोजन— जानबाजार में मथुर के संग में वास

''कैसी अवस्था ही गई है! बिल्कुल सामान्य से ही एकदम उद्दीपन हो जाया करता। सुन्दरी-पूजा की! चौदह वर्ष की लड़की थी। देखा था, साक्षात् माँ! रुपया देकर प्रणाम किया था।

''रामलीला देखने गया था। एकदम देखा, साक्षात् सीता, राम, लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण हैं। तब जो-जो अभिनय कर रहे थे, उन सब की पूजा करने लगा।

''कुमारियों को बुलाकर तब पूजा किया करता था। देखता था, साक्षात् माँ हैं।

"एक दिन बकुलतले देखा, नीले वस्त्र पहने एक लड़की खड़ी है, वेश्या। दप (झट) से एकदम सीता का उद्दीपन हो गया। उस लड़की को भूल गया। किन्तु देखा, साक्षात् सीता लंका से उद्धार पाकर राम के पास जा रही हैं। बड़ी देर तक अचेतन होकर समाधि की अवस्था हुई रही।

"और एक दिन गढ़ के मैदान में टहलने गया था। बैलून चढ़ना था। बहुत लोगों की भीड़ थी। हठात् नजर पड़ी, एक साहब का लड़का वृक्ष का सहारा लिए खड़ा है— त्रिभंगी होकर। ज्यों ही देखा, त्यों ही श्री कृष्ण का उद्दीपन हो गया। समाधि हो गई।

"शिहोड़ में राखालों को भोजन करवाया था। उनके हाथों में जलपान इत्यादि दिया। देखा, साक्षात् व्रज के राखाल! फिर उनके जलपान में से मैं खाने लग गया!

"प्राय: होश नहीं रहता था। सेजोबाबू* ने अपने जानबाजार वाले मकान में कितने ही दिन रखा। देखता, साक्षात् माँ की दासी बन गया हूँ। घर की स्त्रियाँ तनिक भी लज्जा नहीं करतीं थीं। जैसे छोटे लड़के या लड़की को देखने से कोई लज्जा नहीं करता। आन्दी दासी के साथ बाबू की लड़की को जमाई के पास सुलाने के लिए ले जाया करता।

"अभी भी ज़रा से उससे ही उद्दीपन हो जाता है। राखाल जप करता-करता बिड़-बिड़ करता था। मैं देखकर स्थिर नहीं रह सकता था। एकदम ईश्वर-उद्दीपन होकर विह्वल हो जाया करता था।"

प्रकृतिभाव की बातें ठाकुर और भी बतलाने लगे। और बोले—
"मैंने एक कीर्त्तनिया को स्त्री कीर्त्तनिया के ढंग सब दिखला दिए थे। वह बोला था, आपका तो सब ठीक ही है। आपने यह सब सीखा कैसे?"

यह कहकर ठाकुर भक्तों को स्त्री कीर्त्तनिया के ढंग दिखाते हैं। कोई भी हास्य रोक नहीं सका।

---

* सेजोबाबू = राणी रासमणि का दामाद, मथुरादास विश्वास।

तृतीय परिच्छेद

(मणिलाल आदि के संग में— ठाकुर 'अहेतुक कृपासिन्धु')

आहार के बाद ठाकुर थोड़ा-सा विश्राम कर रहे हैं। गाढ़ी निद्रा नहीं, तन्द्रा-सी है। श्रीयुक्त मणिलाल मल्लिक (पुरातन ब्रह्मज्ञानी) ने आकर ठाकुर को प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। ठाकुर तब भी लेटे हुए हैं। मणिलाल कोई-कोई बात करते हैं। ठाकुर अर्धनिद्रा-अर्धजागरण-अवस्था में हैं। किसी-किसी का उत्तर देते हैं।

मणिलाल— शिवनाथ नित्यगोपाल की प्रशंसा करते हैं। कहते हैं, बड़ी सुन्दर अवस्था है।

ठाकुर तब भी लेटे हुए हैं— आँखों में जैसे निद्रा है। पूछते हैं, "हाजरा के विषय में वे क्या कहते हैं?"

ठाकुर उठकर बैठ गए। मणिलाल से भवनाथ की भक्ति की बात बताते हैं।

श्रीरामकृष्ण— आहा, उसका कैसा सुन्दर भाव है! गाना गाते-गाते आँखों में जल आ जाता है। हरीश को देखकर एकदम भाव हो जाता है। कहता है, ये बड़े अच्छे हैं। हरीश घर छोड़कर बीच-बीच में यहाँ पर रहता है ना!"

मास्टर से पूछ रहे हैं—

"अच्छा, इनकी भक्ति का क्या कारण है? भवनाथ आदि सब छोकरों को क्यों उद्दीपन होता है?"

मास्टर चुप हैं।

श्रीरामकृष्ण— यह कैसे है, जानते हो? मनुष्य देखने में तो सब एक जैसे हैं, किन्तु किसी के भीतर क्षीर (खोया) का पूर होता है। जैसे गुजिया* के भीतर उड़द की दाल का पूर भी हो सकता है और क्षीर का पूर भी हो सकता है, किन्तु देखने में एक जैसी ही होती है। ईश्वर को जानने की इच्छा, और उस पर प्रेमाभक्ति, इसी का ही नाम है 'क्षीर का पूर'।

* गुजिया = एक मिठाई, भीतर खोये या दाल अथवा आटे का पूर भरा होता है, ठाकुर 'पुलि' कहते हैं— मीठा समोसा।

(गुरुकृपा से मुक्ति और स्वरूप-दर्शन— ठाकुर का अभयदान)

अब ठाकुर भक्तों को अभय दे रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— कोई-कोई सोचता है, मुझे तो शायद ज्ञान-भक्ति नहीं होगी, लगता है, मैं तो बद्ध जीव हूँ। गुरु की कृपा हो जाने पर कुछ भी भय नहीं रहता। बकरियों के झुण्ड में एक बाघ पड़ गया था। छलाँग लगाते हुए एक बाघिन को प्रसव से बच्चा हो गया। बाघिन तो मर गई, वह बच्चा बकरियों के संग बड़ा होने लगा। वे घास खाती थीं, बाघ का बच्चा भी घास ही खाने लगा। वे 'मैंअऽअ-मैंअऽअ' करतीं, वह भी 'मैंअऽअ-मैंअऽअ' करने लगा। धीरे-धीरे वह बाघ का बच्चा बहुत बड़ा हो गया। एक दिन उसी बकरियों के झुण्ड में एक और बाघ आ गया। वह बाघ उस घास खाने वाले बाघ के बच्चे को देखकर अवाक्! तब दौड़कर उसे पकड़ लिया। वह 'मैंअऽअ-मैंअऽअ' करने लगा। उसको खींच कर, घसीट कर जल के निकट ले गया। कहने लगा, 'देख, जल के भीतर अपना मुख देख— बिल्कुल मेरे जैसा ही तो है। और यह ले तनिक-सा मांस— ले, यह खा।' यह कहकर उसे जबरदस्ती खिलाने लगा। वह किसी तरह भी नहीं खाता— 'मैंअऽअ-मैंअऽअ' करने लगा। खून का स्वाद पाकर खाना आरम्भ कर दिया। नया बाघ बोला, 'अब समझ गया न, जो मैं हूँ, वही तू भी है; अब आ, मेरे संग वन को चला चल।'

''इसीलिए तो गुरु की कृपा हो जाने पर कोई भय नहीं! वे समझा देंगे, तुम कौन, तुम्हारा स्वरूप क्या?

''थोड़ा-सा ही साधन कर लेने पर गुरु समझा देते हैं, यही, यही। तब वह स्वयं ही समझ सकता है, क्या सत्, क्या असत्। ईश्वर ही सत्य और संसार अनित्य।''

(कपट साधना भी अच्छी— जीवन्मुक्त संसार में रह सकता है)

''एक मछुआ एक बाग के तालाब में जाल डालकर मछलियाँ चोरी कर रहा था। मालिक को पता लगने पर उसके आदमियों ने उसे घेर लिया।

वे मशालें आदि लेकर चोर को खोजने लगे। इधर वह मछुआ थोड़ी राख मलकर एक वृक्ष के नीचे साधु बनकर बैठ गया। उन्होंने बहुत खोजा, कोई मछुआ नहीं मिला, केवल एक वृक्ष के नीचे एक साधु को भस्म मले ध्यानस्थ देखा। अगले दिन मुहल्ले में खबर फैल गई कि एक बड़ा भारी साधु उनके बाग में आया हुआ है। तब बहुत लोग फल-फूल, सन्देश, मिठाई आदि लेकर साधु को प्रणाम करने आ गए। बहुत-सा रुपया-पैसा भी साधु के सामने पड़ने लगा। मछुआ सोचने लगा, कैसा आश्चर्य है! मैं तो वास्तविक साधु नहीं हूँ, तथापि मेरे ऊपर लोगों की इतनी भक्ति! यदि वास्तविक साधु हो जाऊँ तो निश्चय ही भगवान को पा लूँगा, इसमें सन्देह नहीं।

''कपट साधना से ही इतनी दूर का चैतन्य हुआ। सत्य साधन होने पर तो कहना ही क्या! क्या सत्, क्या असत्— यह समझ में आ जाएगा। ईश्वर ही सत्य, संसार अनित्य।''

एक भक्त सोच रहे हैं, क्या संसार अनित्य? मछुए ने तो संसार-त्याग कर दिया। तो फिर जो संसार में हैं, उनका क्या होगा? क्या उनको त्याग करना होगा? श्रीरामकृष्ण अहेतुक कृपासिन्धु हैं, तुरन्त कहते हैं—

''यदि एक मुन्शी को जेल होती है, वह जेल काटता है; किन्तु जब जेल से उसको छोड़ देते हैं, तब क्या वह धेई-धेई करके नाचता फिरता है? वह फिर दोबारा वही मुन्शीगिरी ही खोज लेता है, वही पहले वाला काम ही करता है। गुरु की कृपा से ज्ञानलाभ के पश्चात् संसार में भी जीवन्मुक्त होकर रहा जा सकता है।''

यह कहकर श्रीरामकृष्ण ने गृहस्थी लोगों को अभय दिया।

चतुर्थ परिच्छेद

(मणिलाल आदि के संग में श्रीरामकृष्ण और निराकारवाद)

मणिलाल *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— आह्निक करते समय किस स्थान पर ध्यान करूँ?

श्रीरामकृष्ण— हृदय तो एकदम डंकामार जगह है, वहाँ पर ध्यान करोगे।

(विश्वास ही सब— हलधारी का निराकार में विश्वास— शम्भु का विश्वास)

मणिलाल ब्रह्मज्ञानी, निराकारवादी हैं। ठाकुर उन्हें लक्ष्य करके कह रहे हैं—

''कबीर कहते थे, साकार मेरी माँ है, निराकार मेरा बाप। काको निन्दो, काको बन्दो, दोनों पल्ले भारी!

''हलधारी दिन में साकार में और रात को निराकार में रहता था। इसलिए जिस भाव का ही आश्रय करो, ठीक विश्वास होने से ही हो जाता है। साकार में ही विश्वास करो, या निराकार में ही विश्वास करो, किन्तु वह होना ठीक-ठीक चाहिए।''

[पूर्वकथा— प्रथम उन्माद— ईश्वर कर्त्ता या काकतालीय (संयोग)]

''शम्भु मल्लिक बागबाजार से पैदल अपने बाग में आया करता था। किसी ने कह दिया, 'इतनी दूर है, गाड़ी से क्यों नहीं आते, कोई विपद घट सकती है।' तब शम्भु मुख लाल करके कह उठा था, 'क्या! उनका नाम लेकर बाहिर निकला हूँ, फिर विपद!' विश्वास से ही सब होता है! मैं कहा करता था, अमुक को यदि देखूँ, तब ही सत्य मानूँ— अमुक खजांची यदि मेरे संग बातें करे! तब जो कुछ मैं मन में सोचता था, वह ही मिल जाता था!''

मास्टर अंग्रेज़ी न्यायशास्त्र पढ़े हुए थे। प्रात:काल का स्वप्न ठीक हो जाता है (coincidence of dreams with actual events), यह तो कुसंस्कार की ही उपज है, यह बात पढ़ी हुई थी— (chapter 'On Fallacies' 'असत्य धारणा अध्याय' में)। इसीलिए उन्होंने पूछा—

मास्टर— अच्छा, किसी-किसी घटना का नहीं भी मेल हुआ, ऐसा भी क्या कभी हुआ है?

श्रीरामकृष्ण— नहीं, उस समय सब मिल जाती थीं। उस समय उनका नाम लेकर मैं जो विश्वास करता था, वही मिल जाता था! *(मणिलाल के प्रति)* फिर भी क्या बात है, जानते हो? सरल और उदार हुए बिना यह विश्वास नहीं होता।

"जिन लोगों की हँसली की हड्डी उभरी हुई, आँखें धसी हुई और टीरी हों तथा और भी ऐसे-ऐसे अनेक लक्षण हों तो उन्हें सहज ही में विश्वास नहीं होता। 'दक्षिण में केले का पेड़, उत्तर में पुंइ का साग, अकेला काला बिलाव मिल जाए तो (ऐसा अपशकुन होने पर) मुझ बिचारे का क्या बने?' *(सब का हास्य)*।"

(भगवती दासी के प्रति दया— श्रीरामकृष्ण और सतीत्वधर्म)

सन्ध्या हो गई। दासी आकर कमरे में धूना (धूप आदि) दे गई। मणिलाल आदि के चले जाने पर दो-एक जन अब भी हैं। घर (कमरा)निस्तब्ध। धूप की गन्ध। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हैं। माँ का चिन्तन कर रहे हैं। मास्टर भूमि पर बैठे हैं। राखाल भी हैं।

कुछ क्षण पश्चात् बाबुओं की दासी भगवती ने आकर दूर से प्रणाम किया। ठाकुर ने बैठने के लिए कहा। भगवती बड़ी पुरानी दासी है। अनेक वर्षों से बाबुओं के घर है। ठाकुर उसे बहुत दिनों से जानते हैं। प्रथम वयस में स्वभाव अच्छा नहीं था। किन्तु ठाकुर दया के सागर, पतितपावन हैं, उसके साथ काफी पुरानी बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— अब तो उमर हो गई। रुपया जो कमाती है, साधु, वैष्णवों को भी खिलाती तो है?

भगवती *(ईषत्‌हास्य से)*— वह मैं कैसे कहूँ?

श्रीरामकृष्ण— काशी, वृन्दावन इत्यादि तो हो गया है?

भगवती *(तनिक संकुचित होकर)*— वह फिर मैं कैसे बताऊँ? एक घाट बनवा दिया है। उसके पत्थर पर मेरा नाम लिखा हुआ है।

श्रीरामकृष्ण— क्या कहती है री?

भगवती— हाँ, नाम लिखा हुआ है, 'श्रीमती भगवती दासी।'

श्रीरामकृष्ण *(थोड़ा हँसते हुए)*— सुन्दर, बहुत सुन्दर!

इस समय भगवती ने साहस पाकर ठाकुर के पाँव पर हाथ लगाकर प्रणाम किया।

बिच्छू के काटने पर जैसे व्यक्ति चौंक कर उठता है और अस्थिर होकर खड़ा हो जाता है, श्रीरामकृष्ण उसी प्रकार अस्थिर होकर 'गोबिन्द-गोबिन्द' नाम उच्चारण करते-करते खड़े हो गए। कमरे के कोने में गंगाजल का एक मटका था— अब भी है, हाँफते-हाँफते मानो त्रस्त होकर उसी मटके के निकट गए। पाँव के जिस स्थान पर दासी ने स्पर्श किया था, गंगाजल लेकर उस स्थान को धोने लगे।

दो-एक भक्त जो कमरे में थे, वे अवाक् और स्तब्ध होकर एकदृष्टि से यह व्यापार देखते हैं। दासी जीवन्मृता हुई बैठी है। दयासिन्धु पतितपावन ठाकुर श्रीरामकृष्ण दासी को सम्बोधन करके करुणापूर्ण स्वर में कहते हैं— "तू ऐसे ही प्रणाम करना।" यह कहकर वे फिर दोबारा आसन ग्रहण करके दासी को भुलाने की चेष्टा करते हैं। बोले, "अब कुछ गाना सुन।" उसको गाना सुना रहे हैं—

मजलो आमार मन-भ्रमरा श्यामापद-नीलकमले,
श्यामापद—नीलकमले, कालीपद— नीलकमले।
जतो विषयमधु तुच्छ होलो कामादि कुसुम सकले,
चरण कालो, भ्रमर कालो, कालोय कालो मिशे गेलो।
ताय पंचतत्त्व, प्रधानमत्त, रंग देखे भंग दिले।
कमलाकान्तेर मने, आशापूर्ण एतो दिने।
सुख दुःख समान होलो, आनन्द-सागर उथले।

[भावार्थ— नीलकमल जैसे श्यामा के चरणों में, काली के चरणों में मेरा मन-भ्रमर रम गया। संसार की कामना-वासना आदि पुष्पों का विषयरूप मधु अब तुच्छ प्रतीत हो रहा है। काली के काले चरणों में मनरूपी काले भौंरे के बैठने से दोनों काले मिलकर एक हो गए, और भुलाने वाली पाँच तत्त्व रूपी अविद्या माया इस तमाशे को देखकर भाग गई। कमलाकान्त (कवि) के मन की आशाएँ इतने दिनों बाद आज पूर्ण हुईं। आनन्द-समुद्र में उथल-पुथल होने से सुख-दुःख समान हो गए।]

श्यामापद आकाशेते मनघुड़ि खान उड़्तेछिलो।
कुलुषेर कुबातास पेये गोप्ता खेये पड़े गेलो।
मायाकान्ना होलो भारी, आर आमि उठाते नारि,
दारासुत कलेर दड़ि, फांस लेगे से फेंसे गेलो।

ज्ञानमुण्ड गेछे छिंड़े, उठिये दिले अमनि पड़े,
माथा नाइ से आर कि उड़े संगेर छ:जन जयी होलो।
भक्तिडोरे छिलो बाँधा, खेलते एसे लागलो धाँधा,
नरेश्चन्द्रेर हासा काँदा, ना आसा एक छिलो भालो।*

आपनाते आपनि थेको मन जेओनाको कारो घरे।
जा'चाबि ताइ बोसे पाबि, खोंजो निज अन्त:पुरे॥
परमधन एइ परशमणि, जा चाबि ताइ दिते पारे।
कतो मणि पड़े आछे आमार चिन्तामणिर नाच दुआरे॥

[भावार्थ— अरे मन, तुम अपने में आप स्वयं रहो, किसी के घर में मत जाओ, अपने अन्त:पुर (भीतर) में खोजो, जो चाहोगे सब वहाँ पर ही मिल जाएगा। अरे भाई, परमधन तो वही स्वयं पारसमणि है, जो चाहोगे, वही वे दे सकते हैं। उन चिन्तामणि के द्वार पर तो ढेरों ही मणि पड़े हुए हैं।]

---

* अर्थ के लिए इसी ग्रन्थ में पृष्ठ 35 देखें।

सप्तम खण्ड

दक्षिणेश्वर में
भक्तों के संग में ठाकुर श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण की प्रथम प्रेमोन्माद-कथा)

(पूर्वकथा— देवेन्द्र ठाकुर, दीन मुखर्जी और कुमारसिंह)

आज भी अमावस्या है— मंगलवार, 5 जून, 1883 ईसवी। श्रीरामकृष्ण कालीबाड़ी में हैं। रविवार को ही भक्त-समागम अधिक होता है, आज मंगलवार होने के कारण अधिक लोग नहीं हैं। राखाल ठाकुर के पास हैं। हाजरा भी हैं, ठाकुर के कमरे के सामने बरामदे में आसन किया हुआ है। मास्टर गत रविवार को आए हैं और कई दिन से हैं।

सोमवार की रात को माँ काली के नाट-मन्दिर में कृष्ण गीति-नाटक (कृष्णयात्रा) हुआ था। ठाकुर ने थोड़ी देर सुना था। यह गीति-नाटक रविवार रात को होने की बात थी किन्तु हुआ नहीं था; इस कारण सोमवार को हुआ।

मध्याह्न के आहार आदि के पश्चात् ठाकुर फिर अपनी प्रेमोन्माद अवस्था का और वर्णन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— कैसी-कैसी अवस्थाएँ जा चुकी हैं! यहाँ पर नहीं खाता था। बराहनगर या दक्षिणेश्वर या ऐंड़ेदा में किसी बामुन के घर

में चला जाता था। और फिर जाता भी था कुसमय में। जाकर बैठ जाता था, मुख से कुछ नहीं बोलता था। घर के लोग कोई भी बात पूछते तो केवल कहता था, मैं यहाँ पर खाऊँगा। और कोई बात नहीं। आलमबाजार में राम चैटर्जी के घर जाता। कभी-कभी दक्षिणेश्वर में सावर्ण चौधुरियों के घर चला जाता। उनके घर खाता तो था, किन्तु अच्छा नहीं लगता था; कैसी मांस-मछली की गन्ध होती थी!

"एक दिन जिद्द पकड़ ली, देवेन्द्र ठाकुर (रवीन्द्रनाथ टैगोर के पिता) के घर जाऊँगा। सेजोबाबू से कहा, देवेन्द्र ईश्वर का नाम करता है, उसे देखूँगा, मुझे ले चलोगे? सेजोबाबू— उसका भी तो फिर बड़ा अभिमान था, वह क्या आसानी से लोगों के घर जाएगा? टालने लगा। तब फिर बोला, 'हाँ, देवेन्द्र और मैं एक संग में पढ़े थे, तो चलो बाबा, ले जाऊँगा।'

"एक दिन सुना, बागबाजार के पुल के निकट दीन मुखर्जी नामक एक सज्जन व्यक्ति है— भक्त है। सेजोबाबू को पकड़ लिया, दीन मुखर्जी के घर जाऊँगा। सेजोबाबू क्या करता, गाड़ी में ले गया। वह घर था छोटा, और फिर बड़ी गाड़ी में एक बड़ा व्यक्ति आया है। वे भी हक्के-बक्के रह गए और हम भी अप्रस्तुत हुए। उस पर फिर उसके लड़के का यज्ञोपवीत था। कहाँ बिठाए? हम निकट के कमरे में जाने लगे, तो वह बोल पड़ा, उस कमरे में स्त्रियाँ हैं, मत जाइए। महा अप्रस्तुत! सेजोबाबू लौटते हुए कहने लगे, बाबा! तुम्हारी बात अब नहीं सुनूँगा। मैं हँसने लगा।

"कैसी-कैसी अवस्था हो चुकी है! कुमारसिंह ने साधु-भोजन करवाना था, मुझे निमन्त्रण दिया। जाकर देखा, अनेक साधु आए हैं। मेरे बैठ जाने पर कोई-कोई साधु परिचय पूछने लगे; ज्यों ही वे पूछने लगे, मैं जाकर अलग बैठ गया। सोचा, इतनी बातों का क्या काम? फिर जब सब को पत्तलें बिछाकर खाने के लिए बिठाया गया, किसी के कुछ भी कहने से पहले मैं खाने लग पड़ा। कोई-कोई साधु बोलने लगे, मैंने सुना, 'अरे, यह क्या रे!' "

द्वितीय परिच्छेद

(हाजरा के संग बातचीत— गुरु-शिष्य संवाद)

समय पाँच का। ठाकुर बरामदे के साथ वाली सीढ़ी पर बैठे हैं। राखाल, हाजरा और मास्टर पास बैठे हैं। हाजरा का भाव है— 'सोऽहम्'।

श्रीरामकृष्ण *(हाजरा के प्रति)*— हाँ, ऐसे तो सब झंझट समाप्त हो जाते हैं— वे ही आस्तिक, वे ही नास्तिक; वे ही भले, वे ही मन्दे; वे ही सत्, वे ही असत्; जागना, सोना— ये सब अवस्थाएँ उनकी ही हैं; और फिर वे इन सब अवस्थाओं के पार हैं।

"एक किसान को पिछली उमर में एक लड़का हुआ। लड़के का खूब पालन-पोषण किया। लड़का धीरे-धीरे बड़ा हुआ। एक दिन किसान खेत में काम कर रहा था, तब किसी ने आकर बताया कि लड़का सख्त बीमार है— जाय-जाय! घर आकर देखा लड़का मर गया है। पत्नी खूब रो रही है, किन्तु किसान की आँखों में एक बून्द भी जल नहीं। पत्नी पड़ोसिन के पास और भी दु:ख करने लगी कि ऐसा बेटा चला गया, इन की आँखों में ज़रा-सा जल तक नहीं है। काफी देर के बाद किसान ने स्त्री से कहा, 'मैं क्यों नहीं रोता, पता है ? मैंने कल स्वप्न देखा था कि मैं राजा हो गया हूँ और सात लड़कों का बाप बन गया हूँ। स्वप्न में देखा कि लड़के सब रूप, गुण में सुन्दर हैं। धीरे-धीरे बड़े हुए, विद्या और धर्म सीखा। तब मेरी नींद टूट गई। अब सोचता हूँ कि तुम्हारे उस एक लड़के के लिए रोऊँ, या अपने सात लड़कों के लिए रोऊँ ?'
ज्ञानियों के विचार में स्वप्नावस्था जितनी सत्य है, जाग्रत अवस्था भी उतनी ही सत्य है।

"ईश्वर ही कर्त्ता हैं, उनकी इच्छा से ही सब हो रहा है।"

हाजरा— किन्तु यह समझना बड़ा ही कठिन है। भूकैलाश के साधु को कितने-कितने कष्ट दिए गए और एक तरह से मार ही डाला। वह साधु

समाधिस्थ हो गया था। उसे कभी तो धरती में दबा दिया, कभी जल में रखा, कभी तपे लोहे से दागा। इस प्रकार चैतन्य करवाया गया। इन सब कष्टों, यन्त्रणाओं से देह छूट गई। लोगों ने यन्त्रणा भी दी और ईश्वर-इच्छा से मारा भी गया।

(अशुभ कर्म की समस्या और आत्मा का अमरत्त्व
Problem of Evil and immortality of the Soul)

श्रीरामकृष्ण— जिसका जैसा कर्म है, उसका फल वह पाएगा। किन्तु ईश्वर की इच्छा से उस साधु की देह छूट गई। कविराज लोग बोतल के भीतर मकरध्वज तैयार करते हैं। चारों ओर मिट्टी लगाकर आग में डाले रखते हैं। बोतल के भीतर जो सोना है, वह सोना आग की गर्मी से और अन्य वस्तुओं के संग मिलकर मकरध्वज बन जाता है। तब कविराज उस बोतल को लेकर आस्ते-आस्ते तोड़ता है, भीतर का मकरध्वज रख लेता है। तब बोतल रहे तो क्या, और चली जाए तो भी फिर क्या? वैसे ही लोगों ने भाव में साधु को मार डाला, किन्तु शायद उसकी वस्तु तैयार हो गई थी। भगवान-प्राप्ति के पश्चात् शरीर रहे तो भी क्या और चला जाए तो भी फिर क्या!

(साधु और अवतार का प्रभेद)

"भूकैलाश का साधु समाधिस्थ था। समाधि अनेक प्रकार की है। हृषीकेश के साधु की बातों के साथ मेरी अवस्था मिल गई थी। कभी देखता शरीर के भीतर वायु जैसे च्यूँटि की भाँति चल रही है; अथवा कभी सड़ाक-सड़ाक करके, बन्दर जैसे एक डाल से अन्य एक डाल पर छलाँग लगाता है। कभी मछली की भाँति गति। जिसकी होती है, वही जानता है। वह जगत को भूल जाता है। मन जब थोड़ा-सा नीचे उतर जाता था तो कहता, 'माँ! मुझे चंगा कर दो, मैं बातें करूँगा।'

"ईश्वर-कोटि (अवतार आदि) बिना हुए समाधि के पश्चात् लौटते नहीं। कोई-कोई जीव साधना के जोर से समाधिस्थ हो जाता है,— किन्तु

फिर लौटता नहीं। वे जब स्वयं मनुष्य बनकर आते हैं, अवतार होते हैं, जीव की मुक्ति की चाबी उनके हाथ में होती है, तब समाधि के बाद लौटते हैं— लोगों के मंगल के लिये।''

मास्टर (स्वगत)— ठाकुर के हाथ में क्या जीव की मुक्ति की चाबी है?

हाजरा— ईश्वर को सन्तुष्ट कर सकने से ही हो जाता है। अवतार हों या न हों।

श्रीरामकृष्ण *(हँस कर)*— हाँ, हाँ। विष्णुपुर में रजिस्ट्री का बड़ा ऑफिस है, वहाँ पर रजिस्ट्री करवा सकने पर, फिर गोघाट का झंझट नहीं रहता।

(गुरुशिष्य संवाद— श्रीमुख-कथित चरितामृत)

आज मंगलवार, अमावस्या। सन्ध्या हो गई। ठाकुर-मन्दिर में आरती हो रही है। द्वादश शिवमन्दिरों में, राधाकान्त के मन्दिर में और भवतारिणी के मन्दिर में शंख, घण्टा आदि का मंगल बाजना हो रहा है। आरती समाप्त हो जाने के कुछ क्षण बाद ठाकुर श्रीरामकृष्ण अपने कमरे से होकर दक्षिण के बरामदे में आकर बैठ गए। चारों ओर निबिड़ अन्धकार है, केवल ठाकुर-मन्दिर में स्थान-स्थान पर दीप जल रहे हैं। भागीरथी के वक्ष पर आकाश की काली छाया पड़ी हुई है। अमावस्या, ठाकुर सहज ही भावमय हैं; आज भाव घनीभूत हो गया है। श्रीमुख से बीच-बीच में प्रणव-उच्चारण और माँ का नाम कर रहे हैं। ग्रीष्मकाल, कमरे में बड़ी गरमी है। जभी बरामदे में आए हैं। एक भक्त ने एक मसलन्द की (बारीक बुनी) चटाई दी है। उसी को बरामदे में बिछाया गया है। ठाकुर को तो रात-दिन माँ की चिन्ता है। लेटे-लेटे मणि के संग फुस्-फुस् करके बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— देखो, ईश्वर का दर्शन किया जाता है! अमुक को दर्शन हुआ है, किन्तु किसी से मत कहो। अच्छा, तुम्हें रूप अच्छा लगता है या निराकार?

मणि— जी, अभी तो थोड़ा निराकार अच्छा लगता है। फिर भी थोड़ा-थोड़ा समझ में आ रहा है कि वे ही ये सब साकार बने हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण— देखो, मुझे बेलघर में मतिशील की झील पर गाड़ी में ले चलोगे? वहाँ पर मुरमुरा डाल दो, सब मछलियाँ आकर मुरमुरा खाएँगी। आहा! मछलियाँ क्रीड़ा करती हुई घूमती रहती हैं, देखकर खूब आनन्द होता है। तुम्हें उद्दीपना होगी, मानो सच्चिदानन्द सागर में आत्मारूप मीन क्रीड़ा कर रही है! वैसे ही बहुत बड़े मैदान में खड़े होने पर ईश्वरीय भाव होता है— मानो हण्डी की मछली सरोवर में आ गई है।

"उनका दर्शन करने के लिए साधन आवश्यक है। मुझे कठोर साधन करना पड़ा है। बेलतले कितने प्रकार के साधन किए हैं। वृक्ष के नीचे पड़ा रहा करता। माँ दर्शन दो, कहता; आँखों के जल से शरीर भीग जाता!"

मणि— आपने तो कितने साधन किए हैं, और लोगों का एक क्षण में हो जाएगा? घर के चारों ओर उंगली घुमा देने से ही क्या दीवार बन जाती है?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— अमृत कहता है, एक व्यक्ति के आग जला लेने पर दस जन सेंकते हैं! और एक बात है— नित्य में पहुँच कर लीला में रहना अच्छा है।

मणि— आपने कहा है, लीला विलास के लिए है।

श्रीरामकृष्ण— ना, लीला भी सत्य। और देखो, जब आओगे, तब हाथ में कुछ ज़रा-सा लेते आना। स्वयं नहीं कहते, इससे अभिमान होता है। अधर सेन को भी कहता हूँ, एक पैसे का कुछ ले आना। भवनाथ से कहता हूँ, एक पैसे का पान लाइयो। भवनाथ की कैसी भक्ति है, देखा है? नरेन्द्र, भवनाथ— जैसे नर-नारी हों। भवनाथ नरेन्द्र का अनुगत है। नरेन्द्र को गाड़ी करके लाना। कुछ खाने को लेते आना। इससे खूब उपकार होता है।

(ज्ञानपथ और नास्तिकता— Philosophy and Scepticism)

"ज्ञान और भक्ति दोनों ही पथ हैं। भक्तिपथ में थोड़ा आचार अधिक करना पड़ता है। ज्ञानपथ में यदि कोई अनाचार करता है तो वह नष्ट हो जाता है। अधिक आग जलाने पर केले का वृक्ष भी भीतर फेंक देने से जल जाता है।

''ज्ञानी का पथ विचार-पथ है। विचार करते-करते हो सकता है कि कभी नास्तिक भाव आ जाए। भक्त में उन्हें जानने की आन्तरिक इच्छा होने पर, नास्तिक भाव आ जाने पर भी, वह ईश्वर-चिन्तन नहीं छोड़ देता। जिसके बाप-दादा खेती करते आ रहे हैं, वह अधिक वृष्टि या अनावृष्टि के वर्ष भी फसल न होने पर खेती तो करता ही है!''

ठाकुर गाओ तकिए के ऊपर सिर रखकर लेटे-लेटे बातें कर रहे हैं। बीच में मणि से कहा—

''मेरे पाँव में थोड़ा-थोड़ा दर्द हो रहा है, तुम तनिक हाथ तो फेर देना।''

मणि उन्हीं अहेतुक कृपासिन्धु गुरुदेव के श्रीपादपद्म की सेवा करते-करते उनके श्रीमुख से वेद-ध्वनि सुन रहे थे।

अष्टम खण्ड

दक्षिणेश्वर-मन्दिर में भक्तों के संग श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर में दशहरे के दिन गृहस्थ-आश्रम-कथा-प्रसंग)

(राखाल, अधर, मास्टर, राखाल का बाप और बाप का श्वसुर आदि)

आज दशहरा, ज्येष्ठ शुक्ला दशमी, शुक्रवार, 15 जून, 1883 ईसवी। भक्तगण श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने के लिए दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में आए हैं। अधर और मास्टर को दशहरा के उपलक्ष्य में छुट्टी मिली है।

राखाल के पिता और उसके पिता के श्वसुर आए हैं। पिता ने दूसरी शादी की थी। ठाकुर का नाम श्वसुर ने अनेक दिनों से सुना हुआ है। वे साधक हैं। श्रीरामकृष्ण के दर्शन करने आए हैं। ठाकुर आहारान्ते छोटी खाट पर बैठे हैं। राखाल के पिता के श्वसुर को बार-बार देख रहे हैं। भक्तगण जमीन पर बैठे हैं।

श्वसुर— महाशय, गृहस्थाश्रम में क्या भगवान-लाभ होता है?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्यों नहीं होता? पांकाल मछली की भाँति रहो। वह पंक (कीचड़) में रहती है किन्तु शरीर पर पंक नहीं लगता। और असती स्त्री की भाँति रहो। वह घर-गृहस्थी का सब काम करती है, किन्तु मन

उपपति के ऊपर पड़ा रहता है। ईश्वर के ऊपर मन रखकर संसार का सब काज करो। किन्तु है बड़ा कठिन। मैंने ब्रह्मज्ञानियों से कहा था, जिस कमरे में इमली का अचार और पानी का मटका है, उसी कमरे में ही प्रलाप का रोगी! तो रोग कैसे हटेगा? इमली के अचार का सोचते ही मुख में जल आ जाता है। पुरुष के लिए स्त्री इमली के अचार की भाँति है। और विषय-तृष्णा तो सर्वदा लगी ही रहती है; वही है जल का मटका। इस तृष्णा का शेष नहीं। प्रलाप का रोगी कहता है, एक मटका जल पीऊँगा! बड़ा कठिन! संसार में नाना झंझट हैं। 'इधर जाएगा, सोटा मारूँगा; उधर जाएगा, झाड़ू फेंक के मारूँगा; इधर जाएगा, जूता फेंक के मारूँगा।' और फिर निर्जन न हो तो भगवान-चिन्तन नहीं होता। सोना गला कर गहना बनाऊँगा, किन्तु यदि गलाने के समय कई बार बुला लिया जाए, तब तो फिर सोना गलाना कैसे होगा? धान से चावल निकालना हो तो अकेले बैठकर छड़ना होता है। बार-बार चावलों को हाथ में लेकर उठा-उठा कर देखना पड़ता है, कैसा साफ हुआ है। छड़ते-छड़ते यदि अनेकों बार पुकारा जाएगा तो ठीक-ठीक छड़ना कैसे होगा?

(उपाय— तीव्र वैराग्य : पूर्वकथा— गंगाप्रसाद के साथ बातें)

एक भक्त— महाशय, क्या अब उपाय है?

श्रीरामकृष्ण— है। यदि तीव्र वैराग्य हो जाए, तो फिर हो जाता है। जिसे मिथ्या समझते हो, उसे जोर करके तत्क्षण त्याग कर दो। जब मैं बहुत बीमार था, गंगाप्रसाद सेन के पास ले गए। गंगाप्रसाद ने कहा, स्वर्णपटपटि (एक औषधि) खानी होगी, किन्तु जल नहीं पीना होगा; बेदाने (अनार) का रस पी सकते हो। सब ने सोचा बिना जल पिए मैं कैसे रहूँगा? मैंने दृढ़ निश्चय किया, अब जल नहीं पीऊँगा। 'परमहंस'! मैं तो साधारण हंस नहीं हूँ— राजहंस हूँ! दूध पीऊँगा।

"कुछ दिन निर्जन में रहना चाहिए। धायी को छू लेने पर फिर भय नहीं। सोना बन जाने पर फिर जहाँ कहीं भी रहो। निर्जन में रहकर यदि

भक्तिलाभ हो जाए, यदि भगवान-लाभ हो जाए, तो फिर गृहस्थी में भी रहा जा सकता है।

(राखाल के बाप के प्रति)— जभी तो लड़कों को ठहरने के लिए कहता हूँ। क्योंकि, यहाँ पर कुछ दिन रहने से भगवान में भक्ति होगी। तब गृहस्थी में जाकर बहुत अच्छी तरह रह सकेगा।''

(पाप-पुण्य— संसार-व्याधि की महौषधि संन्यास)

एक भक्त— ईश्वर ही यदि सब कुछ कर रहे हैं, तब तो अच्छा-बुरा, पाप-पुण्य इत्यादि क्यों कहते हैं? पाप भी फिर तो उनकी इच्छा है?

राखाल के पिता के श्वसुर— उनकी इच्छा हम कैसे समझेंगे?

"Thou Great First Cause least understood"— Pope

श्रीरामकृष्ण— पाप-पुण्य है, किन्तु वे स्वयं निर्लिप्त हैं। वायु में सुगन्ध-दुर्गन्ध आदि सब ही रहते हैं, किन्तु वायु स्वयं निर्लिप्त है। उनकी सृष्टि भी ऐसी ही है; अच्छा-बुरा, सत्-असत्; जैसे वृक्षों में कोई आम का वृक्ष, कोई कटहल का वृक्ष और कोई आमड़ा-वृक्ष है। देखो ना, दुष्ट व्यक्तियों का भी प्रयोजन है। जिस ताल्लुके की प्रजा दुष्ट होती है, उस ताल्लुके में एक दुष्ट व्यक्ति को भेजा जाता है; तभी ताल्लुके का प्रबन्ध ठीक होता है।

फिर दोबारा गृहस्थाश्रम की बात चल पड़ी।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— क्या होता है, गृहस्थी में पड़ने पर मन का व्यर्थ खर्च हो जाता है। इस व्यर्थ खर्च होने पर कल्पना करो मन की जो क्षति होती है! वह क्षति तो तभी पूरी होती है यदि कोई संन्यास ले। बाप प्रथम जन्म देता है, फिर दूसरा जन्म होता है उपनयन के समय। और एक बार फिर जन्म होता है संन्यास के समय।*

''कामिनी और कांचन, ये दो ही तो विघ्न हैं।'' स्त्री में आसक्ति ईश्वर के पथ से विमुख कर देती है। किस तरह पतन हो जाता है, पुरुष को

---

* Except ye be born again ye cannot enter into the kingdom of Heaven.— Christ

पता नहीं लगता। जब किले में गया था, तब तनिक-सा भी पता नहीं लगा कि ढालवाँ रास्ते से जा रहा हूँ। किले में गाड़ी पहुँचने पर देखा कि कितना नीचे आ गया हूँ। अहा! स्त्रियाँ पुरुषों को पता लगने भी नहीं देतीं! काप्तेन कहता है, मेरी स्त्री ज्ञानी है। भूत जिसको पकड़ लेता है, वह जानता तक नहीं कि भूत ने पकड़ा हुआ है! वह कहता है, अच्छा हूँ! *(सब निस्तब्ध हैं)*।

"गृहस्थ में जो केवल काम का ही भय है, वह नहीं। वहाँ फिर क्रोध भी है। कामना के रास्ते पर बाधा पड़ते ही क्रोध आता है।"

मास्टर— मेरी थाली में से पंजा बढ़ाकर बिल्ली मछली लेने आती है, मैं कुछ कह नहीं सकता।

श्रीरामकृष्ण— क्यों! एक बार मार दो, उसमें क्या दोष है? गृहस्थी फुंकार करेगा! विष उगलना उचित नहीं। किसी का अनिष्ट करना ठीक नहीं। किन्तु शत्रुओं के हाथ से बचने के लिए क्रोध का आकार दिखाना चाहिए। नहीं तो शत्रु आकर अनिष्ट करेगा। पर त्यागी को फुंकार का प्रयोजन नहीं।

एक भक्त— महाशय, गृहस्थ में उन्हें प्राप्त करना बड़ा ही कठिन दिखाई दे रहा है। कितने लोग वैसे हो सकते हैं? कहाँ, दिखाई तो नहीं देते!

श्रीरामकृष्ण— क्यों नहीं होगा? उस देश में (कामारपुकुर में) एक डिप्टी है, बहुत सज्जन व्यक्ति— प्रतापसिंह; दान-ध्यान, ईश्वर-भक्ति, अनेक गुण हैं। मुझे लेने के लिए आदमी भेजा था। ऐसे लोग भी तो हैं।

द्वितीय परिच्छेद

(साधना का प्रयोजन— गुरुवाक्य पर विश्वास, व्यास का विश्वास)

श्रीरामकृष्ण— साधन बहुत आवश्यक है। तब फिर क्यों नहीं होगा? ठीक विश्वास यदि हो जाता है, तब तो फिर अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता। गुरुवाक्य पर विश्वास!

"व्यासदेव जमुना जी के पार होंगे, गोपियाँ भी आ गईं। गोपियाँ भी

पार जाएँगी, किन्तु खेवा नहीं मिल रहा। गोपियाँ बोलीं, महाराज! अब क्या होगा? व्यासदेव कहने लगे, अच्छा तुम लोगों को पार कर देता हूँ, किन्तु मुझे बड़ी भूख लगी हुई है, कुछ है? गोपियों के पास दूध, क्षीर (रबड़ी), मक्खन— बहुत कुछ था, समस्त खा लिया। गोपियों ने कहा, महाराज पार का क्या होगा! व्यासदेव तब तीर पर जाकर खड़े हो गए, बोले, हे जमुने, यदि मैंने आज कुछ नहीं खाया है, तो तुम्हारा जल दो भाग हो जाए, और हम सब उसी पथ द्वारा पार हो जाएँगे। कहते-कहते ही जल दो धाराओं में बँट गया। गोपियाँ तो अवाक्; सोचने लगीं, इन्होंने अभी-अभी तो इतना खाया है; और फिर कहते हैं, 'यदि मैंने कुछ नहीं खाया है?'

"यही है दृढ़ विश्वास। मैं नहीं, हृदय में नारायण हैं; उन्होंने खाया है।

"शंकराचार्य इधर तो ब्रह्मज्ञानी हैं; और फिर पहले-पहले भेद-बुद्धि भी थी। वैसा विश्वास नहीं था। चाण्डाल मांस का बोझा लेकर आ रहा है, वे गंगास्नान करके चढ़ रहे हैं। चाण्डाल के शरीर से शरीर छू गया। बोल उठे, 'अरे तूने मुझको छू दिया!' वह चाण्डाल बोला, 'ठाकुर, तुमने भी मुझे नहीं छुआ, मैंने भी तुम्हें नहीं छुआ। जो शुद्ध आत्मा है, वे शरीर नहीं, पंचभूत नहीं, चौबीस तत्त्व नहीं।' तब शंकर को ज्ञान हो गया।

"जड़भरत राजा रहुगण की पालकी वहन करते-करते जब आत्मज्ञान की बातें कहने लगे, राजा ने पालकी से नीचे आकर कहा, तुम कौन हो जी! जड़भरत बोले, मैं नेति-नेति, शुद्ध आत्मा। पूरा पक्का विश्वास कि मैं शुद्ध आत्मा।"

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और योगतत्त्व— ज्ञानयोग और भक्तियोग)

" 'मैं ही वह हूँ', 'मैं शुद्ध आत्मा हूँ'— यही है ज्ञानियों का मत। भक्तगण कहते हैं, यह सब भगवान का ऐश्वर्य है। ऐश्वर्य न रहता तो धनी को कौन जान सकता था? तथापि साधक की भक्ति देखकर जब वे (ईश्वर) कहेंगे, 'मैं जो हूँ, तू भी वही है', तो तब एक और बात है। राजा बैठे हैं, खानसामा यदि राजा के आसन पर जाकर बैठ जाता है, और कहता है, 'राजा तुम जो हो,

मैं भी वही हूँ' तो लोग उसे पागल कहेंगे। किन्तु खानसामे की सेवा से सन्तुष्ट होकर राजा एक दिन कहे, 'अरे तू मेरे पास बैठ, इसमें दोष नहीं है; तू जो है, मैं भी वही हूँ।' तब यदि वह जाकर बैठ जाता है, उसमें दोष नहीं होता। सामान्य जीव यदि कहे, 'मैं तो वही हूँ'— यह तो कहना ठीक नहीं। जल की तरंग होती है; क्या तरंग का जल होता है?

"बात तो यही है; मन स्थिर बिना हुए योग नहीं होता, जिस मार्ग से ही जाओ चाहे। मन योगी के वश में है! योगी मन के वश में नहीं।

"मन स्थिर हो जाने पर वायु स्थिर हो जाती है— कुम्भक हो जाता है। यही कुम्भक भक्तियोग से भी होता है; भक्ति से वायु स्थिर हो जाती है। 'निताइ मेरा मतवाला हाथी', 'निताइ मेरा मतवाला हाथी!' यह बात कहते-कहते जब भाव हो जाता है, पूरी बातें कह नहीं पाता, केवल 'हाथी, हाथी'! उसके पश्चात् केवल 'हा!'

"भाव में वायु स्थिर हो जाती है; कुम्भक हो जाता है।

"एक व्यक्ति झाड़ू दे रहा है, अन्य एक व्यक्ति ने आकर बताया, 'अरे भाई, अमुक नहीं रहा; मर गया है!' जो झाड़ू दे रहा है उसका यदि वह अपना व्यक्ति नहीं है तो वह झाड़ू देता रहता है, और बीच-बीच में कहता है, 'आह! उफ़! वह बेचारा मर गया! अच्छा व्यक्ति था।' इधर झाड़ू भी चल रहा है। और यदि अपना व्यक्ति होता है, तो फिर झाड़ू हाथ से गिर जाती है, और 'ऐं' कहकर बैठ जाता है। तब वायु स्थिर हो गई, तब कोई कार्य या विचार नहीं कर सकता। स्त्रियों के भीतर देखते नहीं? यदि कोई अवाक् होकर एक वस्तु को देखती है या कोई बात सुनती है, तब अन्य स्त्रियाँ कहती हैं, अरी तुझे भाव तो नहीं हो गया! यहाँ पर भी वायु स्थिर हुई है, जभी अवाक् होकर 'आँ' किये रहती है।"

(ज्ञानी का लक्षण— साधनसिद्ध और नित्यसिद्ध)

"सोऽहं, सोऽहं करने से ही नहीं होता। ज्ञानी का लक्षण है। नरेन्द्र की आँखें सामने को उभरी हुई हैं। इनके भी कपाल (ललाट) और आँखों का लक्षण

अच्छा है।

"फिर सब की ही एक अवस्था नहीं होती। जीव चार प्रकार के हैं— बद्ध जीव, मुमुक्षु जीव, मुक्त जीव, नित्य जीव। सब को ही यह साधन करना पड़ता है, वह भी नहीं। नित्यसिद्ध और साधनसिद्ध। कोई बहुत साधन करके ईश्वर को प्राप्त करता है; कोई जन्म से ही सिद्ध होता है, जैसे प्रह्लाद। होमा पक्षी आकाश में रहता है। अण्डा देते ही अण्डा गिरता रहता है। गिरते-गिरते ही अण्डा फूट कर चूजा निकल आता है, फिर गिरता रहता है। अब भी इतनी ऊँचाई पर होता है कि गिरते-गिरते पंख निकल आते हैं। जब पक्षी अपने को पृथ्वी के निकट आता हुआ देखता है तब समझ जाता है कि धरती पर लगते ही चूरमार हो जाऊँगा। तब एकदम माँ की ओर सरपट उड़ जाता है। कहाँ माँ! कहाँ माँ!

"प्रह्लाद आदि नित्यसिद्धों का साधन पीछे होता है। साधन से पहले ईश्वर-लाभ हो जाता है। जैसे घीया, कद्दू का फल पहले आता है, उसके पश्चात् फूल होता है।

(राखाल के बाप की ओर देखकर) नीच वंश में भी यदि नित्यसिद्ध पैदा होता है, वह वही बनता है, और कुछ नहीं बनता। चना कूड़े पर गिरने से चने का पौधा ही होता है!"

(शक्तिविशेष और विद्यासागर— केवल पाण्डित्य)

"उन्होंने किसी को अधिक शक्ति, किसी को कम शक्ति दी है। कहीं पर तो एक प्रदीप जलता है, कहीं पर एक मशाल जलती है। विद्यासागर की एक बात से उसको पहचान लिया था, उसकी बुद्धि की दौड़ कितनी दूर है! जब बताया था शक्ति विशेष है, तब विद्यासागर ने कहा, महाशय, तब क्या उन्होंने किसी को अधिक, किसी को कम शक्ति दी है? मैंने तुरन्त कहा, वैसा तो है ही। शक्ति कम या अधिक न होती तो तुम्हारा नाम क्यों होता? तुम्हारी

विद्या, तुम्हारी दया इत्यादि को सुनकर ही तो मैं आया हूँ। तुम्हारे तो दो सींग नहीं निकले हैं! विद्यासागर की इतनी विद्या, इतना नाम, किन्तु कच्ची बात कह डाली— 'उन्होंने क्या किसी को अधिक, किसी को कम शक्ति दी है'? यह कैसा है, जानते हो? जाल में प्रथम-प्रथम बड़ी मछलियाँ पड़ती हैं— रोहू, कात्ला*। फिर धीवर कीचड़ को पाँव द्वारा घोट देता है, तब चुनोपुंटि, पांकाल, यही सब (छोटी मछलियाँ) निकल आती हैं, और बस देखते-देखते ही पकड़ ली जाती हैं। ईश्वर को न जानने से भीतर से क्रमशः चुनोपुंटि (छोटी-छोटी मछलियाँ) निकल आती हैं। केवल पण्डित होने से क्या होगा?''

---

* कात्ला = रोहू जाति की मोटे सिर वाली एक बड़ी मछली।

नवम खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-कालीमन्दिर में

प्रथम परिच्छेद

(पण्डित और साधु का प्रभेद— कलियुग में नारदीय भक्ति)

आज बुधवार, भाद्र मास की कृष्णा दशमी तिथि, 26 सितम्बर, 1883 ईसवी। बुधवार को भक्त-समागम कम होता है क्योंकि सब ही काज-कर्म में रहते हैं। भक्तगण प्राय: रविवार को अवसर मिलने पर ठाकुर-दर्शन करने आते हैं। मास्टर को दोपहर डेढ़ बजे छुट्टी मिली है, तीन बजे वे दक्षिणेश्वर में काली-मन्दिर में ठाकुर के पास आ गए। इस समय राखाल, लाटु ठाकुर के पास प्राय: रहते हैं। आज दो घण्टे पहले किशोरी आए हैं। कमरे में ठाकुर छोटी खाट के ऊपर बैठे हैं। मास्टर ने आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। ठाकुर ने कुशल आदि पूछकर नरेन्द्र की बात उठाई।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— हाँ जी, क्या नरेन्द्र के साथ मेल हुआ था? *(सहास्य)* नरेन्द्र ने कहा है, वे (ठाकुर) अब भी कालीमन्दिर में जाते हैं; जब ठीक हो जाएँगे, तब फिर काली-मन्दिर नहीं जाएँगे।

''यहाँ पर कभी-कभी आता है। कहता है घर के लोग बड़े नाराज हैं। उस दिन गाड़ी में यहाँ आया था। सुरेन्द्र ने गाड़ी-भाड़ा दिया था। जभी नरेन्द्र

की बुआ सुरेन्द्र के घर झगड़ा करने गई थी।''

ठाकुर नरेन्द्र की बात कहते-कहते उठ गए। बातें करते-करते उत्तर-पूर्व के बरामदे में खड़े हो गए। वहाँ पर हाजरा, किशोरी, राखालादि भक्त हैं। अपराह्ण हो गया है।

श्रीरामकृष्ण— अजी हाँ, तुम आज कैसे आ गए? स्कूल नहीं है?

मास्टर— आज डेढ़ बजे छुट्टी हो गई थी।

श्रीरामकृष्ण— इतनी जल्दी क्यों?

मास्टर— विद्यासागर स्कूल देखने आए थे। स्कूल विद्यासागर का है। इसीलिए जब वे आते हैं, लड़कों को आनन्द मनाने के लिए छुट्टी दे दी जाती है।

(विद्यासागर और सत्यवाणी— श्रीमुख-कथित चरितामृत)

श्रीरामकृष्ण— विद्यासागर सत्य क्यों नहीं बोलता?

'सत्यवचन, परस्त्री मातृ समान।
ऐसे हरि न मिलें तुलसी झूठ जबान।'

''सत्य पर टिके रहने पर तब भगवान को प्राप्त किया जाता है। विद्यासागर ने उस दिन कहा था, यहाँ पर आएगा; किन्तु आया नहीं।

''पण्डित और साधु में बड़ा अन्तर है। जो केवल पण्डित (विद्वान्) है, उसका कामिनी-कांचन में मन रहता है। साधु का मन हरिपादपद्मों में रहता है। पण्डित कहता कुछ है, और करता कुछ है। साधु की बात तो छोड़ ही दो। जिनका हरिपादपद्मों में मन है, उनका कार्य और वाणी सब अलग ही होते हैं। काशी में नानकपन्थी लड़का साधु देखा था। उसकी उमर तुम्हारे जैसी थी। मुझे 'प्रेमी साधु' कहा करता था। काशी में उनका मठ है; एक दिन मुझे निमन्त्रण करके वहाँ पर ले गया था। महन्त को देखा था मानो एक गृहिणी ही हो। उससे मैंने पूछा था, 'उपाय क्या है?' वह बोला, 'कलियुग में नारदीय भक्ति।' पाठ कर रहा था। पाठ समाप्त होने पर कहने लगा— 'जले विष्णुः, स्थले विष्णुः, विष्णुः पर्वतमस्तके। सर्वम् विष्णुमयं जगत्।'

सबके अन्त में कहा, शान्तिः शान्तिः प्रशान्तिः।''

(कलियुग में वेदमत नहीं चलता— ज्ञानमार्ग)

''एक दिन गीता-पाठ किया। उसका ऐसा दृढ़ निश्चय कि विषयी लोगों की ओर देख कर नहीं पढ़ेगा। मेरी ओर मुँह करके पढ़ने लगा। सेजोबाबू थे! सेजोबाबू की ओर पीठ करके पढ़ने लगा। उसी नानकपन्थी साधु ने कहा था, उपाय है 'नारदीय भक्ति'।''

मास्टर— वह साधु क्या वेदान्तवादी नहीं है?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वे लोग वेदान्तवादी तो हैं किन्तु भक्ति-मार्ग भी मानते हैं। बात यह है कि अब कलियुग में वेदमत नहीं चलता। एक व्यक्ति ने कहा था, गायत्री का पुरश्चरण करूँगा। मैंने कहा, क्यों? कलियुग में तन्त्रोक्त मत है। तन्त्रमत में क्या पुरश्चरण नहीं होता?

''वैदिक कर्म बड़ा कठिन है। उस पर फिर दासत्व करना। ऐसा कहा है, बारह वर्ष या कितने वर्ष उस प्रकार का दासत्व कर लेने पर वैसा ही हो जाता है। जिनका इतने दिनों तक दासत्व किया जाता है, उनकी ही सत्ता हो जाती है! उनका रज-तम-गुण, जीव-हिंसा, विलास इत्यादि सब आ जाते हैं उनकी सेवा करते-करते। केवल दासत्व ही नहीं, और फिर पैन्शन भी खाता है।

''एक वेदान्तवादी साधु आया था। मेघ देखकर नाचता, तूफान-वर्षा देखकर खूब आनन्द करता। ध्यान के समय कोई निकट चला जाता तो खूब क्रोध करता। मैं एक दिन चला गया था। मेरे जाने से बहुत नाराज हुआ। सर्वदा ही विचार करता, 'ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या।' माया से नाना रूप दिखाई देते हैं, तभी झाड़-फानूस की कलम लिए फिरता था। झाड़ की कलम द्वारा देखने पर नाना रंग दिखाई देते हैं— वस्तुत: कोई भी रंग नहीं होता। वैसे ही वस्तुत: ब्रह्म बिना और कुछ भी नहीं है, किन्तु माया से और अहंकार से नाना वस्तुएँ दिखाई देती हैं। पीछे कहीं माया हो जाए, आसक्ति हो जाए, इसीलिए कोई वस्तु एक बार से अधिक नहीं देखता था। स्नान के

समय पक्षी उड़ते देख कर विचार किया करता था। हम दोनों व्यक्ति शौच को जाया करते थे। मुसलमान का तालाब सुनकर फिर जल नहीं लिया। हलधारी ने फिर व्याकरण पूछा; व्याकरण जानता था। व्यजंनवर्ण की बात हुई। तीन दिन यहाँ पर था। एक दिन पुश्ते के किनारे शहनाई का शब्द सुनकर बोला, जिसे ब्रह्मदर्शन हो जाता है, उसको वैसा शब्द सुनकर समाधि हो जाती है।''

द्वितीय परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर में गुरु श्रीरामकृष्ण— परमहंस-अवस्था-प्रदर्शन)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण साधुओं की बातें कहते-कहते परमहंस की अवस्था दिखला रहे हैं। वही बालकवत् चलन! मुख पर एक-एक बार हँसी मानो फूट रही है! कमर पर कपड़ा नहीं; दिगम्बर; चक्षु आनन्द में तैर रहे हैं। ठाकुर छोटी खाट पर फिर दोबारा बैठ गए, और फिर वही मनोमुग्धकारी वाणी।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— न्यांगटा (तोतापुरी) से वेदान्त सुना था। 'ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या।' जादूगर आकर कितने जादू दिखाता है; आम का पौधा, आम तक हो गए। किन्तु वह सब तो जादू है। जादूगर ही सत्य है।

मणि— यह जीवन तो मानो एक लम्बी निद्रा है। यही समझ रहा हूँ, सब ठीक-ठीक नहीं देख पा रहा हूँ। जिस मन से आकाश को नहीं समझ सक रहा, उसी मन को लेकर ही तो जगत देख रहा हूँ; अतएव कैसे ठीक-ठीक समझूँगा?

ठाकुर— और एक तरह से है। आकाश को हम ठीक नहीं देख रहे; ऐसा है जैसे यह धरती से छू रहा है। वैसे ही कैसे मनुष्य ठीक-ठीक देखेगा? भीतर तो विकार है।

ठाकुर मधुर कण्ठ से गा रहे हैं, विकार और उसका धन्वन्तरि—

ए कि विकार शंकरी! कृपा चरणतरी पेले धन्वन्तरि!*

---

* सम्पूर्ण गान तथा भावार्थ के लिए इसी ग्रन्थ का पृष्ठ 45-46 देखिए।

"विकार नहीं तो क्या! देखो न, संसारी लोग झगड़ा करते हैं। क्या लेकर झगड़ा करते हैं, यह निश्चित नहीं है। झगड़ा कैसा? तेरा अमुक हो, तेरा अमुक करूँ। कितनी चीख-पुकार, कितना गाली-गलौच!"

मणि— किशोरी से कहा था, खाली बक्स में कुछ भी नहीं है— अथच दो जन खींचातानी कर रहे हैं— शायद रुपया है!

(देहधारण व्याधि—'To be or not to be', संसार मजे की कुटीर)

"अच्छा, देह ही तो समस्त अनर्थ का कारण है। ऐसा देखकर ज्ञानी लोग सोचते हैं, यह खोल छोड़ दूँ तो बचूँ।"

ठाकुर काली-मन्दिर जा रहे हैं।

ठाकुर— क्यों? यह संसार धोखे की टट्टी है, और फिर इसे मजे की कुटीर भी कहते हैं। देह चाहे रही रहे। संसार मजे की कुटीर भी तो हो सकती है।

मणि— निरवच्छिन्न आनन्द कहाँ है?

ठाकुर— हाँ, यह तो है।

ठाकुर काली-मन्दिर के सम्मुख आ गए। माँ को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। मणि ने भी प्रणाम किया। ठाकुर काली-मन्दिर के सामने नीचे के चौंतरे के ऊपर निरासने माँ काली के सामने बैठ गए। लाल किनारी की धोती पहने हैं, उसका ज़रा-सा भाग पीठ और कन्धे पर है। पीठ के पीछे नाटमन्दिर का एक स्तम्भ है। निकट मणि बैठे हैं।

मणि— ऐसा ही यदि है, तो फिर देहधारण का क्या प्रयोजन? मैं यही देख रहा हूँ कि कुछ कर्म-भोग करने के लिए ही देह है। वह क्या करता है, कौन जाने! बीच में हम मारे जाते हैं।

ठाकुर— कुरड़ी पर चना पड़ने पर भी चने का पौधा ही होता है।

मणि— चलो वह हो, तो भी अष्टबन्धन तो हैं?

(सच्चिदानन्द गुरु— गुरु की कृपा से मुक्ति)

ठाकुर— अष्टबन्धन नहीं, अष्टपाश। वे रहें तो रहें। उनकी कृपा होने पर एक मुहूर्त में अष्टपाश चले जा सकते हैं। यह कैसा है जानते हो, जैसे हजार वर्ष का अन्धेरा कमरा, आलोक ले जाने पर एक क्षण में अन्धकार भाग जाता है। ज़रा-ज़रा-सा करके नहीं जाता। जादूगरी करते हुए, देखा है? अनेक गिरह (गाँठ) दी हुई एक रस्सी एक सिरे से एक जगह बाँध देता है, और एक सिरा अपने हाथ में पकड़ लेता है; पकड़कर रस्सी को एक-दो बार हिलाता है। झटका देना, और समस्त गिरहों का खुल जाना। किन्तु अन्य लोग पूरी कोशिश करके भी गाँठ खोल नहीं सकते। गुरु की कृपा हो जाने पर समस्त गिरहें एक मुहूर्त में खुल जाती हैं।

(केशवसेन के परिवर्तन का कारण श्रीरामकृष्ण)

"अच्छा, केशवसेन इतना क्यों बदल गया, बताओ तो ज़रा? यहाँ पर किन्तु बहुत आता था। यहीं से नमस्कार करना सीखा। एक दिन मैंने कहा था, साधुओं को वैसे नमस्कार नहीं करते। एक दिन ईशान के साथ गाड़ी में कलकत्ता जा रहा था। उसने केशवसेन की सब बातें सुनी थीं। हरीश सुन्दर कहता है, यहाँ पर से सब चैक पास करवाने पड़ेंगे; तभी बैंक से रुपया मिलेगा।" *(ठाकुर का हास्य)*।

मणि अवाक् हुए ये समस्त बातें सुन रहे हैं। समझ गए, गुरुरूप में सच्चिदानन्द चैक पास करते हैं।

(पूर्वकथा, न्याँगटा बाबा का उपदेश— उनको जाना नहीं जाता)

ठाकुर— विचार न करो। उनको कौन जान सकेगा? न्याँगटा कहता था, सुन रखा है, उनके एक अंश से यह ब्रह्माण्ड बना है।

"हाजरा की बड़ी विचार-बुद्धि है। वह हिसाब करता है, इतने से जगत हुआ, इतना बाकी बचा। उसका हिसाब सुनकर मेरा सिर दर्द होने

लगता है। मैं जानता हूँ कि मैं कुछ भी नहीं जानता। कभी-कभी उनको अच्छा सोचता हूँ, और फिर कभी-कभी सोचता हूँ बुरा। उनको मैं क्या समझूँगा?''

मणि— जी हाँ, क्या उनको समझा जाता है? जिसकी जितनी बुद्धि, वह उतनी को ही लेकर सोचता है— 'मैंने तो उसे पूरा का पूरा समझ लिया है'। आप जैसे कहते हैं, एक चींटी चीनी के पहाड़ के निकट गई थी, उसका पेट एक ही दाने से भर जाने पर वह सोचने लगी— अब की बार सारा पहाड़ का पहाड़ ही घर ले जाऊँगी!

(ईश्वर को क्या जाना जाता है? उपाय— शरणागति)

ठाकुर— उनको कौन जानेगा? मैं तो जानने की चेष्टा भी नहीं करता! मैं तो केवल माँ कहकर पुकारता हूँ! माँ जो करें। उनकी इच्छा होगी अवगत करवाएँगी, नहीं इच्छा होगी नहीं करवाएँगी। मेरा बिल्ली के बच्चे का स्वभाव है। बिल्ली का बच्चा केवल मिऊँ-मिऊँ करके पुकारता है। तत्पश्चात् माँ जहाँ पर रख देती है, कभी कण्डोरे में रखती है, कभी बाबुओं के बिस्तर पर। नन्हा बच्चा माँ को चाहता है। माँ का कितना ऐश्वर्य है, वह नहीं जानता। जानना चाहता भी नहीं। वह जानता है, मेरी माँ है। मुझे क्या फिकर? नौकरानी का लड़का भी जानता है, मेरी माँ है। बाबू के लड़के के साथ कभी यदि झगड़ा होता है, तो कहता है, 'मैं माँ से कह दूँगा! मेरी माँ है!' मेरा भी सन्तान-भाव है।

हठात् ठाकुर श्रीरामकृष्ण अपने को दिखलाकर अपनी छाती पर हाथ रखकर मणि से कहते हैं,

''अच्छा इसमें कुछ है; तुम क्या कहते हो?''

वे अवाक् होकर ठाकुर को देख रहे हैं। शायद सोच रहे हैं— ठाकुर के हृदय में क्या साक्षात् माँ हैं? माँ क्या देहधारण करके आई हैं?— जीव के मंगल के लिए।

कीर्त्तन करते केशवसेन

दशम खण्ड

कमलकुटीर में ठाकुर श्रीरामकृष्ण व श्री केशवचन्द्र सेन

प्रथम परिच्छेद

केशव के घर के सम्मुख— पश्यति तव पन्थानम्

(केशव, प्रसन्न, अमृत, उमानाथ, केशव की माता, राखाल, मास्टर)

कार्त्तिक कृष्णा चतुर्दशी, 28 नवम्बर, 1883 ईसवी, बुधवार। आज एक भक्त कमलकुटीर (Lily Cottage) के फाटक के पूर्वी किनारे के फुटपाथ पर टहल रहे हैं। किसी के लिए व्याकुल होकर मानो प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कमलकुटीर के उत्तर में मंगलबाड़ी है, अनेक ब्राह्म भक्तगण निवास करते हैं। कमलकुटीर में केशव रहते हैं। उनकी पीड़ा बढ़ गई है। प्राय: अनेक लोग ही कहते हैं, 'लगता है इस बार बचने की सम्भावना नहीं है।'

श्रीरामकृष्ण केशव को बहुत प्यार करते हैं। आज उनको देखने आएँगे। वे दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी से आ रहे हैं। जभी ये भक्त देख रहे हैं, कब आते हैं।

कमलकुटीर सरकुलर रोड के पश्चिमी किनारे पर है। तभी सड़क पर ही भक्त टहल रहे हैं। दोपहर दो बजे से वे प्रतीक्षा कर रहे हैं। वे देख रहे हैं, कितने ही लोग आ-जा रहे हैं।

मार्ग के पूर्वी किनारे पर विक्टोरिया कॉलिज है। यहाँ पर केशव के

समाज की अनेक ब्राह्म महिलाएँ और उनकी लड़कियाँ पढ़ती हैं। सड़क से स्कूल का भीतर का भाग काफी दिखाई देता है। उसके उत्तर में एक बड़ी बागानबाड़ी में कोई अंग्रेज़ सज्जन रहते हैं। ये भक्त बहुत देर से देख रहे हैं कि उनके घर में कोई विपत्ति आई है। क्रमशः काला वस्त्रधारी कोचमैन और साइस मृतदेह-वाहक गाड़ी लेकर आए। डेढ़-दो घण्टे से यह सब तैयारी हो रही थी।

इस मर्त्यधाम को छोड़कर कोई चला गया है, तभी तो यह तैयारी! वे भक्त सोच रहे हैं, कहाँ? देहत्याग करके कहाँ जाता है?

उत्तर से दक्षिण की ओर कितनी ही गाड़ियाँ आ रही हैं। भक्त बार-बार ध्यान से देख रहे हैं, वे आ रहे हैं कि नहीं।

प्रायः पाँच बज गए। ठाकुर की गाड़ी आ पहुँची, संग में लाटु और अन्य दो-एक भक्त हैं। और, मास्टर और राखाल आए हुए हैं।

केशव के घर के लोग ठाकुर को संग लेकर ऊपर चले गए। बैठक के दक्षिण की ओर बरामदे में एक तख्तपोश बिछा हुआ था। उसके ऊपर ठाकुर को बिठाया गया।

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ— ईश्वर-आवेश में माँ के साथ बातें)

ठाकुर काफी देर से बैठे हैं। केशव को देखने के लिए अधीर हो रहे हैं। केशव के शिष्य विनीत भाव में कहते हैं, वे अभी-अभी थोड़ा-सा विश्राम कर रहे हैं, बस अब थोड़ी-सी देर में आते ही हैं।

केशव को खतरनाक पीड़ा है। शिष्यगण और घर के लोग तभी इतने सावधान हैं। किन्तु, ठाकुर केशव को देखने के लिए उत्तरोत्तर उतावले हो रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(केशव के शिष्यों के प्रति)*— अजी! उनके आने की क्या आवश्यकता है? मैं ही भीतर क्यों न जाऊँ?

प्रसन्न *(विनीत भाव से)*— जी, वे अभी थोड़ी देर में आते ही हैं।

ठाकुर— हटो, तुम ऐसे ही कर रहे हो! मैं भीतर जाता हूँ।

प्रसन्न ठाकुर को बहलाने के लिए केशव की बातें करते हैं।

प्रसन्न— उनकी अवस्था और ही एक प्रकार की हो गई है। आप की भाँति माँ के साथ बातें करते हैं। माँ क्या कहती हैं, सुनते, हँसते और रोते हैं।

केशव जगत की माँ के संग में बातें करते हैं; हँसते हैं, रोते हैं, यह बात सुनने मात्र से ही ठाकुर भावाविष्ट हो रहे हैं— देखते-देखते समाधिस्थ!

ठाकुर समाधिस्थ! शीतकाल, शरीर पर सब्ज रंग की बनात का गरम कोट है; कोट के ऊपर एक बनात (शॉल) है। उन्नत देह; दृष्टि स्थिर। एकदम मग्न! अनेक क्षण यही अवस्था रही। समाधि तो फिर भंग हो ही नहीं रही।

सन्ध्या हो गई। ठाकुर तनिक प्रकृतिस्थ हुए। बगल की बैठक में आलोक जला दिया गया है। ठाकुर को उसी कमरे में बिठाने की चेष्टा हो रही है। अनेक कष्ट से उन्हें बैठक में ले जाना हुआ।

कमरे में बहुत-सा असबाब है— काउच, कुर्सी, आलना*, गैस का आलोक। ठाकुर को एक काउच पर बिठाया गया।

काउच पर बैठते ही फिर दोबारा बाह्यशून्य, भावाविष्ट।

काउच पर दृष्टि डालकर नशे की खुमारी में मानो कुछ-कुछ कह रहे हैं— "पहले तो इनका प्रयोजन था। अब फिर क्या जरूरत?"

(राखाल की ओर देखकर)— "राखाल, तू आया है?"

(जगन्माता-दर्शन और उनके साथ बातें— Immortality of Soul)

बोलते-बोलते ठाकुर फिर और क्या देख रहे हैं? कहते हैं—

"एई जे माँ एसेछो! आबार बारानसी कापड़ पोड़े कि देखाओ। माँ

---

* बंगालियों के घरों में पाया जाने वाला कपड़े आदि टाँगने का लकड़ी का ढाँचा।

हँगामा कोरो ना! बोशो गो बोशो!''

(अरे वाह, यह तो माँ तुम्हीं आ गई हो और फिर बनारसी साड़ी पहन कर क्या दिखा रही हो? माँ गड़बड़ (हँगामा) मत करो। आओ जी बैठो, आओ बैठो!)

ठाकुर के महाभाव का नशा चल रहा है। कमरा आलोकमय है। ब्राह्मभक्त चारों ओर हैं। लाटु, राखाल, मास्टर इत्यादि पास बैठे हैं। ठाकुर भावावस्था में अपने-आप बोल रहे हैं—

''देह और आत्मा! देह हुई है और फिर जाएगी! आत्मा की मृत्यु नहीं। जैसे सुपारी; पक्की सुपारी छाल से अलग हो जाती है, कच्ची अवस्था में फल अलग और छाल अलग करना बड़ा कठिन है। उनके दर्शन कर लेने पर, उनको पा लेने पर देहबुद्धि चली जाती है! तब देह अलग, आत्मा अलग— यह बोध हो जाता है।''

केशव का प्रवेश।

केशव कमरे में प्रवेश कर रहे हैं। पूर्व की ओर के द्वार से आ रहे हैं। जिन्होंने उन्हें ब्राह्मसमाज-मन्दिर में या टाउन-हॉल में देखा था, वे उनकी अस्थिचर्मसार मूर्त्ति देखकर अवाक् रह गए। केशव खड़े नहीं रह सक रहे हैं, दीवार पकड़-पकड़ कर आगे बढ़ रहे हैं। अनेक कष्ट के पश्चात् काउच के सम्मुख आकर बैठे।

ठाकुर इसी बीच काउच से उतर कर नीचे बैठ गए थे। केशव ठाकुर के दर्शन-लाभ करके भूमिष्ठ होकर अनेक क्षण तक प्रणाम करते हैं। प्रणाम के अनन्तर उठकर बैठ गए। ठाकुर अब भी भावावस्था में हैं। अपने-आप क्या बोल रहे हैं? ठाकुर माँ के संग बातें कर रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(ब्रह्म और शक्ति अभेद— मनुष्य-लीला)

अब केशव उच्चस्वर से बोले, 'मैं आया हूँ', 'मैं आया हूँ!' यह कहकर ठाकुर श्री रामकृष्ण का बायाँ हाथ पकड़ लिया और उसी हाथ पर हाथ

फेरने लगे। ठाकुर हैं भाव में अतिशय गर्गर मतवाले। अपने-आप कितनी ही बातें कर रहे हैं। भक्तगण सब 'आँ' करके सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— जब तक उपाधि, तब तक ही नाना बोध— जैसे केशव, प्रसन्न, अमृत इत्यादि। पूर्ण ज्ञान हो जाने पर एक चैतन्य बोध हो जाता है।

"और फिर पूर्णज्ञान में देखता है कि वही एक चैतन्य ही यह जीव-जगत, ये चौबीस तत्त्व बने हुए हैं।

"तब भी शक्ति विशेष रहती है। निश्चय ही वे सब कुछ हुए हैं। किन्तु किसी स्थान पर अधिक शक्ति का प्रकाश होता है, किसी स्थान पर कम शक्ति का प्रकाश होता है।

"विद्यासागर ने कहा था, 'तो फिर क्या ईश्वर ने किसी को अधिक शक्ति और किसी को कम शक्ति दी है?' मैंने कहा, 'यदि वैसा न होता, फिर एक व्यक्ति पचास व्यक्तियों को कैसे हरा देता है, और फिर तुम्हें ही देखने हम लोग क्यों आए हैं?'

"वे अपनी लीला जिस आधार में प्रकाश करते हैं, वहाँ पर विशेष शक्ति होती है।

"जमींदार सब जगह रहता है। किन्तु अमुक बैठक में वे प्राय: ही बैठते हैं। भक्त है उनका बैठकखाना। भक्त के हृदय में वे लीला करना पसन्द करते हैं। भक्त के हृदय में उनकी विशेष शक्ति अवतीर्ण होती है।

"उसका लक्षण क्या है? जहाँ पर कार्य अधिक, वहाँ पर विशेष शक्ति-प्रकाश।

"यह आद्याशक्ति और परब्रह्म अभेद। एक को छोड़कर दूसरे की भावना ही नहीं होती। जैसे ज्योति और मणि! मणि को छोड़कर मणि की ज्योति के विषय में भावना ही नहीं होती; और फिर ज्योति को छोड़कर मणि की भावना ही नहीं होती। साँप और तिर्य्यक् गति! साँप को छोड़कर तिर्य्यक् गति की भावना ही नहीं होती, और फिर (साँप की) तिर्य्यक् गति को छोड़कर साँप की भावना ही नहीं होती।"

(ब्राह्म समाज और मनुष्य में ईश्वर-दर्शन— सिद्ध और साधक का प्रभेद)

"आद्याशक्ति ही यह जीव-जगत, ये चौबीस तत्त्व हुई हैं। अनुलोम, विलोम। राखाल, नरेन्द्र तथा और लड़कों के लिए क्यों चिन्ता करता हूँ? हाजरा कहता था, तुम उनके लिए इतने उतावले हुए फिरते हो, तो ईश्वर-चिन्तन कब करोगे? *(केशव और सब का ईषत् हास्य)*।

"तब महाचिन्तित हो गया था। बोला, 'माँ यह क्या हुआ? हाजरा कहता है, उनके लिए क्यों चिन्ता करते हो?' तब फिर भोलानाथ से पूछा। भोलानाथ बोला, महाभारत में ऐसी ही बात है। समाधिस्थ व्यक्ति समाधि से उतर कर कहाँ खड़ा होगा? जभी सत्त्व-गुणी भक्त लेकर रहता है। महाभारत का यह दृष्टान्त पाकर ही तब मैं बचा! *(सब का हास्य)*।

"हाजरा का दोष नहीं। साधक-अवस्था में सम्पूर्ण मन को नेति-नेति करके उनकी ओर देना चाहिए। सिद्ध-अवस्था की बात अलग है, उनको प्राप्त करने के पश्चात् अनुलोम, विलोम! छाछ से अलग हुआ मक्खन मिल जाने पर ही तब बोध होता है, 'छाछ का ही मक्खन है और मक्खन की ही छाछ है।' तब ठीक बोध हो जाता है कि वे ही सब कुछ हुए हैं। कहीं पर अधिक प्रकाश रहता है, कहीं पर कम।

"(भाव) समुद्र के उथल पड़ने पर सूखी जमीन में भी एक-एक बाँस जल हो जाता है। पहले नदी के द्वारा समुद्र में आने के लिए टेढ़ा-मेढ़ा घूम कर आना पड़ता था। बाढ़ आने से सूखी जमीन पर बाँस-बाँस जल है। तब सीधी नौका चलाने से ही चल जाता है। फिर घूमकर जाना नहीं पड़ता। धान कट जाने पर फिर मेंड़ के ऊपर से घूमकर आना नहीं पड़ता। सीधा एक ओर से चले जाओ।

"प्राप्ति के पश्चात् वे सब में ही दिखाई देते हैं। मनुष्य में उनका अधिक प्रकाश है। मनुष्यों के मध्य में सत्त्वगुणी भक्तों के भीतर और भी अधिक प्रकाश है— जिनकी कामिनी-कांचन-भोग करने की बिल्कुल भी इच्छा नहीं है। *(सब निस्तब्ध)*। समाधिस्थ व्यक्ति यदि नीचे उतरता है, तो फिर वह किसमें मन को खड़ा रखेगा? अतएव कामिनी-कांचन-त्यागी,

सत्त्वगुणी, शुद्ध भक्त का संग आवश्यक हो जाता है। नहीं तो फिर समाधिस्थ व्यक्ति क्या लेकर रहेगा?''

(ब्राह्म समाज और ईश्वर का मातृभाव— जगत की माँ)

''जो ब्रह्म हैं, वे ही आद्याशक्ति हैं। जब निष्क्रिय रहते हैं, तब उन को ब्रह्म कहता हूँ— पुरुष कहता हूँ। जब सृष्टि, स्थिति, प्रलय इत्यादि करते हैं, उनको शक्ति कहता हूँ— प्रकृति कहता हूँ। पुरुष और प्रकृति। जो पुरुष हैं, वे ही प्रकृति हैं। आनन्दमय और आनन्दमयी।

''जिस को पुरुष-ज्ञान है, उसे स्त्री-ज्ञान भी है। जिसे बाप का ज्ञान है, उसको माँ का ज्ञान भी है। *(केशव का हास्य)*।

''जिसे अन्धकार का ज्ञान है, उसे आलोक का भी ज्ञान है। जिसे रात का ज्ञान है, उसे दिन का भी ज्ञान है। जिसे सुख का ज्ञान है, उसे दुःख का भी ज्ञान है। तुम यह तो समझ गए हो ना?''

केशव *(सहास्य)*— हाँ, समझ गया हूँ।

श्रीरामकृष्ण— माँ, क्या है माँ?— जगत की माँ। जिन्होंने जगत को बनाया, पालन कर रही हैं। जो अपने बच्चों की सर्वदा रक्षा कर रही हैं। और धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष— जो-जो कुछ चाहता है, वही देती हैं। सच्चा बेटा माँ के बिना नहीं रह सकता। उसकी माँ सब जानती है। लड़का खाता, पीता, घूमता है; इतना कुछ नहीं जानता।

केशव— जी हाँ।

चतुर्थ परिच्छेद

पूर्व कथा— ब्राह्मसमाज और ईश्वर का ऐश्वर्य-वर्णन

श्रीरामकृष्ण बातें करते-करते प्रकृतिस्थ हो गए हैं। केशव के साथ सहास्य बातें कर रहे हैं। कमराभर लोग उत्कर्ण होकर सब सुन रहे हैं और

देख रहे हैं। सब अवाक् हैं कि 'तुम कैसे हो' इत्यादि बात तो बिल्कुल ही नहीं हो रही। केवल ईश्वर-वाणी!

श्रीरामकृष्ण *(केशव के प्रति)*— ब्रह्मज्ञानीगण इतनी महिमा वर्णन क्यों करते हैं? 'हे ईश्वर, तुमने चन्द्र बनाया है, सूर्य बनाया है, नक्षत्र बनाए हैं!' इतनी बातों की क्या जरूरत है? बहुत लोग बाग को देखते ही प्रशंसा करते हैं। मालिक को कितने जन मिलना चाहते हैं? बाग बड़ा है कि बाबू बड़े हैं?

"शराब पी लेने पर फिर कलवार की दुकान पर कितनी मदिरा है, उस हिसाब से मुझे क्या प्रयोजन? मेरा काम तो एक बोतल से हो जाता है।"

(पूर्वकथा— विष्णुघर का गहना चोरी और सेजोबाबू)

"नरेन्द्र को जब मिला था, कभी भी नहीं पूछा, 'तेरे बाप का नाम क्या है? तेरे बाप के कितने घर हैं?'

"जानते हो, क्या है? मनुष्य निज ऐश्वर्य का आदर करता है, इसीलिए सोचता है कि ईश्वर भी ऐश्वर्य का आदर करते हैं। सोचता है, उनके ऐश्वर्य की प्रशंसा करने से वे भी प्रसन्न होंगे। शम्भू ने कहा था— 'और अब ऐसा आशीर्वाद करो जिससे यह ऐश्वर्य उनके पादपद्मों में देकर मर सकूँ।' मैंने कहा, 'यह तुम्हारे लिए ही ऐश्वर्य है; उनको तुम क्या दोगे? उनके लिए तो ये सब लकड़ी, मिट्टी है!'

"जब विष्णु-मन्दिर का सारा गहना चोरी चला गया, तब सेजोबाबू और मैं राधाकान्त को देखने गए थे। सेजोबाबू बोले, 'हट, परे हो रे भगवान! तुम्हारी कुछ भी योग्यता नहीं। तुम्हारे शरीर से समस्त गहने ले गया, और तुम कुछ नहीं कर सके!' मैंने उस से कहा, 'यह तुम्हारी कैसी बात! तुम जिनको गहना-गहना कह रहे हो, उनके लिए तो वे मिट्टी के ढेले हैं! लक्ष्मी जिनकी शक्ति है, वे तुम्हारे थोड़े-से रुपए चुराए तो नहीं जा रहे हैं, क्या यही लिए रहते हैं? ऐसी बातें नहीं किया करते।'

"ईश्वर क्या ऐश्वर्य के वश में हैं? वे भक्ति के वश में हैं। वे क्या चाहते हैं? रुपया नहीं। वे तो भाव, प्रेम, भक्ति, विवेक, वैराग्य इत्यादि चाहते हैं।"

(ईश्वर का स्वरूप और उपासक भेद— त्रिगुणतीत भक्त)

"जिसका जैसा भाव होता है, वह ईश्वर को वैसा ही देखता है। तमोगुणी भक्त देखता है, माँ पाठा (बकरा) खाती है और वह बलि देता है। रजोगुणी भक्त नाना व्यंजन, भात आदि बनाकर देता है। सत्त्वगुणी भक्त की पूजा में आडम्बर नहीं होता। उसकी पूजा का लोगों को पता भी नहीं लगता। फूल नहीं हैं, तो विल्व-पत्र, गंगाजल के द्वारा ही पूजा कर लेता है। मुट्ठी भर मीठी खीलों के द्वारा या बतासा देकर ही 'शीतल' (देवता का सन्ध्या का भोजन) दे देता है। कभी-कभी ठाकुर को थोड़ी-सी पायस बनाकर दे देता है।

"और हैं त्रिगुणातीत भक्त। उनका बालक का-सा स्वभाव होता है। ईश्वर-नाम करना ही है उनकी पूजा। केवल उनका नाम।"

पंचम परिच्छेद

(केशव के संग बातें— ईश्वर के अस्पताल में आत्मा की चिकित्सा)

श्रीरामकृष्ण *(केशव के प्रति, सहास्य)*— तुम्हें रोग क्यों हुआ है, उसका अर्थ है। शरीर के भीतर से कितने ही भाव चले गए हैं, तभी वैसा हुआ है। जब भाव होता है, तब तो कुछ भी समझ में नहीं आता; अनेक दिनों बाद शरीर पर आघात लगता है। मैंने देखा है, गंगा पर से जब बड़ा जहाज चला जाता है, तब कुछ भी पता नहीं चलता; ओ माँ! कुछ देर पश्चात् देखता हूँ, किनारे के ऊपर जल धपास्-धपास् (छपाक-छपाक) कर रहा है; और हलचल मचा रहा है। शायद कुछ किनारा तोड़कर जल भीतर भी गया हो!

"फूस के घर में हाथी प्रवेश करके घर में हलचल मचाकर उसे तहस-नहस कर देता है। भावहस्ती ने देहघर में प्रवेश किया है; और उथल-पुथल कर रहा है।

"पता है, होता क्या है ? आग लग जाने पर वह कितनी ही वस्तुएँ जला डालती है; और एक विशेष गुल-गपाड़ा 'हई-हई' आरम्भ कर देती है।

ज्ञानाग्नि प्रथम तो काम, क्रोध इत्यादि रिपुओं का नाश करती है; उसके बाद अहं-बुद्धि का नाश करती है। फिर एक विशेष तोड़-फोड़ आरम्भ करती है।

"तुम सोचते होंगे सब समाप्त हो गया! किन्तु जब तक रोग का कुछ भी शेष रहता है, तब तक वे छोड़ेंगे नहीं। अस्पताल में यदि तुम नाम लिखवा लो, तो फिर आ नहीं सकते। जब तक रोग की तनिक-सी भी कसर रहती है, तब तक डॉक्टर साहेब आने नहीं देंगे। तुमने नाम क्यों लिखवाया?" *(सब का हास्य)*।

केशव अस्पताल की बात सुनकर बार-बार हँस रहे हैं। हँसी संवरण नहीं कर पा रहे। ठहर कर फिर हँस रहे हैं। ठाकुर बातें करते हैं।

(पूर्वकथा— ठाकुर की पीड़ा, राम कविराज की चिकित्सा)

श्रीरामकृष्ण *(केशव के प्रति)*— हृदु कहा करता था, ऐसा भाव भी देखा नहीं, ऐसा रोग भी देखा नहीं। तब मुझे बहुत रोग था। क्षण-क्षण में घने-घने दस्त होते। सिर में मानो दो लाख चींटियाँ काट रही हैं। किन्तु ईश्वरीय बातें रात-दिन चलतीं। नाटागढ़ का राम कविराज देखने आया। उसने देखा, मैं बैठा हुआ विचार कर रहा हूँ। तब वह बोला, 'यह क्या पागल है! दो हड्डियाँ लिए विचार कर रहा है।'

(केशव के प्रति)— उनकी इच्छा है— सकलइ तोमार इच्छा।

सकलइ तोमार इच्छा, इच्छामयी तारा तुमि।
तोमार कर्म तुमि करो माँ, लोके बोले करि आमि।

(सब तुम्हारी इच्छा है, माँ तुम इच्छामयी तारा हो। कर्म तुम्हारा है, और तुम्हीं करती हो, लोग कहते हैं, मैं करता हूँ।)

"शिशिर ऋतु में माली बसराई गुलाब को छाँट कर उसकी जड़ें नंगी कर देता है ताकि सर्दी, ओस लगने से पौधा खूब अंकुरित होकर बढ़े-फूले। इसीलिए लगता है तुम्हें जड़-मूल से उखाड़ रहे हैं। *(ठाकुर और केशव का हास्य)*। लगता है, अगली बार जब आओगे तब एक विशेष बड़ा काण्ड होगा।"

(केशव के लिए श्रीरामकृष्ण का क्रन्दन और
सिद्धेश्वरी के पास डाब और चीनी की मन्नत)

''तुम्हें रोग होने पर मेरा प्राण बड़ा ही व्याकुल हो जाता है। पहली बार जब रोग हुआ था, रात के आखिरी प्रहर में मैं रोया करता था। कहता था, माँ! केशव को यदि कुछ हो जाएगा तो मैं किसके साथ बातें करूँगा? तब कलकत्ता आकर सिद्धेश्वरी को डाब और चीनी दी थी। माँ से मन्नत की थी ताकि रोग ठीक हो जाए।''

केशव के ऊपर ठाकुर का यह अकृत्रिम (सच्चा) प्यार और उनके लिए व्याकुलता की बात सब अवाक् होकर सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— इस बार किन्तु इतना नहीं हुआ। सच्ची बात कहूँगा। किन्तु दो-तीन दिन थोड़ा-सा हुआ है।

पूर्व की ओर के जिस द्वार से केशव बैठक में आए थे, उसी द्वार पर केशव की पूजनीया जननी आई हैं। उसी द्वार के पास से उमानाथ ठाकुर श्रीरामकृष्ण से कहते हैं—

'माँ आप को प्रणाम करती हैं।'

ठाकुर हँसने लगे। उमानाथ कहते हैं—

'माँ कहती हैं, केशव का रोग जिससे चला जाए।'

ठाकुर कहते हैं—

''माँ, सुवचनी आनन्दमयी को पुकारो, वे दुःख दूर करेंगी।''

केशव से कहते हैं—

''घर के भीतर इतना न रहो। लड़कों के बीच रहकर और भी डूबोगे; ईश्वरीय बातें होने से और भी अच्छे रहोगे।''

गम्भीर भाव से बातें बोलकर फिर और भी बालकवत् हँस रहे हैं। केशव से कहते हैं—

''देखूँ, तुम्हारा हाथ देखूँ।''

लड़कों की भाँति हाथ लेकर मानो वजन कर रहे हैं। अन्त में कहते हैं—

''न, तुम्हारा हाथ तो हल्का है, खलों का हाथ तो भारी होता है।'' *(सब का हास्य)*।

उमानाथ द्वार से फिर कह रहे हैं—

"माँ कहती हैं, केशव को आशीर्वाद दें।"

श्रीरामकृष्ण *(गम्भीर स्वर में)*— मेरी क्या सामर्थ्य! वे ही आशीर्वाद करेंगी। 'तोमार कर्म तुमि करो माँ, लोके बोले करि आमि।'

"ईश्वर दो बार हँसते हैं। एक बार हँसते हैं, जब दो भाई जमीन का बँटवारा करते हैं; और रस्सी से माप कर कहते हैं, 'इस तरफ की मेरी है, उस तरफ की तुम्हारी!' ईश्वर यही सोचकर हँसते हैं, जगत मेरा है, उसकी तनिक-सी मिट्टी लेकर कहता है, 'यह तरफ मेरी है और वह तरफ तुम्हारी है!'

"ईश्वर और एक बार हँसते हैं। बेटे को खतरनाक रोग है। माँ रोती है। वैद्य आकर कहता है, 'भय क्या माँ, मैं चंगा कर दूँगा।' वैद्य नहीं जानता ईश्वर यदि मारते हैं तो किसकी सामर्थ्य है रक्षा करे।" *(सब ही निस्तब्ध)*।

ठीक इसी समय केशव खाँसने लगे और देर तक खाँसते रहे। वह खाँसी फिर थमती ही नहीं। उस खाँसी का शब्द सुनकर सब को ही कष्ट हो रहा है। बहुत देर बाद और बहुत कष्ट के उपरान्त खाँसी तनिक बन्द हुई। केशव वहाँ पर और ठहर नहीं सक रहे। ठाकुर को भूमिष्ठ होकर प्रणाम करते हैं। केशव ने प्रणाम करके अनेक कष्ट से दीवार पकड़-पकड़ कर उसी द्वार से अपने कमरे में पुनः गमन किया।

षष्ठ परिच्छेद

ब्राह्मसमाज और वेदोल्लिखित देवता— गुरुगिरी नीचबुद्धि

(अमृत— केशव का बड़ा लड़का— दयानन्द सरस्वती)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कुछ मीठा मुख करके जाएँगे। केशव का बड़ा लड़का पास आकर बैठा।

अमृत बोले, यह बड़ा बेटा है। आप आशीर्वाद करें। वह क्या! सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद करें।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बोले— ''मैं आशीर्वाद करता नहीं,'' यह कहकर सहास्य लड़के की देह पर हाथ फेरने लगे।

अमृत *(सहास्य)*— अच्छा, तो फिर देह पर हाथ फेर दें। *(सब का हास्य)*।

ठाकुर अमृतादि ब्राह्म भक्तों के संग केशव की बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(अमृतादि के प्रति)*— 'रोग चंगा हो जाए' इत्यादि मैं नहीं कह सकता। वह क्षमता मैं माँ से माँगता भी नहीं। मैं माँ से केवल कहता हूँ, माँ मुझे शुद्धा भक्ति दो।

''ये *(केशव)* क्या कुछ कम व्यक्ति हैं जी? जो रुपया चाहते हैं, वे भी इन्हें मानते हैं; और फिर साधु भी मानते हैं। दयानन्द को देखा था। तब बाग में थे। केशवसेन, केशवसेन करके अन्दर-बाहिर कर रहे थे— कब केशव आएँगे! उस दिन शायद केशव के आने की बात थी।

''दयानन्द बंगला भाषा को कहता था— 'गौड़ाण्ड भाषा।'

''ये *(केशव)* लगता है, होम और देवता नहीं मानते थे। तभी तो *(दयानन्द ने)* कहा था, ईश्वर ने इतनी वस्तुएँ बनाई हैं, फिर देवता नहीं बना सकते?''

ठाकुर केशव के शिष्यों के पास केशव की खूब प्रशंसा कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— केशव हीन बुद्धि नहीं हैं। इन्होंने अनेकों से ही कहा है, जिसे जो-जो सन्देह हो, वहाँ जाकर *(ठाकुर श्रीरामकृष्ण से)* पूछ ले। मेरा तो स्वभाव ही यही है; मैं कहता हूँ— ये और भी करोड़ गुणा बढ़ें। मैं मान लेकर क्या करूँगा?

''ये बड़े आदमी हैं। जो रुपया चाहते हैं, वे भी इन्हें मानते हैं, और फिर साधु भी मानते हैं।''

ठाकुर कुछ मीठा मुख करके अब गाड़ी पर चढ़ेंगे। ब्राह्म भक्त संग में आकर बिठा रहे हैं।

सीढ़ियों से उतरते समय ठाकुर ने देखा, नीचे आलोक नहीं है। तब अमृतादि भक्तों से कहा,

''ऐसी जगहों पर अच्छी तरह से प्रकाश होना चाहिए। रोशनी न की जाए तो दारिद्र्य होता है। ऐसा फिर कभी न हो।''

ठाकुर ने दो-एक भक्तों के साथ उसी रात को कालीबाड़ी की यात्रा की।

एकादश खण्ड

दक्षिणेश्वर के काली-मन्दिर में भक्तों के संग में ठाकुर श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(भक्तियोग, समाधितत्त्व और महाप्रभु की अवस्था)

रविवार, 9 दिसम्बर, 1883 ईसवी; अग्रहायण शुक्लादशमी तिथि, समय प्राय: एक-दो का होगा। ठाकुर श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में उसी छोटी खाट पर बैठे हुए भक्तों के संग में हरिकथा कह रहे हैं। अधर, मनोमोहन, ठनठने के शिवचन्द्र, राखाल, मास्टर, हरीश इत्यादि अनेक भक्त बैठे हैं, हाजरा भी इस समय यहीं पर रहते हैं। ठाकुर महाप्रभु की अवस्था का वर्णन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— चैतन्यदेव की तीन अवस्थाएँ हुआ करती थीं—

1. बाह्य दशा— तब स्थूल और सूक्ष्म में उनका मन रहता।
2. अर्धबाह्य दशा— तब कारण शरीर में, कारणानन्द में मन चला जाता।
3. अन्तर्दशा— तब महाकारण में मन का लय हो जाता।

"वेदान्त के पंचकोष के साथ इसका सुन्दर मेल है। स्थूल शरीर, अर्थात् अन्नमय और प्राणमय कोष। सूक्ष्म शरीर, अर्थात् मनोनय कोष और विज्ञानमय कोष। कारण शरीर अर्थात् आनन्दमय कोष। महाकारण पंचकोषों के अतीत। महाकारण में जब मन लीन होता तब समाधिस्थ रहते थे। इसी

का ही तो नाम है निर्विकल्प अथवा जड़-समाधि।

"चैतन्यदेव की जब बाह्यदशा होती तब वे नाम-संकीर्त्तन करते। अर्धबाह्यदशा में भक्तसंगे नृत्य करते। अन्तर्दशा में समाधिस्थ होते।"

मास्टर *(स्वगत)*— ठाकुर क्या अपनी समस्त अवस्थाएँ इसी प्रकार इंगित कर रहे हैं? चैतन्यदेव को भी इसी प्रकार हुआ करता था?

श्रीरामकृष्ण— चैतन्य 'भक्ति' के अवतार थे, जीव को भक्ति सिखाने आए थे। उनके ऊपर भक्ति होने से ही सब कुछ हो गया। हठयोग की कुछ भी आवश्यकता नहीं।

(हठयोग और राजयोग)

कोई भक्त— जी, हठयोग कैसा होता है?

श्रीरामकृष्ण— हठयोग में शरीर के ऊपर अधिक मनोयोग दिया जाता है। अन्तर प्रक्षालन के लिए गुह्यद्वार को बाँस की नली पर रखता है। लिंग द्वारा दूध-घी खींचता है। जिह्वा-सिद्धि-अभ्यास करता है। आसन करके कभी-कभी शून्य में चढ़ता है! वे सब कार्य वायु के हैं। किसी व्यक्ति ने जादू दिखाते-दिखाते तालू के भीतर जिह्वा का प्रवेश करवा दिया था। झट उसका शरीर स्थिर हो गया। लोगों ने समझा, मर गया है। बहुत वर्ष वह कब्र में दबा पड़ा रहा। बहुकाल पश्चात् वह कब्र किसी कारण तोड़ दी गई। उस व्यक्ति को हठात् चैतन्य हो गया। चैतन्य होने के बाद ही वह चिल्लाने लगा, यह देखो जादूगरी, यह देखो कलाबाजी। *(सब का हास्य)* यह सब वायु का कार्य है।

"वेदान्तवादी हठयोग को नहीं मानते।

"हठयोग और राजयोग। राजयोग में मन के द्वारा योग होता है। भक्ति के द्वारा, विचार के द्वारा योग होता है। वही योग अच्छा है। हठयोग अच्छा नहीं; कलि में अन्न में प्राण हैं!"

द्वितीय परिच्छेद

(ठाकुर-तपस्या, ठाकुर के आत्मीयगण और भविष्यत् महातीर्थ)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण नहबत के बगल के रास्ते पर खड़े हुए हैं। देख रहे हैं नहबत के बरामदे की एक बगल में बैठ कर, वेहड़े की ओट में मणि गम्भीर चिन्तानिमग्न हैं। वे क्या ईश्वर-चिन्तन कर रहे हैं? ठाकुर झाऊतले गए थे, मुख धोकर वहाँ पर आकर खड़े हो गए हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ जी, यहाँ पर बैठकर कर रहे हो! तुम्हारा शीघ्र होगा। थोड़ा-सा कर लेने पर ही कोई कहेगा, यही, यही!

मणि चकित होकर ठाकुर की ओर ताक रहे हैं। अब तक भी आसन नहीं त्याग किया।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारा समय हुआ है। पक्षी अण्डा फोड़ने का समय बिना हुए अण्डा नहीं फोड़ता। जो घर तुम्हें बतलाया है, तुम्हारा निश्चय ही वही घर है।

यह कहकर ठाकुर ने मणि का 'घर' फिर दोबारा बता दिया।

"सब को ही जो अधिक तपस्या करनी पड़ती है, वैसा नहीं है। किन्तु मुझ को बहुत कष्ट करना पड़ा था। मिट्टी के ढेले पर सिर रख कर पड़ा रहता था। कहाँ दिन चला जाता! केवल माँ-माँ कहकर पुकारता और रोता।"

मणि ठाकुर के पास प्राय: दो वर्ष से आ रहे हैं। वे अंग्रेज़ी पढ़े हुए हैं। ठाकुर उन्हें कभी-कभी इंग्लिशमैन कहते हैं। कॉलिज में पढ़े हैं। विवाह किया हुआ है।

उन्होंने केशव और अन्यान्य विद्वानों के लैक्चर सुने हैं, अंग्रेज़ी-दर्शन और विज्ञान पढ़ना पसन्द करते हैं। किन्तु जब से वे ठाकुर के पास आए तब से यूरोपीय पण्डितों के ग्रन्थ और अंग्रेज़ी अथवा अन्य भाषाओं के लैक्चर उन्हें अलोने लगते हैं। अब केवल रात-दिन ठाकुर को देखना और उनके श्रीमुख की कथा सुनना पसन्द करते हैं।

आजकल वे सर्वदा ठाकुर की एक ही बात पर विशेष विचार करते हैं। ठाकुर कहते हैं, 'साधन करने पर ही ईश्वर को देखा जाता है।' और

भी कहते हैं, 'ईश्वरदर्शन ही है मनुष्य-जीवन का उद्देश्य।'

श्रीरामकृष्ण— थोड़ा-सा कर लेने पर ही कोई बोलेगा— यही, यही। तुम 'एकादशी' करो। तुम अपने जन हो, आत्मीय। वह न होते तो इतना आओगे क्यों? कीर्त्तन सुनते-सुनते राखाल को देखा था, ब्रजमण्डल के भीतर रहता है। नरेन्द्र का खूब ऊँचा घर है। और हीरानन्द! उसका कैसा बालक का भाव है! उसका कैसा मधुर भाव है! उसको भी मिलने की इच्छा होती है।

(पूर्वकथा— गौरांग के सांगोपांग— तुलसी-कानन— सेजोबाबू की सेवा)

''गौरांग के सांगोपांग देखे थे। भाव में नहीं, इन्हीं आँखों से! पहले ऐसी अवस्था हो गई थी कि सामान्य आँखों से सब दर्शन होते थे! अब तो भाव में होते हैं।

''इन्हीं सादी आँखों से गौरांग के सांगोपांग आदि देखे थे। ...उनके मध्य में तुम्हें भी जैसे देखा था। बलराम को भी जैसे देखा था।

''किसी को देखकर तड़ाक् से उठकर क्यों खड़ा हो जाता हूँ, जानते हो? अपनों को बहुकाल पश्चात् देखने पर जैसे होता है।

''माँ से रो-रो कर कहता, 'माँ! भक्तों के लिए मेरा प्राण जा रहा है, उन्हें शीघ्र मेरे पास ला दे।' जो-जो मन में आता, वही होता।

''पंचवटी में तुलसी-कानन बनाया था— जप-ध्यान करने के लिए। बाँस की कमानियों से इसका घेरा लगाने की इच्छा हुई। उसके अनन्तर देखता हूँ ज्वार में कमानियों का गट्ठा और थोड़ी-सी रस्सी ठीक पंचवटी के सामने आ गई। ठाकुर-मन्दिर के किसी बोझी ने नाचते-नाचते आकर मुझे खबर दी।

''जब ऐसी अवस्था हो गई तो और पूजा नहीं कर पाया। बोला था, 'माँ, मुझे कौन देखेगा? माँ! मेरी ऐसी शक्ति नहीं जो अपना भार आप ही लूँ। और तुम्हारी बातें सुनने की इच्छा होती है; भक्तों को खिलाने की इच्छा होती है; कोई सामने आ जाए तो कुछ देने की इच्छा होती है। यह सब माँ,

कैसे हो ? माँ, तुम किसी बड़े व्यक्ति को सहायक दे दो!' तभी तो सेजोबाबू ने इतनी सेवा की।

"और कहा था, 'माँ! मेरी तो फिर सन्तान नहीं होगी, किन्तु इच्छा होती है कि एक विशेष शुद्ध भक्त लड़का सर्वदा मेरे संग में रहे। वैसा ही एक लड़का मुझे दो।' जभी तो राखाल हुआ। जो–जो अपने जन हैं, वे कोई अंश हैं, कोई कला हैं।"

ठाकुर फिर पंचवटी की ओर जा रहे हैं। मास्टर संग में हैं, और कोई नहीं। ठाकुर सहास्य उनके साथ नाना बातें कर रहे हैं।

(पूर्व-कथा— अद्‌भुत मूर्ति-दर्शन— वटवृक्ष की डाल)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— देखो, एक दिन देखा— काली–मन्दिर से पंचवटी पर्यन्त एक अद्‌भुत मूर्ति! इस पर तुम्हें विश्वास होता है ?

मास्टर अवाक् हुए रहे।

वे पंचवटी की शाखा से दो–एक पत्ते पाकेट में रखते हैं।

श्रीरामकृष्ण— यही जो शाखा गिर गई है, देख रहे हो; इसके नीचे (मैं) बैठा करता था।

मास्टर— मैं इसकी एक कच्ची शाखा ले गया हूँ, घर में रख दी है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्यों ?

मास्टर— देखने से आह्लाद होता है। सब समाप्त हो जाने पर यह स्थान महातीर्थ होगा।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— कैसा तीर्थ ? क्या, पेनेटी की भाँति ?

पेनेटी में महा समारोह करके राघव पण्डित का महोत्सव होता है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण प्राय: प्रतिवर्ष महोत्सव देखने जाया करते हैं और संकीर्त्तन के मध्य में प्रेमानन्द में नृत्य करते हैं, जैसे श्री गौरांग भक्त की पुकार सुनकर रह न सकने पर स्वयं आकर संकीर्त्तन के मध्य में प्रेममूर्ति दिखला रहे हैं।

तृतीय परिच्छेद

(हरिकथा प्रसंग में)

सन्ध्या हो गई। ठाकुर श्रीरामकृष्ण घर की छोटी खाट पर बैठे माँ का चिन्तन कर रहे हैं। क्रमशः ठाकुरबाड़ी में ठाकुरों की आरती आरम्भ हो गई। शंख, घण्टे बजने लगे। मास्टर आज रात को ठहरेंगे।

कुछ क्षण बाद ठाकुर ने मास्टर को 'भक्तमाल' पाठ करके सुनाने के लिए कहा। मास्टर पढ़ रहे हैं—

(चरित्र श्री महाराज श्री जयमल)

जयमल नामे एक राजा शुद्धमति। अनिर्वचनीय ताँर श्रीकृष्ण पिरीत॥
भक्ति-अंग-योजने जे सुदृढ़ नियम। पाषानेर रेखा जेनो नाहि बेशीकम॥
श्यामल सुन्दर नाम श्री विग्रहसेवा। ताहाते प्रसन्न, नाहि जाने देवी देवा॥
दशदण्ड-वेला-वधि तोहार सेबाय। नियुक्त थाकये सदा दृढ़ नियम होय॥
राज्यधन जाय किवा वज्राघात होय। तथापिह सेवासमे फिरि ना ताकाय॥
प्रतियोगी राजा इहा सन्धान जानिया। सेई अवकाशकाले आइलो हानादिया॥
राजार हुकुम बिने सैन्य-आदि-गण। युद्ध ना करिते पारे करे निरीक्षण॥
क्रमे-क्रमे आसिगड़ घेरे रिपुगण। तथापिह ताहाते किंचित् नाहि मन॥
माता ताँर आसि करे कत उच्चध्वनि। उद्विग्न होइया माथाय कर हानि॥
सर्वस्व लइलो आर सर्वनाश हैलो। तथापि तोमार किछु भुरुक्षेप नैल॥
जयमल कहे माता केनो दुःख भावो। येइ दिलो सेइ लबे ताहे कि करिबो॥
सेइ यदि राखे तबे के लइते पारे। अतएव आमा सबार उद्यमे कि करे॥
श्यामल सुन्दर हेथा घोड़ाय चड़िया। युद्ध करिबारे गेला अस्तर धरिया॥
एकाइ भक्तेर रिपु सैन्यगण मारि। आसिया बान्धिलो घोड़ा आपन तेहोयारि॥
सेवा समापने राजा निकशिया देखे। घोड़ार सर्वांग घर्म श्वास बहे नाके॥
जिज्ञासये मोर अश्वे सओमार के हैलो। ठाकुर-मन्दिरे वा के आनि बांधिलो॥
सबे कहे के चड़िलो के आनि बांधिलो। आमरा जे नाहिजानि कखन आनिलो॥
संशय होइया राजा भाविते भाविते। सैन्यसामन्त सह चलिलो युद्धते॥
युद्धस्थाने गया देखे शत्तुरेर सैन्य। रणश्य्याय शूइयाछे मात्र एक भिन्न॥

प्रधान जे राजा एबे सेइ मात्र आछे। विस्मय होइया त्रिह कारण कि पूछे॥
हेनकाले अइ प्रतियोगी जे राजा। गलवस्त्र होइया करिलो बहु पूजा॥
आसिया जयमल महाराजार अग्रेते। निवेदन करे किछु करि जोड़हाते॥
कि करिबो युद्ध तव एक जे सेपाई। परम आश्चर्य से त्रैलोक्य-विजयी॥
अर्थ नाहि मागों मुक्तिराज्य नाहि चाहों। वरंच आमार राज्य चल दिबो लहो॥
श्यामल सेपाइ सेइ लड़िते आइलो। तोमासने प्रीति कि तार बिबरिया बोलो॥
सैन्य जे मारिलो मोर तारे मुइ पारि। दरशनमात्रे मोर चित्त निलो हरि॥
जयमल बुझिलो एइ श्यामलजीर कर्म। प्रतियोगी राजा जे बुझिलो इहा मर्म॥
जयमलेर चरण धरिया स्तव करे। जाहार प्रसादे कृष्ण कृपा हैलो तारे॥
ताँहा-सवार श्रीचरणे शरण आमार। श्यामल सेपाइ येनो करे अंगीकार॥

[भावार्थ— जयमल नाम के एक शुद्धमति राजा थे। श्री कृष्ण पर उनकी प्रीति अनिर्वचनीय थी। नवधा भक्ति के भजन में उनके इतने सुदृढ़ नियम थे कि पाषाण-रेखा से भी मानो अधिक, कम नहीं थे। श्यामल सुन्दर नाम की श्री विग्रह-सेवा करते हुए ही वे प्रसन्न रहते थे और किसी देवी-देवता को वे नहीं जानते थे। दस दण्ड* दिन चढ़ते तक वे उनकी सेवा में दृढ़ नियम होकर लगे रहते। राज्य-धन जाय या वज्राघात हो, तथापि पूजा के समय अन्य ओर ध्यान नहीं देते थे। प्रतियोगी राजा को इसका सन्धान मिला। वह उसी (पूजा के) समय आक्रमण कर चढ़ आया। राजा के हुक्म बिना सैन्य-आदि-गण युद्ध नहीं कर सकते, राजाज्ञा की प्रतीक्षा करते रहे। रिपुगण ने क्रमशः गढ़ घेर लिया। तथापि राजा का उसमें किञ्चित् भी मन नहीं। उनकी माता माथा पीटती हुई उद्विग्न हो उच्च स्वर से रोने लगी— सर्वस्व ले लिया और सर्वनाश हो गया फिर भी तुम्हें कुछ भ्रूक्षेप नहीं। जयमल बोले, "माता, क्यों दुःखी होती हो? जिसने दिया, वही ले ले तो क्या करूँ? वही जब रखेगा तो कौन ले सकेगा? अतएव हम सब का उद्यम क्या करेगा?" इधर श्यामल सुन्दर अस्त्र धारण कर घोड़े पर चढ़ युद्ध करने गए। अकेले ही भक्त के रिपु-सैन्यगण को मारकर, घोड़ा वापिस बाँधकर पूर्ववत् बैठ गए। पूजा-समापन पर बाहिर आकर राजा जयमल ने देखा कि घोड़ा पसीने से तर हुआ हाँफ रहा है। पूछा, "मेरे घोड़े पर कौन सवार हुआ? और किसने ठाकुर-मन्दिर में ला बाँधा?" सभी कहने लगे, कौन चढ़ा, कौन लाया, हमें सब नहीं पता। संशय होने पर राजा भावते-भावते सैन्य समेत युद्ध-भूमि चले। युद्ध-स्थल में जाकर देखा शत्रु-सैन्य रणशय्या में सोया है— मात्र एक प्रधान राजा बचा है। विस्मित हो कारण पूछा। प्रतियोगी राजा ने गलवस्त्र हो राजा जयमल की बहु पूजा की और कर-जोड़ निवेदन किया— 'तुम्हारे एक परम आश्चर्यकारी सिपाही के सामने क्या

* एक दण्ड = 24 मिनट

युद्ध करता? वह तो त्रिलोक विजयी है। मैं अर्थ नहीं माँगता, राज्य नहीं चाहता। वरंच मेरा राज्य चाहे ले लो। किन्तु यह बता दो कि तुम्हारा वह श्यामल सिपाही कौन था, जिसने मेरे सैन्य-दल को मारा सो मारा, दर्शन मात्र से मेरा मन हर लिया।' राजा जयमल समझ गए यह था श्यामल जी का कार्य। प्रतियोगी राजा भी इसका मर्म समझ गए और जयमल के चरण पकड़ कर स्तव करने लगे और कहने लगे कि जिनकी कृपा से मुझ पर श्री कृष्ण की कृपा हुई, उन्हीं आपके चरणों में मैं शरण लेता हूँ ताकि श्यामल सिपाही मुझे अंगीकार कर ले।]

पाठान्ते ठाकुर मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं।

(भक्तमाल कट्टर— अन्तरंग कौन? जनक और शुकदेव)

श्रीरामकृष्ण— तुम्हें ऐसा विश्वास होता है? उन्होंने सवार होकर सेना विनाश की थी, ऐसा विश्वास होता है?

मास्टर— भक्त ने व्याकुल होकर पुकारा था, इस अवस्था पर विश्वास होता है। भगवान को सचमुच सवार देखा था कि नहीं, यह सब समझ नहीं आ सकता। वे सवार होकर आ सकते हैं, तो भी उसने सचमुच देखा था कि नहीं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— इस पुस्तक में भक्तों की सुन्दर-सुन्दर कथाएँ हैं। फिर भी वे कट्टर हैं। जिनका अन्य मत है उनकी निन्दा है।

अगले दिन उद्यानपथ पर खड़े हुए ठाकुर बातें कर रहे हैं। मणि से कहते हैं, तब तो फिर मैं यहाँ आकर रहूँगा।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, तुम लोग इतना जो आते हो, इसका क्या मतलब! लोग साधु को हद्द है एक बार देख जाते हैं। इतना आते हो— इसका क्या मतलब है?

मणि अवाक्। ठाकुर निज ही प्रश्न का उत्तर देते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— अन्तरंग बिना हुए क्या आते? अन्तरंग अर्थात् आत्मीय, अपना जन— जैसे बाप, बेटा, भाई, भगिनी।

"सारी-सारी बातें नहीं कहता। तब फिर क्यों आओगे?

"शुकदेव ब्रह्मज्ञान के लिए जनक के पास गए थे। जनक ने कहा दक्षिणा पहले दे दो। शुकदेव बोले, पहले उपदेश बिना पाए दक्षिणा कैसे हुई! जनक हँसते-हँसते बोले, तुम्हारा ब्रह्मज्ञान हो जाने पर फिर क्या गुरु-शिष्य-बोध रहेगा? अतएव पहले दक्षिणा की बात कही।"

चतुर्थ परिच्छेद

(सेवक-हृदय में)

शुक्लपक्ष। चाँद उदय हुआ है। मणि कालीबाड़ी के उद्यानपथ पर टहल रहे हैं। पथ के एक किनारे पर ठाकुर श्रीरामकृष्ण का कमरा, नहबतखाना, बकुलतला और पंचवटी हैं; दूसरे किनारे हैं भागीरथी-ज्योत्स्नामयी।

अपने-आप कुछ बोल रहे हैं। 'सचमुच ही क्या ईश्वर-दर्शन किया जाता है? ठाकुर श्रीरामकृष्ण तो कहते हैं। कहा है, थोड़ा-सा कुछ करने पर कोई आकर बतला देगा, 'यही, यही।' अर्थात् थोड़े-से साधन की बात कही। अच्छा, विवाह, लड़के-बच्चे हुए हैं, इसमें भी क्या उनको प्राप्त किया जाता है? *(तनिक चिन्ता के बाद)* अवश्य किया जाता है, वैसा न होता तो ठाकुर क्यों कहते? उनकी कृपा होने पर क्यों नहीं होगा?

'यह जो जगत सामने है; सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, जीव, चौबीस तत्त्व। यह सब कैसे हुआ, इसका कर्त्ता ही फिर कौन है, मैं ही फिर उसका क्या हूँ, यह बिना जाने तो जीवन वृथा ही है!

'ठाकुर श्रीरामकृष्ण पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। ऐसा महापुरुष अब तक इस जीवन में नहीं देखा। इन्होंने अवश्य ही उस ईश्वर को देखा है। वह न हुआ होता तो माँ-माँ करके किसके संग रात-दिन बातें करते हैं! और वह न हुआ होता तो ईश्वर के ऊपर इनका इतना प्यार कैसे हुआ? इतना प्यार कि बाह्यशून्य हो जाते हैं! समाधिस्थ, जड़ की न्यायीं हो जाते हैं! और फिर कभी-कभी तो प्रेम में उन्मत्त होकर हँसते हैं, रोते हैं, नाचते हैं, गाते हैं!'

द्वादश खण्ड

दक्षिणेश्वर में
भक्तों के संग में ठाकुर श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

अग्रहायण पूर्णिमा और संक्रान्ति, शुक्रवार, 14 दिसम्बर, 1883 ईसवी। समय प्राय: नौ का होगा। ठाकुर श्रीरामकृष्ण अपने कमरे के द्वार के निकट दक्षिणपूर्व के बरामदे में खड़े हुए हैं। रामलाल पास खड़े हैं। राखाल, लाटु निकट ही इधर-उधर हैं। मणि ने आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया।

ठाकुर बोले— "आए हो? यह आज का दिन बहुत अच्छा है।" वे ठाकुर के पास कुछ दिन रहेंगे; 'साधन' करेंगे। ठाकुर ने कहा है, कुछ करने पर ही कोई बोल देगा, 'यह, यह'।

ठाकुर ने कह दिया था—

"यहाँ का, अतिथिशाला का, अन्न तुम्हें रोज खाना उचित नहीं है। वह साधु और कंगालों के लिए बनता है। तुम अपना आहार पकाने वाला एक व्यक्ति ले आना।"

जभी साथ में एक व्यक्ति आया है।

उनका भोजन कहाँ पकेगा? वे दूध पिएँगे; ठाकुर ने रामलाल को ग्वाले से बन्दोबस्त कर देने के लिए कहा।

श्रीयुक्त रामलाल अध्यात्म रामायण पढ़ रहे हैं और ठाकुर सुन रहे

हैं। मणि भी बैठकर सुनते हैं।

रामचन्द्र सीता से विवाह कर अयोध्या में आ रहे हैं। मार्ग में परशुराम के साथ मेल हो गया। राम ने शिवधनुष तोड़ डाला है, सुनकर परशुराम मार्ग में बड़ी गड़बड़ करने लगे। दशरथ भय से आकुल हो गए। परशुराम ने और एक धनुष राम की ओर फैंक दिया। और उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए कहा। राम ने ईषत् हँसकर बायें हाथ में धनुष पकड़ लिया और उस पर डोरी चढ़ाकर टंकार की! धनुष पर बाण लगाकर परशुराम से बोले, अब यह बाण कहाँ पर छोड़ूँ, बोलो। परशुराम का दर्प चूर्ण हो गया। वे श्री राम को परब्रह्म जानकर स्तव करने लगे।

परशुराम का स्तव सुनते-सुनते ठाकुर भावाविष्ट हो गए। बीच-बीच में 'राम-राम', यह नाम मधुर कण्ठ से उच्चारण करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(रामलाल से)*— ज़रा गुह-निषाद-कथा सुनाओ तो!

रामचन्द्र जब 'पिता की प्रतिज्ञा' निभाने के लिए वन में गए थे, गुहराज चौंक गए थे। रामलाल भक्तमाल से पढ़ रहे हैं—

नयने गलये धारा मने उत्तरोल, चमकि चाहिया रहे नाकि आइसे बोल।
निमिख नाहिक पड़े चाहिया रहिलो, काष्ठेर पुतुलि प्राय: अस्पन्द होइलो।

[भावार्थ— (गुहराज) के नयनों से अश्रु-धारा बहने लगी, कण्ठ से बोल नहीं निकला, कठपुतली की तरह प्राय: नि:स्पन्द होकर निर्निमेष उन्हें निहारते रहे।]

तब फिर धीरे-धीरे राम के पास जाकर बोले, मेरे घर में आ जाओ। राम ने उन्हें मित्र कहकर आलिंगन किया। गुह तब उन्हें आत्मसमर्पण करते हैं—

गुह बोले भालो भालो तुमि मोर मिते। तोमाके संपिनु देह पराण सहिते॥
तुमि मोर-सरवस प्राण धन राज्य। तुमि मोर भक्ति, मुक्ति तुमि शुभकार्य॥
आमि मरया जाइ तब बालायेर सने। देह समर्पिनु पिता तोमार चरणे॥

[भावार्थ— गुह बोले, भला हुआ कि तुम मेरे मित्र हुए। तुम्हें मैं प्राण सहित देह अर्पित करता हूँ। तुम्हीं मेरे प्राण, धन, राज्य, भक्ति-मुक्ति, शुभ कार्य— सर्वस्व हो। मैं तुम्हारे स्नेह से मरा जा रहा हूँ और तुम्हारे चरणों में देह समर्पित करता हूँ।]

रामचन्द्र चौदह वर्ष वन में रहेंगे और जटा-वल्कल धारण करेंगे, सुनकर गुह

ने जटा-वल्कल धारण करके फलमूल के अतिरिक्त कोई आहार नहीं किया। चौदह वर्ष के अन्त में राम को आते हुए न देखकर गुह अग्नि-प्रवेश करने जा रहे हैं, ऐसे समय हनुमान ने आकर संवाद दिया। संवाद पाकर गुह महानन्द में मग्न हो गए। रामचन्द्र और सीता पुष्पक रथ में आकर उपस्थित हो गए।

दयाल परमानन्द, प्रेमाधीन रामचन्द्र भक्तवत्सल गुणधाम।
प्रिय भक्तराज गुह, हेरिया पुलक देह, हृदये लोइला प्रियतम।
गाढ़ आलिंगन दोंहे, प्रभु भृत्ये लागि रहे, अश्रुजले दोंहा अंग भिजे।
धन्य गुह महाशय, चारिदिके जय जय, कोलाहल होलो क्षिति माझे॥

[भावार्थ— दयालु, परमानन्दधाम, प्रेमाधीन, भक्तवत्सल, गुणधाम रामचन्द्र जी ने भक्तराज प्रिय गुह की पुलकित देह को हृदय से लगा लिया। प्रभु-भृत्य दोनों ही गाढ़ आलिंगन में रहे और अश्रुजल से दोनों के अंग भीग गए। धन्य गुह महाशय! चारों ओर उनका जय-जय-कोलाहल हो गया।]

(केशवसेन का यदृच्छालाभ— उपाय— तीव्र वैराग्य और संसार-त्याग)

आहारान्ते ठाकुर श्रीरामकृष्ण थोड़ा-सा विश्राम कर रहे हैं। मास्टर पास बैठे हैं। इसी समय श्याम डॉक्टर तथा और भी कई लोग आ गए।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण उठ कर बैठ गए और बातें करने लगे।

श्रीरामकृष्ण— कर्म सर्वदा ही करना होता है, ऐसा नहीं। ईश्वर-लाभ होने पर फिर कर्म नहीं रहता। फल हो जाने पर फूल अपने-आप ही झड़ पड़ता है।

"जिसको प्राप्त हो जाता है, उसका सन्ध्यादि कर्म नहीं रहता। सन्ध्या गायत्री में लीन हो जाती है। तब गायत्री जपने से ही हो जाता है। और गायत्री ॐकार में लय हो जाती है। तब गायत्री मन्त्र भी नहीं बोलना पड़ता। तब केवल 'ॐ' बोलने से ही चलता है। सन्ध्यादि कर्म कितने दिन? जब तक हरिनाम में या रामनाम में पुलक नहीं होता, और धारा नहीं पड़ती। रुपये-पैसे के लिए, अथवा मुकदमा जीतने के लिए पूजादि कर्म करना अच्छा नहीं है।"

कोई भक्त— रुपये-पैसे की चेष्टा तो सब ही करते हैं, देख रहा हूँ। केशवसेन

ने कैसे राजा के संग लड़की का विवाह कर दिया!

श्रीरामकृष्ण— केशव की बात अलग है। जो सच्चा भक्त है वह चेष्टा न भी करे तो ईश्वर उसको सब जुटा देते हैं। जो सचमुच ही राजा का लड़का है, उसे मासिक जेब-खर्च मिलता है। वकील-शकील की बात नहीं कहता— जो कष्ट करके लोगों का दासत्व करके रुपया लाते हैं। मैं कहता हूँ, 'ठीक राजा का बेटा'। जिसकी कोई कामना नहीं, वह रुपया-पैसा माँगता नहीं; रुपया अपने-आप आता है। गीता में है— यदृच्छालाभ।'

"सद्ब्राह्मण, जिसकी कोई कामना नहीं है, वह डोम के घर का सीधा भी ले सकता है। 'यदृच्छालाभ'। वह माँगता नहीं, किन्तु अपने-आप आता है।"

कोई भक्त— अच्छा जी, गृहस्थी में कैसे रहना चाहिए?

श्रीरामकृष्ण— पांकाल मछली की भाँति रहे। गृहस्थी से कुछ दूर जाकर, निर्जन में ईश्वर-चिन्तन बीच-बीच में करने से उनमें भक्ति पैदा होती है। तब निर्लिप्त होकर रह सकता है। कीचड़ के भीतर रहना पड़ता है, तथापि देह पर कीचड़ नहीं लगता। वह व्यक्ति अनासक्त होकर संसार में रहता है।

ठाकुर देख रहे हैं, मणि बैठे हुए एकमन से समस्त सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मणि की ओर ताक कर)*— तीव्र वैराग्य होने पर ही तब ईश्वर को पाया जाता है। जिस को तीव्र वैराग्य हो जाता है, उसको बोध हो जाता है कि संसार दावानल है! जल रहा है! स्त्री-पुत्र को देखता है मृत्युकूप। वैसा वैराग्य यदि ठीक हो तो घर का त्याग हो जाता है। केवल अनासक्त होकर रहना नहीं। कामिनी-कांचन ही माया है। माया को यदि पहचान सकते हो, तो वह लज्जा से आप भाग जाएगी। कोई व्यक्ति बाघ की खाल पहन कर डरा रहा था। जिसे भय दिखा रहा था वह कहता है, मैंने तुम्हें पहचान लिया है— तू तो हमारा ही है। तब वह हँसकर चला गया— तब फिर और अन्य एक व्यक्ति को भय दिखाने लगा।

"जितनी स्त्रियाँ हैं, सब शक्ति-रूपा हैं। उसी आद्याशक्ति ने ही स्वयं स्त्री होते हुए भी स्त्री-रूप धारण किया हुआ है। अध्यात्म (रामायण) में

है— राम का नारदादि स्तव करते हैं, 'हे राम! जितने पुरुष हैं, सब तुम हो; और प्रकृति के जितने रूप हैं, वे सीता ने धारण किए हैं। तुम इन्द्र, सीता इन्द्राणी; तुम शिव, सीता शिवानी; तुम नर, सीता नारी! अधिक और क्या कहूँ— जहाँ पुरुष है, वहाँ पर तुम हो; जहाँ पर स्त्री है, वहाँ पर सीता है'।"

(त्याग और प्रारब्ध— वामाचार-साधन— ठाकुर का निषेध)

(भक्तों के प्रति)— "सोचने से ही त्याग नहीं किया जाता। प्रारब्ध, संस्कार इत्यादि भी तो फिर हैं। किसी राजा को किसी योगी ने कहा, तुम मेरे पास बैठकर भगवान का चिन्तन करो। राजा बोला, ठाकुर, वह बहुत देर तक नहीं चलेगा; मैं यहाँ रह सकता हूँ, किन्तु मेरा अभी भी भोग है। मैं यदि इस वन में रहूँ तो हो सकता है उसी वन में एक राज्य बन जाए। मेरा अभी तक भोग है।

"नटवर पांजा जब लड़का था, इसी बाग में गायें चराया करता था। किन्तु उसका काफी भोग था। जभी तो अब अरण्ड की कल लगा कर काफी रुपया बना रहा है। आलमबाजार में अरण्ड की कल का व्यवसाय बहुत चला रहा है।

"एक मत में है— स्त्रियों को लेकर साधन करना। कर्त्ताभजा मुझे एक बार औरतों के भीतर ले गया था। सब मेरे पास आकर बैठ गईं। मेरे उनको 'माँ, माँ' कहने पर वे आपस में बातें करने लगीं, ये 'प्रवर्त्तक' हैं, अभी तक 'घाट' पहचानते नहीं हैं! उनके मत में कच्ची अवस्था को प्रवर्त्तक कहते हैं, उसके बाद साधक, उसके बाद सिद्धों का सिद्ध।

"कोई स्त्री वैष्णवचरण के निकट जाकर बैठ गई। वैष्णवचरण से पूछने पर वह बोला, 'इसका है बालिका भाव'।

"स्त्रीभाव में पतन शीघ्र हो जाता है। मातृभाव है शुद्ध भाव।"

काँसारिपाड़े के भक्त उठे और बोले, तो हम चलते हैं, माँ काली के और भगवान के दर्शन करेंगे।

द्वितीय परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और प्रतिमा-पूजा, व्याकुलता और ईश्वर-लाभ)

मणि पंचवटी और कालीबाड़ी के अन्यान्य स्थानों पर एकाकी विचरण कर रहे हैं। ठाकुर कहते हैं— 'थोड़ा साधन करने से ईश्वर-दर्शन किया जाता है। मणि क्या वही सोच रहे हैं? और तीव्र वैराग्य की बात। और माया को पहचान लेने पर वह अपने-आप पलायन कर जाती है।'

समय प्राय: साढ़े तीन का है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण के कक्ष में मणि फिर बैठे हैं। ब्राउटन इंस्टिच्यूशन से एक शिक्षक कई-एक छात्रों को लेकर ठाकुर के दर्शन करवाने आए हैं। ठाकुर उनके संग में बातें कर रहे हैं। शिक्षक बीच-बीच में कोई-कोई प्रश्न करते हैं। प्रतिमापूजा के सम्बन्ध में बातें हो रही हैं।

श्रीरामकृष्ण *(शिक्षक के प्रति)*— प्रतिमापूजा में दोष क्या है? वेदान्त कहता है, जहाँ पर 'अस्ति, भाति और प्रिय' है, वहाँ पर ही उन का प्रकाश है। जभी तो उनके अतिरिक्त कोई वस्तु ही नहीं है।

"और फिर देखो, छोटी लड़कियाँ गुड़िया का खेल कब तक करती हैं? जब तक विवाह नहीं होता, और जब तक पति-सहवास नहीं करतीं। विवाह होने पर गुड़िया आदि पिटारी में उठाकर रख देती हैं। ईश्वर-लाभ हो जाने पर प्रतिमा-पूजा का क्या प्रयोजन?"

मणि की ओर देख कर कह रहे हैं—

"अनुराग हो जाने पर ईश्वर-लाभ होता है। खूब व्याकुलता चाहिए। खूब व्याकुलता होने से समस्त मन उनमें चला जाता है।"

(बालक का विश्वास व ईश्वरलाभ—गोविन्दगोस्वामी— जटिल बालक)

"किसी की एक लड़की थी। खूब छोटी उम्र में वह विधवा हो गई थी। पति का मुख कभी भी देखा नहीं था। और लड़कियों के पति आते देख कर वह एक दिन बोली, 'पिता जी, मेरे पति कहाँ हैं?' उसके पिता ने कहा, 'तुम्हारे

पति गोविन्द हैं; उनको पुकारने पर वे दिखाई देते हैं।' लड़की यह बात सुनकर घर में जाकर द्वार बन्द करके गोविन्द को पुकारने और रोने लगी; कहती, 'गोबिन्द! तुम आओ, मुझे दर्शन दो, तुम क्यों नहीं आते?' छोटी लड़की का वैसा वह रोदन सुनकर भगवान रह नहीं सके; उसको दर्शन दिया।

"बालक-जैसा विश्वास! बालक माँ को देखने के लिए जैसा व्याकुल होता है, वैसी व्याकुलता। ऐसी व्याकुलता हो गई तो अरुण उदय हो गया। उसके बाद सूर्य उदय होगा ही। इस व्याकुलता के अनन्तर ईश्वर-दर्शन।

"जटिल बालक की कहानी है। वह पाठशाला जाया करता था। थोड़े-से वन के रास्ते से पाठशाला जाना पड़ा करता था; उसे भय लगता। माँ से कहने पर माँ ने कहा, तुझे भय कैसा? तू मधुसूदन को पुकारना। उस लड़के ने पूछा, मधुसूदन कौन है? माँ ने कहा, मधुसूदन तेरे दादा हैं। तब अकेले जाते-जाते ज्यों ही भय लगने लगा, त्यों ही उसने पुकारा, 'दादा मधुसूदन'। कोई कहीं नहीं। तब ऊँचे स्वर से पुकारने लगा, 'कहाँ हो दादा मधुसूदन, तुम आओ, मुझे बड़ा भय लग रहा है।' भगवान तब रह नहीं सके। आकर बोले, 'यहीं तो मैं हूँ, तुझे भय कैसा?' ऐसा कह कर संग-संग जाकर पाठशाला के मार्ग तक पहुँचा दिया और कहा, 'तू जब पुकारेगा, मैं आऊँगा। भय कैसा?' ऐसा बालक का विश्वास! ऐसी व्याकुलता!

"एक ब्राह्मण के घर पर ठाकुर-सेवा थी। एक दिन किसी कार्यवश उसे कहीं और जाना था। छोटे लड़के से कह गया, तू आज ठाकुर को भोग दे दियो; ठाकुर को खिला दियो। उस लड़के ने भगवान को भोग दिया। किन्तु भगवान तो चुप बैठे हैं। बात भी नहीं करते और खाते भी नहीं। लड़के ने काफी देर तक बैठकर देखा कि भगवान तो उठते ही नहीं हैं। उसे निश्चय था कि भगवान आकर आसन पर बैठकर खाएँगे। तब वह बार-बार कहने लगा, भगवान आओ, खाओ, बड़ी देर हो गई है; मैं और नहीं बैठ सकता। भगवान बातें भी नहीं करते। बच्चे ने रोना आरम्भ कर दिया। कहने लगा, भगवान! पिता जी तुम को खिलाने के लिए कह गए हैं; तुम क्यों नहीं आते? क्यों मेरे पास नहीं खाते? व्याकुल होकर ज्यों ही थोड़ी देर रोया, भगवान हँसते-हँसते आकर आसन पर बैठ कर खाने लगे। भगवान को खिलाकर

जब वह ठाकुर-घर से गया, घर के लोगों ने कहा, भोग हो गया? वह सब कुछ नीचे ले आ। लड़के ने कहा, हाँ हो गया है; भगवान सब खा गए हैं। वे बोले— यह क्या रे! लड़के ने सरल बुद्धि से कह दिया, क्यों, भगवान तो खा गए हैं! तब ठाकुर-घर में जाकर देख कर सब अवाक् रह गए!''

सन्ध्या होने में देर है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण नहबत खाने की दक्षिण-बगल में खड़े हुए मणि के साथ बातें कर रहे हैं। सम्मुख गंगा। शीतकाल, ठाकुर के शरीर पर गल-कपड़ा है।

श्रीरामकृष्ण— पंचवटी के कमरे में सोओगे?

मणि— नहबत खाने के ऊपर का कमरा क्या नहीं देंगे?

ठाकुर खजांची को मणि की बात कहेंगे। रहने का कमरा एक वे बता देंगे। उसको नहबत के ऊपर का पसन्द हुआ है। वे कवित्वप्रिय हैं। नहबत में रहने से आकाश, गंगा, चाँद का आलोक, फूलों के वृक्ष इत्यादि दिखाई देते हैं।

श्रीरामकृष्ण— देंगे क्यों नहीं? तथापि पंचवटी वाले कमरे का इसलिए कहता हूँ कि वहाँ पर बहुत हरिनाम और ईश्वर-चिन्तन हुआ है।

तृतीय परिच्छेद

प्रयोजन (End of Life)— ईश्वर को प्यार करना

ठाकुर श्रीरामकृष्ण के कमरे में धूना दे दिया गया। छोटी खाट पर बैठे हुए ठाकुर ईश्वर-चिन्तन कर रहे हैं। मणि जमीन पर बैठे हैं। राखाल, लाटु, रामलाल— ये लोग भी कमरे में हैं।

ठाकुर मणि से कहते हैं, बात तो विशेष यही है—

उनकी भक्ति करना, उनको प्यार करना।

रामलाल को गाने के लिए कहा। वे मधुर कण्ठ से गाना गा रहे हैं। ठाकुर प्रत्येक गाने का आरम्भ पकड़वा रहे हैं।

ठाकुर के कहने पर रामलाल पहले 'श्री गौरांग का संन्यास' गाते हैं—

कि देखिलाम रे, केशव भारतीर कुटीरे,
अपरूप ज्योति, श्री गौरांग मूरति, दुनयने प्रेम बहे शतधारे,
गौर मत्तमातंगेर प्राय, प्रेमावेशे नाचे गाये,
कभु धूलाते लुटाय, नयन जले भासे रे,
कांदे आर बोले हरि, स्वर्गमर्त्त्य भेद करि, सिंहरवे रे;
आबार दन्ते तृण लये, कृतांजलि होये,
दास्य मुक्ति याचेन बारे बारे।

मुड़ाय चाँचर केश, धरेछेन योगीर वेश,
देखे भक्ति प्रेमावेश, प्राण केंदे उठे रे;
जीवेर दु:खे कातर होये,
एलेन सर्वस्व त्यजिये प्रेम बिलाते रे;
प्रेमदासेर वांछा मने, श्री चैतन्य चरणे,
दास होये बेड़ाइ द्वारे द्वारे।

[भावार्थ— केशव भारती की कुटीर में मैंने कैसी अपूर्व ज्योतिर्मय श्री गौरांग की मूर्त्ति देखी जिसके दोनों नयनों से शतधाराओं में प्रेम बहता है। मस्त हाथी की तरह गौरांग नाचते हैं, गाते हैं और कभी धूल में, नयन-जल में बहते हुए-से, लोटते हैं। वे सिंह-रव से स्वर्गलोक और मर्त्यलोक का भेदन करके रोते हुए हरि को पुकार रहे हैं। फिर दाँतों में तृण लेकर, बद्धांजलि हो, बार-बार दास की मुक्ति माँगते हैं। घुँघराले बाल मुण्डवा कर योगीवेश धारण किया है। उनका भक्ति-प्रेमावेश देखकर प्राण रो उठते हैं रे! जीव के दु:ख में कातर होकर, सर्वस्व त्यागकर वे 'प्रेम' बाँटने आए हैं। प्रेमदास की मनोकामना है कि वह श्री चैतन्य-चरणों का दास बनकर द्वार-द्वार घूमे।]

रामलाल ने फिर गाया, शची रोकर कहती है
'निमाइ! केमन कोरे तोके छेड़े थाकबो?'
(निमाई! कैसे तुम्हें छोड़कर रहूँगी?)

ठाकुर बोले, "वही गाना गा तो।"

(1) आमि मुक्ति दिते कातर नाइ...*

---

* सम्पूर्ण गाने तथा भावार्थ के लिए इसी ग्रन्थ का पृष्ठ 72-73 देखिए।

(2) राधार देखा— कि पाय सकले,
राधार प्रेम कि पाय सकले।
अति सुदुर्लभ धन, ना करले आराधन,
साधन बिने से धन ए धने कि मेले
तुलाराशिमासे तिथि अमावस्या,
स्वाती नक्षत्रे जे बारि बरिषे,
अन्य-अन्य मासे जे बारि बरिषे,
से बारि कि बरिषे बरिषार जले।
युवती सकले शिशु लाए कोले,
आय चाँद बोले डाके बाहु तुले।
शिशु ताहे भुले, चन्द्र कि ताय भुले,
गगन छेड़े चाँद कि उदय होय भूतले।

[भावार्थ— राधा-जैसे दर्शन और राधा-जैसा प्रेम क्या सभी पाते हैं? वह तो अति दुर्लभ धन है। आराधना की नहीं; तो साधन बिना क्या यह धन मिलता है? तुला राशि में मास की अमावस्या तिथि को स्वाति नक्षत्र में जो जल बरसता है, अन्य मास में वैसा जल क्या बरसता है? सभी युवतियाँ शिशु को गोद लगा, बाहू उठा, 'आ-जा चाँद' कहकर पुकारती हैं। वे शिशु को भुलाए हैं पर इससे, चन्द्र क्या भूलता है? गगन छोड़ चाँद क्या भूतल पर उदित होता है?]

(3) नवनीरदवर्ण किसे गण्य श्यामचाँद रूप हे रे।*

ठाकुर रामलाल से फिर और कहते हैं, वही गाना गा— 'गौर निताई तोमरा दु'भाई।' रामलाल के संग में ठाकुर भी योग दे रहे हैं—

गौर निताई तोमरा दु'भाई, परम दयाल हे प्रभु
(आमि ताई शुने एसेछि हे नाथ)
आमि गियेछिलाम काशीपुरे,
आमाय कये दिलेन काशी विश्वेश्वरे,ओ से परब्रह्म शचीर घरे,
(आमि चिनेछि हे, परब्रह्म)।

---

* सम्पूर्ण गाने तथा भावार्थ के लिए इसी ग्रन्थ का पृष्ठ 49-50 देखिए।

आमि गियेछिलाम अनेक ठाँइ, किन्तु एमन दयाल देखि नाइ।
(तोमादेर मत)।

तोमरा ब्रजे छिले कानाइ, बलाइ, एखन नदे एसे होले गौर निताइ।
(से रूप लुकाए)।

ब्रजेर खेला छिलो दौड़ादौड़ि, एखन नदेर खेला धुलाय गड़ागड़ि।
(हरिबोल बोले हे) (प्रेमे मत्त होये)।

छिलो ब्रजेर खेला उच्चरोल, आज नदेर खेला केवल हरिबोल।
(ओहे प्राण गौर)।

तोमार सकल अंग गेछे ढाका, केवल आछे दूटि नयन बाँका।
(ओहे दयाल गौर)।

तोमार पतित पावन नाम शुने, बड़ भरसा पेयेछि मने।
(ओहे पतित पावन)।

बड़ आशा करे एलाम धेये, आमाय राखो चरण छाया दिये।
(ओहे दयाल गौर)।

जगाई मधाइ तरे गेछे, प्रभु सेइ भरसा आमार आछे।
(ओहे अधम-तारण)।

तोमरा नाकि आचण्डाले दाओ कोल, कोल दिए बोलो हरिबोल।
(ओहे परम करुण) (ओ कांगालेर ठाकुर)।

[भावार्थ— हे प्रभु, गौर और निताई तुम दोनों भाई परम दयालु हो। मैं काशी गया था। मुझे काशी के विश्वेश्वर ने कह दिया है, 'मैं नदिया की शची देवी के घर में आया हूँ।' हे प्रभु, मैंने तुम्हें पहचान लिया है। मैं अनेक जगह गया, किन्तु तुम्हारे जैसा दयालु देखा नहीं। तुम ब्रज के कन्हाई, बलाई थे; अब वह रूप छुपाकर नदिया में गौर-निताई हुए हो। ब्रज का खेल था दौड़ा-दौड़ी; अब नदिया का खेल है हरिबोल बोलकर, प्रेम में मत्त होकर धूल में लोटपोट होना। ब्रज का खेल था उच्चरोल; आज नदिया का खेल है केवल हरिबोल। ओ दयालु गौरांग, तुम्हारा सारा अंग तो ढक गया, किन्तु दो बांके नयन बचे हैं। ओ पतितपावन, तुम्हारा पतितपावन नाम सुनकर मन में बड़ा भरोसा हुआ। बड़ी आशाओं से देहली पर आया हूँ, ओ दयालु गौरांग! मुझे अपनी चरण-छाया के नीचे रखना। जगाई-मधाई तर गए हैं; ओ अधमतारण प्रभु, मुझे भी वही भरोसा है। तुम चाण्डाल तक को गोद में बिठाते हो और गोद में बिठाकर ओ परम करुण, कंगालों के ठाकुर, 'हरिबोल' बोलते हो।]

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण के भक्तों का गोपन में साधन)

नहबतखाने के ऊपर के कमरे में मणि अकेले बैठे हैं। रात काफी हो गई है। आज अग्रहायण पूर्णिमा है। आकाश, गंगा, कालीबाड़ी-मन्दिर-शीर्ष, उद्यानपथ, पंचवटी— सब चाँद के आलोक में तैर रहे हैं! मणि एकाकी ठाकुर श्रीरामकृष्ण का चिन्तन कर रहे हैं।

रात प्रायः तीन हो गए, वे उठ गए। उत्तरास्य होकर पंचवटी की ओर जाते हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने पंचवटी की बात कही है। नहबतखाना फिर अच्छा नहीं लग रहा। वे पंचवटी के कमरे में रहेंगे, यह स्थिर किया।

चारों ओर नीरव। रात को ग्यारह बजे ज्वार आई थी। बार-बार जल का शब्द सुनाई देता है। वे पंचवटी की ओर अग्रसर हो रहे हैं! दूर से एक शब्द सुना। कोई पंचवटी के वृक्षमण्डप के भीतर से जैसे आर्त्तनाद करके पुकार रहा है, 'कहाँ पर हो दादा मधुसूदन'!

आज पूर्णिमा। चारों ओर वटवृक्ष की शाखा-प्रशाखाओं के मध्य से चाँद का आलोक फटा पड़ रहा है।

और भी आगे बढ़े। थोड़ी दूर से देखा पंचवटी के मध्य ठाकुर के एक भक्त बैठे हैं। वे ही निर्जन में अकेले पुकार रहे हैं, 'कहाँ पर हो दादा मधुसूदन!' मणि निःशब्द देख रहे हैं।

त्रयोदश खण्ड

दक्षिणेश्वर में प्राणकृष्ण, मास्टर आदि भक्तों के संग

प्रथम परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण के संग में प्राणकृष्ण, मास्टर, राम, गिरीन्द्र, गोपाल)

आज शनिवार, 24 चैत्र, अंग्रेज़ी 5 अप्रैल, 1884 ईसवी, प्रात:काल आठ का समय। मास्टर दक्षिणेश्वर जाकर देखते हैं, श्रीरामकृष्ण सहास्यवदन, कमरे में छोटी खाट के ऊपर बैठे हैं। जमीन पर कई भक्त बैठे हैं, उनमें प्राणकृष्ण मुखोपाध्याय हैं।

प्राणकृष्ण जनाइयों के मुखर्जियों के वंश से उत्पन्न हैं। कलकत्ता में श्यामपुकुर में घर है। मैकंजी लायल के एक्सचेंज नामक नीलामघर के कार्याध्यक्ष हैं। वे हैं तो गृहस्थ, किन्तु वेदान्त-चर्चा में उनकी बड़ी रुचि है। परमहंसदेव की बड़ी भक्ति करते हैं और बीच-बीच में आकर उनके दर्शन करते हैं। इसी बीच एक दिन अपने घर ठाकुर को ले जाकर महोत्सव किया था। वे बागबाजार के घाट पर प्रतिदिन प्रात: गंगास्नान करते हैं और नौका की सुविधा होते ही सीधे दक्षिणेश्वर आकर ठाकुर का दर्शन किया करते हैं। आज इसी प्रकार नौका भाड़े पर की थी। नौका के किनारे से ज़रा-सा अग्रसर होते ही तरंगें उठने लगीं। मास्टर बोले, 'मुझे उतार दीजिए।' प्राणकृष्ण और उनके मित्र बहुत समझाने लगे, किन्तु उन्होंने किसी तरह भी नहीं सुना; बोले, 'मुझे तो उतार ही देना होगा, मैं

पैदल दक्षिणेश्वर चला जाऊँगा।' लाचार होकर प्राणकृष्ण ने उनको उतार दिया।

मास्टर ने पहुँच कर देखा कि वे लोग कुछ क्षण पहले ही पहुँचे हैं और ठाकुर के संग में सद्-आलाप कर रहे हैं। ठाकुर को भूमिष्ठ होकर प्रणाम करके वे एक ओर बैठ गए।

(अवतारवाद— Humanity and Divinity of Incarnation)

श्रीरामकृष्ण *(प्राणकृष्ण के प्रति)*— किन्तु मनुष्य में उनका अधिक प्रकाश है। यदि कहो वह अवतार कैसे हुआ, जिनमें भूख-प्यास इत्यादि जीव के धर्म बहुत-से हैं, शायद रोग-शोक भी हैं; इसका उत्तर यही है कि 'पंचभूतेर फाँदे ब्रह्म पड़े काँदे।' (पंचभूत के बन्धन, ब्रह्म करे क्रन्दन)।

"देखो ना, रामचन्द्र सीता के शोक में कातर होकर क्रन्दन करने लगे। और एक बार हिरण्याक्ष-वध करने के लिए वराह अवतार लिया। हिरण्याक्ष-वध हो गया, किन्तु नारायण स्वधाम जाना नहीं चाहते। वराह बने हुए हैं। कितने ही बच्चे हो गए हैं। उन्हें लेकर एक प्रकार से खूब आनन्द में रह रहे हैं। देवताओं ने कहा, यह क्या हुआ! भगवान तो आना ही नहीं चाहते। तब सब के सब शिव के पास गए और समस्त बात निवेदन की। शिव ने जाकर उनसे काफी जिद्दम-जिद्दी की, वे बाल-बच्चों को स्तन पिलाने लग गए। *(सब का हास्य)*। तब शिव ने त्रिशूल लाकर शरीर ही फाड़ दिया। नारायण ही-ही करके हँसे, तब स्वधाम में चले गए।"

प्राणकृष्ण *(ठाकुर के प्रति)*— महाशय! अनाहत शब्द क्या है?

श्रीरामकृष्ण— अनाहत शब्द सर्वदा ही ऐसे ही हो रहा है। प्रणव की ध्वनि! परब्रह्म से होकर आ रही है, योगी लोग सुन लेते हैं। विषय-आसक्त जीव नहीं सुन पाता। योगी जान लेते हैं, वह ध्वनि एक ओर नाभि से उठती है और फिर वही एक ओर उसी क्षीरोदशायी परब्रह्म से उठती है।

(परलोक के सम्बन्ध में श्रीयुक्त केशवसेन का प्रश्न)

प्राणकृष्ण— महाशय! परलोक कैसा है ?

श्रीरामकृष्ण— केशवसेन ने भी यह बात पूछी थी। जब तक मनुष्य अज्ञान में रहता है, अर्थात् जब तक ईश्वरलाभ नहीं होता, तब तक जन्म ग्रहण करना पड़ता है। किन्तु ज्ञानलाभ हो जाने पर फिर इस संसार में आना नहीं पड़ता। पृथ्वी पर या अन्य किसी लोक में नहीं जाना पड़ता।

"कुम्हार हण्डियों को धूप में सुखाने रखता है। देखा नहीं, उनमें पक्की हण्डियाँ भी होती हैं, कच्ची हण्डियाँ भी होती हैं। गाय आदि के चलने से कुछ हण्डियाँ फूट जाती हैं। पक्की हण्डियाँ फूट जाने पर कुम्हार उन्हें फेंक देता है, उनके द्वारा कोई कार्य नहीं होता। कच्ची हण्डियाँ टूट जाने पर कुम्हार उन्हें फिर जमा कर लेता है, लेकर चक्के पर उसी ढेले को फिर बनाता है और नूतन हण्डी तैयार हो जाती है। अतएव जब तक ईश्वर-दर्शन नहीं होता, तब तक कुम्हार के हाथों में जाना ही होगा, अर्थात् इस संसार में लौट-लौट कर आना ही होगा।

"उबला हुआ धान बोने से क्या होगा ? फिर पौधा नहीं होता। मनुष्य के ज्ञानाग्नि से सिद्ध हो जाने पर उसके द्वारा फिर नूतन सृष्टि नहीं होती, वह मुक्त हो जाता है।"

(वेदान्त और अहंकार— वेदान्त और 'अवस्थात्रय साक्षी'— ज्ञान और विज्ञान)

"पुराण मत में भक्त एक है, भगवान एक है; मैं एक हूँ, तुम एक हो; शरीर मानो एक कसोरा है; इस शरीर के बीच मन, बुद्धि, अहंकार रूपी जल है; ब्रह्म सूर्यस्वरूप हैं। वे इस जल में प्रतिबिम्बित हो रहे हैं। भक्त इसीलिए ईश्वरी रूप दर्शन करता है।

"वेदान्त (वेदान्त-दर्शन) के मत में ब्रह्म ही वस्तु है, और समस्त माया, स्वप्नवत्, अवस्तु है। अहंरूपी एक लाठी सच्चिदानन्द-सागर के बीच में पड़ी हुई है।

(मास्टर के प्रति)— ''तुम इसे ध्यान से सुनो— अहं रूप उस लाठी को उठा लेने पर एक ही सच्चिदानन्द समुद्र है। 'अहं' लाठी रहने से दो दिखलाई देता है, एक हिस्सा यह जल, एक हिस्सा वह जल। ब्रह्मज्ञान होने पर समाधिस्थ हो जाता है। तब यह अहं मिट जाता है।

''इसीलिए लोक-शिक्षा के लिए शंकराचार्य ने 'विद्या का मैं' रखा हुआ था।''

(प्राणकृष्ण के प्रति)— ''किन्तु ज्ञानी के लक्षण हैं। कोई मन में सोचता है मुझे ज्ञान हो गया है। ज्ञानी का लक्षण क्या है? ज्ञानी किसी का अनिष्ट नहीं कर सकता। बालकवत् हो जाता है। लोहे की तलवार को यदि पारस पत्थर स्पर्श कर लेता है तो वह खड्ग सोना बन जाती है। सोने से हिंसा का कार्य नहीं होता। बाहिर से सम्भवतः वह दिखाए कि क्रोध है या अहंकार है, किन्तु वस्तुतः ज्ञानी में यह सब कुछ नहीं रहता।

''दूर से जली हुई रस्सी देखने से बिल्कुल लगता है कि रस्सी का एक टुकड़ा पड़ा हुआ है। किन्तु निकट आकर एक फूँक मारने से उड़ जाता है। केवल क्रोध का आकार, अहंकार का आकार होता है। किन्तु वास्तविक क्रोध नहीं, अहंकार नहीं।

''बालक में दृढ़ता नहीं रहती। अभी घरौंदा बनाता है, कोई हाथ लगाता है तो धेइ-धेइ करके नाचते हुए रोना आरम्भ कर देता है। और फिर अपने-आप सब तोड़ डालता है। और फिर इतनी जिद्द करता है कि यह कपड़ा 'मेरे पिता जी ने दिया है, मैं नहीं दूँगा।' और फिर एक गुड़िया देने पर भूल जाता है, उस कपड़े को छोड़कर चला जाता है।

''यह सब ज्ञानी के लक्षण हैं। सम्भवतः घर में खूब ऐश्वर्य है, छवियाँ, गाड़ी-घोड़ा आदि; किन्तु सब छोड़ कर काशी चला जाता है।

''वेदान्त-मत में जाग्रत अवस्था भी कुछ नहीं है। एक लकड़हारा स्वप्न देख रहा था। किसी के उसकी नींद तोड़ने पर वह विरक्त होकर बोल उठा, 'तूने क्यों मेरी निद्रा तोड़ी है? मैं राजा बन गया था, सात लड़कों का बाप बन गया था। बेटों ने विद्या, अस्त्र-विद्या सब सीख ली थी। मैं सिंहासन

पर बैठा राज्य कर रहा था। क्यों तूने मेरा सुख का संसार तोड़ दिया?' वह व्यक्ति बोला, 'वह तो स्वप्न था, उसमें क्या रखा है?' लकड़हारे ने कहा, 'हट! तू समझता नहीं, मेरा लकड़हारा होना जितना सत्य है, स्वप्न में राजा होना भी उतना ही सत्य है।' लकड़हारा होना यदि सत्य हो तो स्वप्न में राजा होना भी सत्य है।''

प्राणकृष्ण ज्ञान-ज्ञान करते रहते हैं, तभी लगता है ठाकुर ज्ञानी की अवस्था बोल रहे थे। अब विज्ञानी की अवस्था बता रहे हैं। इस से क्या वे अपनी निज की अवस्था को इंगित कर रहे हैं?

श्रीरामकृष्ण— 'नेति-नेति' करते हुए आत्मा को पकड़ने का नाम ज्ञान है। नेति-नेति विचार करके समाधिस्थ होकर आत्मा को पकड़ा जाता है।

''विज्ञान क्या है— यही तो विशेष रूप से जानना। किसी ने दूध सुना है, किसी ने दूध देखा है, किसी ने दूध पिया है। जिसने केवल सुना है, वह अज्ञानी है। जिसने देखा है, वह ज्ञानी है; जिसने पिया है, उसका ही विज्ञान है अर्थात् विशेष रूप से जान लिया है। ईश्वर-दर्शन करके उनके साथ आलाप किया है, मानो वे आत्मीय हैं; इसका ही नाम है विज्ञान।

''प्रथम 'नेति-नेति' करना चाहिये! वे पंचभूत नहीं, इन्द्रिय नहीं, मन, बुद्धि, अहंकार नहीं, वे सब तत्त्वों के अतीत हैं। छत पर चढ़ना है तो सारी सीढ़ियाँ एक-एक करके त्याग करनी पड़ती हैं। सीढ़ियाँ तो छत नहीं हैं। किन्तु छत के ऊपर पहुँच कर पता लगता है कि जिन वस्तुओं से छत तैयार हुई है— ईंट, चूना, सुरखी, उन्हीं वस्तुओं से ही सीढ़ी भी बनी है। जो परब्रह्म हैं, वे ही यह जीव जगत हुए हैं। चौबीस तत्त्व हुए हैं। जो आत्मा हैं, वे ही पंचभूत हुए हैं। मिट्टी इतनी सख्त क्यों है, यदि आत्मा से ही हुई है? उनकी इच्छा से सब हो सकता है। शोणित-शुक्र से ये हाड़-माँस हुए हैं। समुद्र-फेण कितना सख्त होता है।''

(क्या गृहस्थी का विज्ञान हो सकता है ? साधना चाहिए)

"विज्ञान हो जाने पर संसार में भी रह लेता है। तब अच्छा अनुभव हो जाता है कि वे ही जीव-जगत हुए हैं, वे संसार के बिना नहीं हैं। रामचन्द्र ने जब ज्ञान प्राप्त करने पर कहा, 'मैं गृहस्थ में नहीं रहूँगा', दशरथ ने तब समझाने के लिए वशिष्ठ को उनके पास भेज दिया था। वशिष्ठ बोले, 'राम! यदि गृहस्थ ईश्वर के बिना है, तब तो तुम त्याग कर सकते हो।' रामचन्द्र चुप हो गए। वे अच्छी तरह जानते हैं कि ईश्वर के बिना कुछ भी नहीं है। उनका फिर संसार त्याग नहीं हुआ।

(प्राणकृष्ण के प्रति) बात तो यही है, दिव्य चक्षु चाहिएँ। मन शुद्ध होने से ही वह चक्षु हो जाता है। देखो ना, कुमारी-पूजा। टट्टी-पिशाब से भरी कन्या, उसको बिल्कुल ठीक देखा था साक्षात् भगवती। एक ओर स्त्री, एक ओर लड़का, दोनों जनों को ही स्नेह करता है, किन्तु भिन्न भाव में। तभी तो कहते हैं, मन की ही बात है। शुद्ध मन में एक और प्रकार का भाव हो जाता है। उसी मन को पाकर संसार में ईश्वर-दर्शन होता है; इसीलिये साधना चाहिए।

"साधना चाहिए।... यही जानना कि स्त्री-सम्बन्ध से सहज ही आसक्ति हो जाती है। स्त्री स्वभावत: ही पुरुष को चाहती है। पुरुष स्वभावत: ही स्त्री को चाहता है— जभी दोनों शीघ्र ही गिर जाते हैं।

"किन्तु गृहस्थी में उसकी बड़ी सुविधा है। विशेष आवश्यकता होने पर अपनी स्त्री के साथ सहवास कर लिया।
(सहास्य) "मास्टर, हँसते क्यों हो?"

मास्टर *(स्वगत)*— संसारी लोगों से एकदम समस्त त्याग हो नहीं सकेगा। इस कारण ठाकुर यहाँ तक की ही अनुमति दे रहे हैं। सोलह आना ब्रह्मचर्य क्या गृहस्थी में रहकर बिल्कुल असम्भव है?

हठयोगी का प्रवेश।

पंचवटी में कोई हठयोगी कई दिन से हैं। वे केवल दूध पीते हैं तथा अफीम लेते हैं, और हठयोग करते हैं, भात-वात नहीं खाते। अफीम

और दूध के लिए पैसे का अभाव है। ठाकुर जब पंचवटी के निकट गए थे, तब हठयोगी के साथ आलाप करके आए थे। हठयोगी ने राखाल से कहा, 'परमहंसजी से कह कर किसी प्रकार मेरे लिए कुछ व्यवस्था करवा दी जाए' ठाकुर ने कहलवा दिया था, 'कलकत्ता के बाबुओं के आने पर कहकर देखूँगा।'

हठयोगी *(ठाकुर के प्रति)*— आपने राखाल से क्या बोला था ?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, कहा था, देखूँगा यदि कोई बाबू कुछ दें। किन्तु कहाँ— *(प्राणकृष्ण के प्रति)* लगता है तुमलोग इन्हें like (पसन्द) नहीं करते ?

प्राणकृष्ण चुप रहे। हठयोगी का प्रस्थान।

ठाकुर की बातें चलने लगीं।

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण और सत्य वाणी)

श्रीरामकृष्ण *(प्राणकृष्णादि भक्तों के प्रति)*— फिर गृहस्थी में रहने के लिए सत्य वाणी पर दृढ़ता चाहिए। सत्य से ही भगवान को प्राप्त किया जाता है। मेरी सत्य वाणी की दृढ़ता अब फिर भी कुछ कम हो गई है, पहले भारी दृढ़ता थी। यदि कहता, 'नहाऊँगा', गंगा में उतरना हो गया, मंत्रोच्चारण हो गया, सिर पर थोड़ा जल भी डाल लिया, तब भी सन्देह हो जाता, शायद पूरा नहाना नहीं हुआ ! अमुक स्थान पर हगने जाऊँगा, तो उसी स्थान पर ही जाना होगा। कलकत्ता में राम* के घर गया था। कह डाला, पूरी नहीं खाऊँगा। जब खाने को दिया तब तो फिर भूख लग गई थी। किन्तु कह दिया था, पूरी (लुचि) नहीं खाऊँगा, तब मिठाई के द्वारा ही पेट भरना था। *(सब का हास्य)*।

"अब तो तब भी दृढ़ता कुछ-कुछ कम हो गई है। बाह्य आया नहीं है, कह दिया था जाऊँगा, क्या होगा ? राम से पूछा। वह बोला, जाने की

* राम = राम चैटर्जी, ठाकुरबाड़ी के श्री श्री राधाकान्त-मन्दिर के सेवक।

जरूरत नहीं। तब विचार किया, सब ही तो नारायण हैं। राम भी नारायण हैं। उसकी बात ही फिर क्यों न मानूँ? हाथी चाहे है तो नारायण, किन्तु महावत भी नारायण है। महावत जब कह रहा है, हाथी के पास मत जाओ, उस समय तो महावत की बात ही क्यों न सुनूँ? इस प्रकार विचार करके पहले वाली दृढ़ता अब कुछ-कुछ कम हो गई है।''

(पूर्वकथा— वैष्णवचरण को उपदेश— नरलीला में विश्वास करो)

''अब देख रहा हूँ, अब तो और एक अवस्था बदल रही है। अनेक दिन हुए, वैष्णवचरण ने कहा था, मनुष्य के भीतर जब ईश्वर-दर्शन होगा, तब पूर्ण ज्ञान होगा। अब देख रहा हूँ, वे ही हर एक रूप में घूम रहे हैं। कभी साधु रूप में, कभी छल रूप में— कहीं फिर खल रूप में। तभी कहता हूँ, साधु रूप नारायण, छल रूप नारायण, खल रूप नारायण, लुच्चा रूप नारायण।

''अब विचार होता है, सब को खिलाना किस प्रकार हो? सब को ही खिलाने की इच्छा होती है। जभी किसी एक व्यक्ति को यहाँ पर रख कर खिलाता हूँ।

प्राणकृष्ण *(मास्टर की ओर देख कर, सहास्य)*— अच्छा व्यक्ति है। *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)* महाशय, नौका से उतर कर ही छोड़ा।

श्रीरामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— क्या हुआ था?

प्राणकृष्ण— नौका में बैठे थे। ज़रा-सी तरंग देखकर बोले, उतार दो *(मास्टर के प्रति)*— कैसे आए?

मास्टर *(सहास्य)*— पैदल।

ठाकुर हँसने लगे।

(संसारी व्यक्ति का विषयकर्म-त्याग करना कठिन— पण्डित और विवेक)

प्राणकृष्ण *(ठाकुर के प्रति)*— महाशय! अब सोच रहा हूँ कर्म छोड़ दूँगा। कर्म करने लगने पर और कुछ नहीं होता। *(संगी बाबू को दिखला कर)*

इनको काम सिखा रहा हूँ, मैं छोड़ दूँगा तो ये काम करेंगे। अब किया नहीं जाता।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, बड़ा झंझट है। अब कुछ दिन निर्जन में ईश्वर-चिन्तन करना खूब अच्छा है। किन्तु बोलते तो हो, छोड़ोगे? काप्तेन ने भी यही बात कही थी। गृही व्यक्ति कहते हैं, किन्तु कर नहीं सकते।

''अनेक पण्डित हैं, ज्ञान की बातें करते हैं। मुख से ही बोलते हैं, काम में कुछ भी नहीं। जैसे गीध खूब ऊँचे पर उड़ता है, किन्तु नज़र मरघट पर अर्थात् वहीं कामिनी-कांचन के ऊपर, संसार के ऊपर आसक्ति। यदि सुनता हूँ कि पण्डित में विवेक-वैराग्य भी है, तब भय होता है; वह न हो तो वे कुत्ता-बकरी जैसे लगते हैं।

प्राणकृष्ण ने प्रणाम करके विदा ली और मास्टर से पूछा, 'आप चलेंगे?' मास्टर ने कहा, 'नहीं, आप जाएँ।' प्राणकृष्ण ने हँसते हुए कहा, और तुम जाओ! *(सब का हास्य)*।

मास्टर ने पंचवटी के निकट थोड़ा टहल कर, ठाकुर जिस घाट पर स्नान करते हैं, उसी घाट पर स्नान किया। तत्पश्चात् श्री भवतारिणी और श्री राधाकान्त के दर्शन किए और उन्हें प्रणाम किया। सोच रहे हैं, सुना था, ईश्वर निराकार हैं तो फिर क्यों प्रतिमाओं के सम्मुख प्रणाम? ठाकुर श्रीरामकृष्ण साकार देव-देवी मानते हैं, क्या इसीलिए? मैं तो ईश्वर के सम्बन्ध में न कुछ जानता हूँ, न समझता हूँ। ठाकुर जब मानते हैं, मैं नगण्य कौन? मानना ही चाहिए!

मास्टर भवतारिणी के दर्शन कर रहे हैं। देखा— बायें के दोनों हाथों में नरमुण्ड और तलवार है, दायें के दोनों में वर और अभय हैं। एक ओर भयंकरा और एक ओर माँ भक्तवत्सला। दोनों भावों का समावेश है। भक्त के निकट, अपने दीनहीन जीवों के पास माँ दयामयी! स्नेहमयी! और फिर यह भी सत्य है, माँ भयंकरा कालकामिनी! एक आधार में क्यों दोनों भाव हैं, माँ ही जानती हैं।

ठाकुर की यह व्याख्या मास्टर स्मरण कर रहे हैं और विचार कर

रहे हैं— सुना है, केशवसेन ने ठाकुर के पास काली को मान लिया था। क्या यही है "मृण्मय आधार में चिन्मयी देवी ?" केशव यह बात कहा करते थे।

(समाधिस्थ पुरुष [श्रीरामकृष्ण] को घटी-बाटी की खबर)

अब वे ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पास आकर बैठ गए। स्नान कर लिया है, देखकर ठाकुर ने उनको फलमूल आदि प्रसाद खाने को दिया। उन्होंने गोल बरामदे में बैठकर प्रसाद पाया। पानी पीने वाली जल की लुटिया बरामदे में ही रह गई। शीघ्रता से ठाकुर के निकट कमरे में बैठने लगे, ठाकुर बोले, लुटिया नहीं लाए ?

मास्टर— जी हाँ, लाता हूँ।

श्रीरामकृष्ण— वाह !

मास्टर अप्रस्तुत। बरामदे से लुटिया लाकर कमरे में रख दी।

मास्टर का घर कलकत्ता में है। वे घर में अशान्ति होने से श्यामपुकुर में किराए के घर में रहते हैं। उसी घर के पास कर्मस्थल है। उनके निजी मकान में उनके पिता और भाई आदि रहते हैं। ठाकुर की इच्छा है कि वे निजी मकान में जाकर रहें, क्योंकि संयुक्त परिवार में ईश्वर-चिन्तन करने की बहुत-सी सुविधाएँ हैं। यद्यपि ठाकुर बीच-बीच में इस प्रकार कहते रहते हैं, तथापि दुर्भाग्यवश वे लौट कर घर नहीं गए। आज ठाकुर ने वही बात फिर दोबारा उठाई।

श्रीरामकृष्ण— क्यों, अब तुम घर जाओगे ?

मास्टर— किसी तरह भी वहाँ पर तो मेरा मन जाने को नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— क्यों ? तुम्हारे पिता ने घर तोड़-फोड़ कर नया बना लिया है।

मास्टर— घर में मैंने खूब कष्ट पाया है। मेरा तो किसी भी प्रकार जाने को मन नहीं चाहता।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हें किसका भय है ?

मास्टर— सब का ही।

श्रीरामकृष्ण *(गम्भीर स्वर में)*— वह तुम्हारा जैसे नौका में चढ़ते हुए भय है!

ठाकुरों का भोग हो गया। आरती हो रही है और कांसर-घण्टे बज रहे हैं। कालीबाड़ी आनन्द से परिपूर्ण है। आरती का शब्द सुनकर कंगाल, साधु, फकीर— सब अतिथिशाला की ओर दौड़े आ रहे हैं। किसी के हाथ में शालपत्र है, किसी के हाथ में तैजसपत्र (धातु की थाली), लुटिया हैं। सब ने प्रसाद पाया। आज मास्टर ने भी भवतारिणी का प्रसाद पाया।

तृतीय परिच्छेद

(श्री केशवचन्द्र सेन और 'नवविधान'— 'नवविधान' में सार है)

ठाकुर प्रसाद ग्रहणान्तर थोड़ा विश्राम कर रहे हैं। तब राम, गिरीन्द्र और कई-एक भक्त आ गए। भक्तों ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम करके आसन ग्रहण किया।

श्रीयुक्त केशवचन्द्र सेन के 'नवविधान' की बात चल पड़ी।

राम *(ठाकुर के प्रति)*— महाशय, नवविधान से कुछ उपकार हुआ है, मुझे ऐसा नहीं लगता। केशवबाबू यदि असली होते तो शिष्यों की अवस्था ऐसी क्यों होती? मेरे मत में तो उनके भीतर कुछ भी नहीं है। जैसे ठीकरों को बजा कर घर में ताला देना है। लोग सोचते हैं खूब रुपया हो गया है, किन्तु भीतर ठीकर— बाहिर के लोग भीतर की खबर नहीं जानते।

श्रीरामकृष्ण— कुछ न कुछ सार तो है ही। वैसा न हो तो इतने लोग केशव को क्यों मानें? शिवनाथ को क्यों लोग नहीं पहचानते? ईश्वर की इच्छा न हो तो ऐसा नहीं होता।

"तो भी संसार त्याग बिना किए आश्चर्य का कार्य नहीं होता, लोग नहीं मानते। लोग कहते हैं यह गृही व्यक्ति है, यह स्वयं कामिनी-कांचन छिपकर भोग करता है; हम लोगों से कहता है, 'ईश्वर सत्य, संसार स्वप्नवत्, अनित्य।' सर्वत्यागी हुए बिना उसकी बात सब नहीं लेते। सांसारिक

(ऐहिक) जो हैं वे कोई-कोई ले सकते हैं। केशव का संसार था, अत: गृहस्थ के ऊपर मन भी था। गृहस्थी की तो रक्षा करनी ही पड़ेगी। तभी इतना लैक्चर देता था; किन्तु गृहस्थी खूब पक्की करके रख गया है। ऐसा जमाई! घर के भीतर गया था, बड़ी-बड़ी खाट! गृहस्थ करने लगो तो क्रमश: सब आ जुटता है। भोग की ही जगह तो है संसार।

राम— वह खाट और घर बंटवारे के समय केशवसेन को मिले थे; केशवसेन का हिस्सा। महाशय, कुछ भी कहिए, विजय बाबू ने बताया था, केशवसेन ने ऐसी बात विजय बाबू को कही है कि मैं क्राइस्ट और गौरांग का अंश हूँ, तुम कहो कि तुम अद्वैत हो। और फिर क्या कहा है, जानते हो? आप भी नवविधानी हो! *(ठाकुर का और सब का हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— क्या पता भई, मैं तो किन्तु नवविधान का अर्थ भी नहीं जानता! *(सब का हास्य)*।

राम— केशव के शिष्य कहते हैं, ज्ञान और भक्ति का सामंजस्य केशवबाबू ने किया है।

श्रीरामकृष्ण *(अवाक् होकर)*— यह कैसी बात भई! अध्यात्म (रामायण) में तब फिर क्या है? नारद रामचन्द्र का स्तव करने लगे, 'हे राम! वेद में जिस परब्रह्म की बात है, वह तुम हो। तुम्हीं मनुष्य-रूप में हमारे निकट रहे हो; तुम मनुष्य-रूप में हो; वस्तुत: तुम मनुष्य नहीं हो, वही परब्रह्म हो!' रामचन्द्र बोले, 'नारद! तुम्हारे ऊपर बड़ा प्रसन्न हूँ, तुम वर लो।' नारद बोले, 'राम! और क्या वर माँगूँ, अपने पादपद्मों में शुद्धा भक्ति दो। और अपनी भुवनमोहिनी माया में जैसे मुग्ध न करो।' अध्यात्म में केवल ज्ञान-भक्ति की ही बात है।

केशव के शिष्य अमृत की बात चली।

राम— अमृत बाबू किसी और ही प्रकार के हो गए हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, उस दिन बड़े बीमार-से देखे थे।

राम— महाशय! लैक्चर की बात सुनिए। जब खोल (मृदंग) का शब्द होता है, उसी समय बोलते हैं 'केशव की जय'। आपने कहा था कि ना, कि छोटे

खड़े पानी वाले गढ़े में दल बनता है। जभी एक दिन लैक्चर देते हुए अमृत बाबू बोले, साधु चाहे कहते हैं कि छोटे गढ़े में दल बनता है; किन्तु भाई, दल चाहिए, दल चाहिए। सच कहता हूँ, सच कहता हूँ, दल चाहिए ही! *(सब का हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण— यह क्या? छि:! छि: छि:! यह कैसा लैक्चर!

कोई-कोई कुछ प्रशंसा करना पसन्द करते हैं, यह बात उठी।

श्रीरामकृष्ण— निमाई-संन्यास का गीति नाटक (यात्रा-गान) हो रहा था केशव के घर, वहाँ मुझे भी ले गए थे। उस दिन देखा था, केशव और प्रताप को किसी ने कहा था, ये दोनों गौर-निताई हैं, प्रसन्न ने तब मुझ से पूछा तो फिर आप क्या हैं? देखा था, केशव देख रहे हैं, मैं क्या बोलता हूँ। मैंने कहा, 'मैं तुम्हारे दासों का दासानुदास, रेणु की रेणु।' केशव हँसकर बोले, 'ये पकड़ाई में नहीं आते।' ('इनि धोरा दैन ना।')

राम— केशव कभी-कभी कहते थे, आप जॉन दी बैपटिस्ट हैं।*

कोई भक्त— और फिर कभी-कभी कहते nineteenth century (उन्नीसवीं शताब्दी) के चैतन्यदेव आप हैं।

श्रीरामकृष्ण— इसका अर्थ क्या है?

भक्त— इस अंग्रेज़ी शताब्दी में चैतन्यदेव फिर दोबारा आए हैं; वे हैं आप।

श्रीरामकृष्ण *(अन्यमनस्क होकर)*— चलो, वह तो हुआ। अब यह हाथ कैसे ठीक हो, बताओ तो ज़रा? अब केवल यही चिन्ता करता हूँ, यह हाथ ठीक हो।

त्रैलोक्य के गाने की बात चली। त्रैलोक्य केशव के समाज में ईश्वर का नाम-कीर्त्तन करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— आहा! त्रैलोक्य का कैसा गाना!

राम— कैसा, ठीक-ठीक सब?

श्रीरामकृष्ण— हाँ ठीक-ठीक; वैसा न हो तो इतना खींचता क्यों है?

राम— आप का ही भाव लेकर सब गाने रचे हैं। केशवसेन उपासना के समय

---

* जॉन दी बैपटिस्ट = ईसा मसीह से कुछ ही पूर्व उनके प्रचारक सन्त।

उन्हीं भावों का वर्णन करते थे, और त्रैलोक्य बाबू उसी प्रकार गाना रच लेते थे। यही देखिए ना, वही गाना—

"प्रेमेर बाजारे आनन्देर मेला।
हरि भक्त संगे रसरंगे करिछेन कतो खेला॥"*

"आप भक्तों के संग आनन्द करते रहते हैं, यही देखकर ये समस्त गाने रचे हैं।"

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तुम मुझे और मत जलाना और फिर मुझ को क्यों फँसाते हो? *(सब का हास्य)*।

गिरीन्द्र— ब्राह्म भक्त कहते हैं, परमहंसदेव की faculty of organisation (दल चलाने की क्षमता) नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— इसका क्या अर्थ है?

मास्टर— आप दल चलाना नहीं जानते। आप की बुद्धि कम है, ऐसी बातें कहते हैं। *(सब का हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(राम के प्रति)*— अब बताओ, मेरा हाथ क्यों टूट गया? तुम खड़े होकर इसे लेकर एक लैक्चर दे दो। *(सब का हास्य)*।

(ब्राह्मसमाज, वैष्णवों और शाक्तों को साम्प्रदायिकता के सम्बन्ध में उपदेश)

"ब्रह्मज्ञानी लोग निराकार-निराकार कहते हैं, चलो कहें भी; आन्तरिक उनको पुकारने से ही हुआ। यदि आन्तरिक हो जाता है, वे तो हैं ही अन्तर्यामी, वे अवश्य जनवा-समझा देंगे कि उनका स्वरूप क्या है!

"तथापि यह कहना अच्छा नहीं है कि हमने जो समझा है वही ठीक है, तथा और लोग जो कहते हैं, सब गलत है। हम निराकार कहते हैं, अतएव

---

* प्रेम के बाजार में आनन्द का मेला लगा हुआ है। हरि भक्तों के संग रसरंग में कितना खेल कर रहे हैं!

वे निराकार हैं, वे साकार नहीं हैं। मैं साकार कहता हूँ, अतएव वे साकार हैं; वे निराकार नहीं। मनुष्य क्या उनकी इति कर सकता है?

''इस प्रकार से वैष्णवों और शाक्तों में आपस में द्वेष है। वैष्णव कहते हैं हमारा केशव, शाक्त कहते हैं हमारी भगवती, एकमात्र उद्धारकर्त्ता हैं।

''मैं वैष्णवचरण को सेजोबाबू के पास ले गया था। वैष्णवचरण वैरागी, खूब पण्डित हैं, किन्तु हैं कट्टर वैष्णव। इधर सेजोबाबू भगवती का भक्त है। सुन्दर बातें हो रही थीं, तभी वैष्णवचरण कह उठा, मुक्ति देने वाला एकमात्र कर्त्ता केशव हैं। सुनते ही सेजोबाबू का मुख लाल हो गया। बोले, 'शाला मेरा'! *(सब का हास्य)*। शाक्त कि ना! कहेगा नहीं? फिर मैं इधर वैष्णवचरण की देह दबा कर उसे सावधान करता हूँ।

''जितने भी व्यक्ति धर्म-धर्म करते हैं, देखता हूँ— यह इसके संग झगड़ा कर रहा है वह उसके संग झगड़ा कर रहा है। हिन्दु, मुसलमान, ब्रह्मज्ञानी, शाक्त, वैष्णव, शैव, सबका परस्पर झगड़ा है। यह बुद्धि नहीं है कि जिनको कृष्ण कहते हो, उनको ही शिव, उनको ही आद्याशक्ति कहा है; उनको ही ईसामसीह, उनको ही अल्लाह कहा है। एक राम, उनके ही हजार नाम।

''वस्तु एक, नाम अलग-अलग। सब ही एक वस्तु को माँग रहे हैं। तभी अलग स्थान, अलग पात्र, अलग नाम। एक तालाब के अनेक घाट हैं, हिन्दू लोग एक घाट से जल लेते हैं, कलसी में लेकर कहते हैं 'जल'। मुसलमान लोग और एक घाट से जल लेते हैं, चमड़े के डोल में लेकर वे कहते हैं 'पानी'। ईसाई और एक घाट से जल लेते हैं, वे कहते हैं 'वाटर'। *(सब का हास्य)*।

''यदि कोई कहे, नहीं, यह वस्तु तो जल नहीं, पानी है; या पानी नहीं, वाटर है; या वाटर नहीं, जल है; तब तो यह हँसी की बात ही है। तभी तो दलादलि, मनमुटाव, झगड़ा है; धर्म को लेकर लाठालाठी, मारामारी, काटाकाटी; ये सब अच्छे नहीं। सब ही उनके पथ पर जा रहे हैं, आन्तरिक होते ही, व्याकुलता होते ही, उनको प्राप्त कर लेता है।

(मणि के प्रति)— "तुम इस बात को सुनो, 'वेद, पुराण, तन्त्र— सब शास्त्रों में उनको ही माँगा है, और किसी को नहीं माँगा— उसी एक सच्चिदानन्द को। जिनको वेद में सच्चिदानन्द ब्रह्म कहा है, तन्त्र में उनको ही 'सच्चिदानन्द शिव' कहा है, उनको ही फिर पुराण में 'सच्चिदानन्द कृष्ण' कहा है।"

श्रीरामकृष्ण ने सुना है, राम घर में बीच-बीच में स्वयं पका कर खाते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मणि के प्रति)*— तुम भी क्या स्वयं पका कर खाते हो?

मणि— जी नहीं।

श्रीरामकृष्ण— देखो ना, थोड़ा गावा-घी डालकर खाना। शरीर और मन खूब शुद्ध बोध होंगे।

चतुर्थ परिच्छेद

(पिता धर्मः पिता स्वर्गः पिता हि परन्तपः)

राम की गृहस्थी की अनेक बातें हो रही हैं। राम के पिता परम वैष्णव हैं। घर में श्रीधर (श्री कृष्ण) की सेवा है। राम के पिता ने दूसरा विवाह किया था— राम की तब खूब अल्प वयस थी। पिता और विमाता राम के घर में ही थे; किन्तु विमाता के संग रहकर राम खुश नहीं थे। अब विमाता की उम्र चालीस वर्ष की है। विमाता को लेकर राम पिता के ऊपर भी कभी-कभी क्षोभ किया करते थे। आज वे ही सब बातें हो रही हैं।

राम— पिता जी तो बिगड़ गए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— सुना तुमने? पिता तो बिगड़ गए हैं और ये भले हैं।

राम— उनके (विमाता के) घर में आते ही अशान्ति! कोई न कोई गड़बड़ होगी ही होगी। हमारी गृहस्थी टूट गई। तभी मैं कहता हूँ, वे पीहर में जाकर क्यों नहीं रहतीं?

गिरीन्द्र *(राम के प्रति)*— तुम अपनी स्त्री को भी उसी प्रकार पीहर में रखो

ना! *(सब का हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— यह क्या हण्डी, कलसी है जी? हण्डी एक जगह रहेगी और कसौरी एक जगह? शिव एक ओर, शक्ति एक ओर!

राम— महाशय! हम आनन्द में हैं, उनके आने से गृहस्थी भंग होती है।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, तब तुम उनके लिए एक अलग घर बना सकते हो, यह भी एक तरीका है। महीने-महीने सारा खर्च दोगे। बाप-माँ कितने बड़े गुरु हैं! राखाल ने मुझ से पूछा, क्या मैं बाप की झूठी थाली में खा लूँ? मैंने कहा, यह क्या बात रे? तुझे क्या हुआ है जो बाप की थाली में नहीं खाएगा?

"फिर भी एक बात है, जो सत् (real) हैं, वे उच्छिष्ट (जूठा) किसी को नहीं देते। यहाँ तक कि जूठा कुत्ते को भी नहीं दिया जाता।"

(गुरु की इष्टबोध में पूजा— असच्चरित्र हो तो भी गुरुत्याग निषेध)

गिरीन्द्र— महाशय! बाप-माँ यदि गुरुतर अपराध कर लें, कोई भयानक पाप कर लें?

श्रीरामकृष्ण— होने दो। माँ का द्विचारिणी होने पर भी त्याग नहीं करना। अमुक बाबुओं की गुरुपत्नी का चरित्र नष्ट होने पर उन्होंने कहा कि उनके लड़के को गुरु बना लिया जाए। मैंने कहा था, यह क्या भाई! ओल के छेड़े आलेर मुखी नेबे? (जमीकन्द को छोड़कर जमीकन्द की गाँठ लोगे?) खराब भी हो गया है तो क्या हुआ? तुम उनको इष्ट मानो। 'यद्यपि आमार गुरु शुँडी-बाड़ी जाए। तथापि आमार गुरु नित्यानन्द राय।' '(यद्यपि मेरा गुरु कलवार के घर जाता है तथापि मेरा गुरु है नित्यानन्द राय)'।

(चैतन्यदेव और माँ— मनुष्य का ऋण— Duties)

माँ-बाप क्या छोटी वस्तु हैं जी? वे प्रसन्न न रहें तो धर्म-टर्म कुछ भी नहीं होता। चैतन्यदेव तो प्रेम में पागल थे; तो भी संन्यास के पहले कितने दिनों तक माँ को समझाते रहे थे। कहा था, 'माँ! मैं बीच-बीच में आकर तुम्हें

मिल जाऊँगा।'

(मास्टर के प्रति तिरस्कार करते-करते)— "और तुम्हें कहता हूँ, बाप-माँ ने तुम्हें आदमी बना दिया, अब कितने बाल-बच्चे भी हो गए हैं, औरत लेकर निकल आया। माँ-बाप को धोखा देकर लड़के, पत्नी को साथ लेकर; बाउला वैष्णवी बनकर निकलता है। तुम्हारे पिता को अभाव नहीं है। यदि उनके पास अभाव होता तो कहता धिक्कार तुम्हें। *(सारी सभा स्तब्ध है।)*

"कितने सारे ऋण हैं। देवऋण, ऋषिऋण और फिर मातृऋण, पितृऋण, स्त्रीऋण। माँ-बाप का ऋण परिशोध बिना किए कोई कार्य नहीं होता।

"स्त्री का भी ऋण है। हरीश स्त्री का त्याग करके यहाँ पर रह रहा है। यदि उसकी स्त्री के लिए खाने के लिए न होता तो मैं कहता, दुराचारी साला!

"ज्ञान के पश्चात् उसी स्त्री को साक्षात् भगवती देखेगा। चण्डी में है 'या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता!' वे ही माँ हुई हैं।

"जितनी स्त्रियाँ देखो, सब वे ही हैं। तभी तो मैं वृन्दे (सेविका) को कुछ नहीं कह सकता। कोई-कोई शोलक (श्लोक) झाड़ता है, बड़ी-बड़ी बातें करता है, किन्तु व्यवहार और ही एक प्रकार का होता है। रामप्रसन्न* उसी हठयोगी के लिए किस प्रकार अफीम और दूध प्राप्त हो, यही करता फिर रहा है। और फिर कहता है, 'मनु' में साधु-सेवा की बात है। इधर बूढ़ी माँ को खाने को नहीं मिलता, वह स्वयं बाजार जाती है। यह देखकर मुझे गुस्सा आता है।"

(समस्त ऋण से कौन मुक्त है? संन्यासी और कर्त्तव्य)

"तब भी एक बात है। यदि प्रेमोन्माद हो जाता है तो फिर कौन बाप, कौन माँ, कौन स्त्री? ईश्वर पर इतना प्यार कि पागल की भाँति हो जाता है! उसका कोई कर्त्तव्य नहीं, समस्त ऋण से मुक्त! प्रेमोन्माद कैसा होता है? उस अवस्था के हो जाने पर जगत भूल जाता है। अपनी देह जो इतनी प्रिय वस्तु

---

* रामप्रसन्न = ऐडेंदा के भक्त श्री कृष्णकिशोर के पुत्र।

है, वह भूल जाती है। चैतन्यदेव का हुआ था। सागर में छलाँग लगा दी। यह सागर है, यह बोध नहीं। धरती पर बार-बार पछाड़ खाकर गिर जाते हैं— भूख नहीं, प्यास नहीं, निद्रा नहीं; शरीर नामक बोध ही नहीं।''

(श्रीयुक्त बूढ़े गोपाल* की तीर्थ-यात्रा— ठाकुर विद्यमान, तीर्थ क्यों ? अधर का निमन्त्रण—राम का अभिमान— ठाकुर मध्यस्थ)

ठाकुर 'हा चैतन्य!' कह उठे। *(भक्तों के प्रति)* 'चैतन्य' क्या, वही जो अखण्ड चैतन्य हैं। वैष्णवचरण कहा करता था, गौरांग इसी अखण्ड चैतन्य का एक बुलबुला है।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारी इच्छा क्या अब तीर्थ पर जाने की है ?

बूढ़े गोपाल— जी हाँ। थोड़ा घूम-घाम आऊँ।

राम *(बूढ़े गापाल के प्रति)*— ये कहते हैं, बहूदक के बाद कुटीचक। जो साधु अनेक तीर्थ करता है उसका नाम बहूदक। जिसकी भ्रमण करने की साध (हवस) मिट गई है, और एक स्थान पर स्थिर होकर आसन करके जो बैठ जाता है, उनको कहते हैं कुटीचक।

''और एक बात ये कहते हैं। एक पक्षी जहाज के मस्तूल पर बैठा था। जहाज गंगा जी से कब काले पानी में आ गया है, उसको होश नहीं। जब होश आया तो यह देखने के लिए कि धरती (सूखी) कहाँ पर है, उत्तर दिशा में उड़ गया। कहीं पर भी कूल (किनारा) नहीं, तब लौट आया। और फिर, थोड़ा-सा विश्राम करके दक्षिण की ओर गया। उस ओर भी कूल-किनारा नहीं। तब हाँफते-हाँफते लौट आया। और फिर इसी प्रकार थोड़ा-सा आराम करके पूर्व की ओर और फिर पश्चिम की ओर गया। जब देख लिया कहीं भी कूल-किनारा नहीं है, तब मस्तूल के ऊपर चुपचाप बैठ गया।''

श्रीरामकृष्ण *(बूढ़े गोपाल और भक्तों के प्रति)*— जब तक बोध रहता है कि

---

* बूढ़े गोपाल = इनका निवास स्थान था सींथी; ठाकुर के एक संन्यासी भक्त। ठाकुर इन्हें 'बूढ़े गोपाल' कह कर पुकारते थे।

ईश्वर वहाँ पर हैं, वहाँ पर हैं, तब तक अज्ञान है। जब यहाँ पर हैं, यहाँ पर हैं, तब ही ज्ञान।

''किसी ने तम्बाकू पीना था तो वह पड़ोसी के घर आग लेने गया। काफी रात हो गई थी। वे सो गए थे। काफी देर तक ठक-ठकाहट के बाद कोई द्वार खोलने उतरा। व्यक्ति को मिलने पर उसने पूछा, क्यों भाई, क्या बात है? वह बोला, और क्या बात है! मुझे तम्बाकू पीने का नशा है, पता तो है तुम्हें; आग लेनी है। तब वह व्यक्ति बोला, वाह तुम तो खूब हो! इतना कष्ट करके आना और द्वार पर इतनी ठक-ठकाहट। तुम्हारे हाथ में तो लालटेन है। *(सब का हास्य)*।

''जो चाहता है, वही पास है। अथच व्यक्ति नाना स्थानों पर घूमता है।''

ठाकुर क्या यह इशारा कर रहे हैं कि वे तो विद्यमान हैं, तीर्थ क्यों?

राम— महाशय! अब इसका मतलब समझा हूँ, गुरु क्यों किसी-किसी शिष्य को कहते हैं, चारों धाम करके आओ। जब एक बार घूम-फिर कर देख लेता है कि यहाँ पर जैसा है, वहाँ पर भी वैसा ही है, तब फिर लौटकर गुरु के पास आ जाता है। यह सब कुछ केवल गुरुवाक्य पर विश्वास होने के लिए ही है।

बातें थोड़ी रुकने पर ठाकुर राम का गुणगान करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— आहा! राम में कितने गुण हैं! कितनी भक्तों की सेवा और कितना पालन-पोषण! *(राम के प्रति)* अधर ने बताया था कि तुमने उसकी खूब खातिर की थी।

अधर का शोभाबाजार में घर है। ठाकुर का परम भक्त है। उनके घर पर चण्डी का गान हुआ था। ठाकुर और भक्त काफी जन उपस्थित थे। किन्तु राम को निमन्त्रण न देने की भूल अधर से हो गई थी। राम बड़ा अभिमानी है। उन्होंने लोगों के पास दुःख-प्रकाश किया था। इसीलिए अधर राम के घर गया था। उनसे भूल हुई है, इसीलिए दुःख-प्रकाश करने गए थे।

राम— वह अधर का दोष नहीं है, मुझे पता लग गया है, वह राखाल का दोष

है। राखाल के ऊपर भार था—

श्रीरामकृष्ण— राखाल का दोष नहीं देखते, गला दबाते ही दूध निकलता है!

राम— महाशय, कहते हैं, चण्डी का गान हुआ था।

श्रीरामकृष्ण— अधर को पता नहीं था। यही देखो ना, उस दिन यदुमल्लिक के घर मेरे संग गया था। मैंने चले आने के समय पूछा, तुम ने सिंहवाहिनी को प्रणामी नहीं दी? तो बोला, महाशय! मुझे पता नहीं था कि प्रणामी देनी चाहिए।

"और फिर यदि न भी कहा गया हो तो भी हरि-नाम में दोष क्या है? जहाँ पर हरि-नाम हो रहा हो, वहाँ पर बिना बुलाए भी जाया जा सकता है। निमन्त्रण का प्रयोजन नहीं।"

समाधिमग्न श्रीरामकृष्ण

चतुर्दश खण्ड

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में भक्तों के संग में—कलकत्ता में चैतन्य-लीला-दर्शन

प्रथम परिच्छेद

(राखाल, नारा'ण, नित्यगोपाल और छोटे गोपाल का संवाद)

आज रविवार, 21 सितम्बर, 1884 (छठा आश्विन, 1291 बंगाली साल)। श्रीरामकृष्ण के कमरे में अनेक भक्त एकत्रित हुए हैं। राम, महेन्द्र मुखर्जी, चुनिलाल, मास्टर इत्यादि अनेक भक्त आए हुए हैं।

चुनिलाल अभी-अभी वृन्दावन से लौटे हैं। वे और राखाल बलराम के साथ वहाँ गए थे। राखाल और बलराम अभी भी लौटे नहीं हैं। नित्यगोपाल भी वृन्दावन में हैं। ठाकुर चुनिलाल के साथ वृन्दावन की बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— राखाल कैसा है ?

चुनि— जी, वे अब अच्छे हैं।

श्रीरामकृष्ण— नित्यगोपाल नहीं आएगा ?

चुनि— अभी तक तो वहीं है, मैं मिलकर आया हूँ।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारी स्त्री आदि किस के संग में आ रही हैं ?

चुनि— बलराम बाबू ने कहा है, भले उपयुक्त व्यक्ति के संग में भेज दूँगा। नाम नहीं बताया।

ठाकुर, महेन्द्र मुखर्जी के संग नाराण की बातें करने लगे। नाराण स्कूल में पढ़ता है। आयु 16-17 वर्ष। ठाकुर के पास कभी-कभी आता है। ठाकुर बड़ा प्यार करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— खूब सरल, है ना?

'सरल'— यह बात बोलते-बोलते मानो आनन्द में परिपूर्ण हो गए।

महेन्द्र— जी हाँ, खूब सरल।

श्रीरामकृष्ण— उसकी माँ उस दिन आई थी। अभिमानी देखकर भय हुआ। पर उसने तुम लोग यहाँ पर आते हो, काप्तेन आता है, यह सब देखा। तब अवश्य सोचा होगा कि केवल नाराण आता है, यही नहीं है। *(सब का हास्य)*। मिश्री इस कमरे में थी। उसे देखकर बोली, सुन्दर मिश्री है! इसी से पता लग गया होगा कि यहाँ पर खाने-पीने की भी कोई असुविधा नहीं है।

"उनके सामने शायद बाबूराम से कहा था, नाराण के लिए और अपने लिए ये सन्देश रख दे। तब फिर गणि की माँ तथा अन्य स्त्रियों ने कहा, हे राम, वह माँ को नौका के भाड़े के लिए कितना तंग करता है! माँ मुझ से कहने लगीं कि आप नाराण से कहें ताकि वह विवाह कर ले। उस बात पर मैंने कहा, वह सब भाग्य की बात है। वैसी बात क्यों कहूँ? *(सब का हास्य)*।

"अच्छी तरह लिखता-पढ़ता नहीं है, तभी कहा, आप कहें ताकि अच्छी तरह पढ़ाई करे। मैंने कहा, 'पढ़ा कर रे।' तब फिर वह दोबारा बोली, 'ज़रा अच्छी तरह कहिए'।" *(सब का हास्य)*।

(चुनि के प्रति)— हाँ जी, गोपाल क्यों नहीं आता?

चुनि— खूनी दस्त लगे हैं।

श्रीरामकृष्ण— औषध खाता है?

(थिएटर और वेश्या का अभिनय
पूर्वकथा— बैलून-दर्शन और श्रीरामकृष्ण-उद्दीपन)

ठाकुर आज कलकत्ता में स्टार थियेटर में चैतन्य-लीला देखने जाएँगे।

(स्टार थियेटर का तब जहाँ पर अभिनय होता था, आजकल वहाँ पर कोहिनूर थियेटर है।) महेन्द्र मुखर्जी के साथ उनकी गाड़ी में अभिनय देखने जाएँगे। कहाँ पर बैठने से सुन्दर दिखाई देगा, यही बातें हो रही हैं। कोई कहता है कि एक रुपए वाली सीट पर बैठने से अच्छा दिखाई देता है। राम ने कहा, क्यों, बॉक्स में बैठेंगे।

ठाकुर हँस रहे हैं। किसी ने कहा, वेश्याएँ अभिनय करती हैं। चैतन्यदेव, निताई इत्यादि का अभिनय वे करती हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों से)*— मैं उनको माँ आनन्दमयी देखूँगा।

''वे चैतन्यदेव बनी हैं, तो होवें। शोले* का शरीफा देखने से वास्तविक शरीफे का उद्दीपन होता है।

''किसी भक्त ने सड़क पर जाते-जाते बहुत से बबूल के पेड़ देखे। देखकर भक्त एकदम भावाविष्ट हो गया। उसे स्मरण हो आया कि उस लकड़ी से श्यामसुन्दर के बाग के फावड़े का सुन्दर दस्ता बनता है। झट श्यामसुन्दर की याद मन में आ गई! जब गढ़ के मैदान में बैलून देखने के लिए मुझे ले गए थे, तब एक साहब का लड़का एक वृक्ष का सहारा लेकर त्रिभंग होकर खड़ा हुआ था। देखते मात्र ही झट कृष्ण का उद्दीपन हो गया, त्योंहि समाधिस्थ हो गया!

''चैतन्यदेव मेड़गाँव से जा रहे थे। सुना कि इस गाँव की मिट्टी से खोल (मृदंग) तैयार होते हैं। ज्योंहि सुना त्योंहि भावाविष्ट हो गए।

''श्रीमती मेघ को या मोर के कण्ठ को देखकर फिर स्थिर नहीं रह सकती थीं। श्री कृष्ण का उद्दीपन होकर बाह्यशून्य हो जाया करतीं।''

ठाकुर थोड़ी देर चुप बैठे रहे। कुछ देर पश्चात् फिर बातें करते हैं—

''श्रीमती का महाभाव है। गोपीप्रेम में कोई कामना नहीं। जो सच्चा भक्त है, वह कोई कामना नहीं करता। केवल शुद्धा भक्ति की प्रार्थना करता है, कोई शक्ति या सिद्धाई, कुछ भी नहीं माँगता।''

---

* शोला = एक जल का पौधा जिसका तना सुखाने पर बहुत हल्का हो जाता है और जिसे चीर-चीर कर विवाह का मौड़ (टोप) आदि बनाया जाता है।

द्वितीय परिच्छेद

(न्याँगटा बाबा की शिक्षा— अष्टसिद्धियाँ ईश्वर-लाभ में विघ्न)

श्रीरामकृष्ण— सिद्धाई रहने से बड़ा झंझट है। न्याँगटा ने मुझे सिखाया— कोई सिद्ध समुद्र के तट पर बैठा था, तब तूफान आ गया। तूफान से उसे कष्ट होगा इस कारण उसने कहा, तूफान थम जा। उस की वाणी मिथ्या होने वाली नहीं थी। एक पाल लगा हुआ जहाज जा रहा था। ज्योंहि तूफान हठात् थमा, जहाज त्योंहि टप से डूब गया। और जहाज-भरा लोग भी उसी के संग डूब गए। अब इतने ढेर लोगों के जाने से जो पाप हुआ, सब उसको हुआ। उस पाप से सिद्धाई भी गई और फिर नरक भी हुआ।

"एक साधु की खूब सिद्धियाँ हो रही थीं और उसी के लिए अहंकार भी हो गया था। किन्तु वह साधु भला व्यक्ति था, और तपस्या भी थी। भगवान छद्मवेश में साधु का वेश धर कर एक दिन उसके पास आए। आकर बोले, 'महाराज! सुना है आपकी खूब सिद्धाई हुई है।' साधु ने खातिर करके उनको बिठाया। उसी समय एक हाथी वहाँ से जा रहा था। तब नूतन साधु बोला, 'अच्छा महाराज, आप इच्छा करने से इस हाथी को मार सकते हैं?' साधु बोले, 'ऐसा हो सकता है।' यह कहकर धूल* पढ़कर हाथी के शरीर पर डालने से वह छटपटाकर मर गया। तब फिर उसी आगन्तुक साधु ने कहा, 'आपकी शक्ति है! हाथी को मार डाला।' वह हँसने लगा। तब वह साधु बोले, 'अच्छा! इस हाथी को फिर दोबारा बचा सकते हो?' वह बोला, 'वह भी हो सकता है।' यह कहकर फिर से धूल पढ़कर ज्योंहि डाली, त्योंहि वह हाथी धड़मड़ करके उठ गया। तब उस साधु ने कहा, आपकी कैसी शक्ति! किन्तु एक बात पूछता हूँ। यह जो हाथी मार दिया और हाथी जिन्दा कर दिया, इससे आपका क्या हुआ? आपकी अपनी क्या उन्नति हुई? इससे क्या आपने भगवान को पा लिया है? यह कहकर वह साधु अन्तर्धान हो गए।

"धर्म की सूक्ष्मा गति। तनिक-सी भी कामना रहने से भगवान को

---

* एक मन्त्र

नहीं पाया जाता। सूई में धागा नहीं जाता, ज़रा-सा भी रोंआ रहने से नहीं होता।

''कृष्ण ने अर्जुन से कहा था, भाई यदि मुझे प्राप्त करना चाहते हो तो फिर अष्टसिद्धियों में से एक भी सिद्धि रहने से नहीं होगा।

''बात क्या है, जानते हो? सिद्धि करने से अहंकार हो जाता है, ईश्वर को भूल जाता है।

''कोई बाबू आया था— हीरा। बोला, आप परमहंस हैं, बड़ा अच्छा है, थोड़ा स्वस्त्ययन करना होगा। कैसी हीन बुद्धि! 'परमहंस, और फिर स्वस्त्ययन करना होगा! स्वस्त्ययन करके चंगा करना सिद्धाई है। अहंकार से ईश्वर-लाभ नहीं होता। जानते हो, अहंकार कैसा होता है? जैसे ऊँचा टीला, वर्षा का जल ठहरता नहीं, बह जाता है। नीची जमीन पर जल ठहरता है और अंकुर होता है; तब फिर वृक्ष होता है; तत्पश्चात् फल होता है।''

(Love to all—प्यार से अहंकार जाता है— तब ईश्वर-लाभ होता है)

''हाजरा से तभी कहता हूँ, 'मैंने समझ लिया है, और सब मूर्ख हैं'— ऐसी बुद्धि मत करो। सबको प्यार करना चाहिए। कोई पराया नहीं है। सर्वभूतों में वे ही, हरि ही हैं। उनके बिना कुछ नहीं है। प्रह्लाद को भगवान ने कहा, 'वर ले लो।' प्रह्लाद ने कहा, 'आपका दर्शन पा लिया है, मुझे और कुछ नहीं चाहिए'। भगवान छोड़ते नहीं।

''तब प्रह्लाद ने कहा, यदि वर देते ही हैं तो यही वर दो कि मुझे जिन्होंने कष्ट दिया है उनका अपराध न माना जाए।

''इसका अर्थ यही है कि हरि ने ही एक प्रकार से कष्ट दिया है। उन लोगों को कष्ट देने से हरि को ही कष्ट देना होगा।''

तृतीय परिच्छेद

श्रीरामकृष्ण का ज्ञानोन्माद और जाति-विचार

(पूर्व कथा 1857— काली-मन्दिर-प्रतिष्ठा के पश्चात् ज्ञानीपागल-दर्शन— हलधारी)

श्रीरामकृष्ण— श्रीमती का प्रेमोन्माद है। और फिर भक्ति-उन्माद भी है। जैसे हनुमान का। सीता को आग में प्रवेश करते देख वे राम को मारने के लिए जाते हैं। और फिर ज्ञानोन्माद है। कोई ज्ञानी पागल की भाँति देखा था, कालीबाड़ी की सद्य प्रतिष्ठा के पश्चात्। लोगों ने कहा, राममोहन राय की ब्राह्म सभा का कोई है। एक पैर में फटा जूता, हाथ में बाँस की टहनी और कुल्हड़, आम का पौधा। गंगा में डुबकी लगाई। तत्पश्चात् वह काली-मन्दिर में गया। हलधारी तब काली-मन्दिर में बैठा था। वह व्यक्ति मस्त होकर स्तव (काली का बीज मन्त्र) करने लगा—

'क्षौं क्षौं खट्वांगधारिणीं, इत्यादि।'

"कुत्ते के पास जाकर कान पकड़ कर उसका जूठा खाया— कुत्ते ने भी कुछ नहीं कहा। मेरी भी तब वैसी अवस्था आरम्भ हुई थी। मैंने हृदय के गले से लगकर कहा था, 'ओ रे हृदे, मेरी भी क्या ऐसी दशा हो जाएगी?'

"मेरी उन्माद-अवस्था! नारायण शास्त्री ने आकर देखा, एक बाँस कन्धे पर रखकर टहल रहा है। तब उसने लोगों से कहा, 'वह उन्मत्त है।' उस अवस्था में जात-विचार कुछ नहीं रहता। कोई नीच जाति का व्यक्ति था, उसकी स्त्री साग पकाकर भेज देती, मैं खा लेता।

"कालीबाड़ी में भीखमंगे, कंगाल लोग जब खाकर चले जाते, उनके पत्ते सिर पर और मुख पर छुआता था। हलधारी ने तब मुझ से कहा, 'तू क्या कर रहा है? कंगालों का जूठा खा लिया है, तेरे बालबच्चों का विवाह कैसे होगा?' मुझे तब गुस्सा आ गया। हलधारी मेरा दादा लगता है। वह होने से क्या होता है? उससे कहा था, 'अरे साले, तुम यही गीता-वेदान्त पढ़ते हो?

यही तुम सिखाते हो 'ब्रह्म सत्य, जगत मिथ्या'? तुमने समझ लिया है कि मेरे भी फिर अब बाल-बच्चे होंगे। तेरे गीता-पाठ के मुख में आग!''

(मास्टर के प्रति)— ''देखो, खाली पढ़ाई आदि से कुछ नहीं होता। बाजे के बोल व्यक्ति मुखस्थ तो सुन्दर बोल सकता है, हाथ में लाना बड़ा कठिन है।''

ठाकुर फिर और अपनी ज्ञान-उन्माद अवस्था वर्णन करते हैं।

**(पूर्वकथा— मथुर के संग में नवद्वीप में—
ठाकुर चिने श्यांकारी के पाँव पकड़ते हैं)**

''सेजोबाबू के संग कितने दिन बजरे में हवा खाने गया हूँ। उसी यात्रा में नवद्वीप में भी जाना हुआ था। बजरे में देखा— माझी सुन्दर खाना पका रहे हैं। सेजोबाबू समझ गए कि ये अब माँग कर खा लेंगे। जभी बोले, 'बाबा, इधर आ जाओ, इधर आ जाओ।'

''किन्तु अब नहीं कर सकता। वह अवस्था अब नहीं है। अब आचारी हो, ब्राह्मण हो, ठाकुर का भोग हो, तब भात खाऊँगा।

''क्या-क्या अवस्थाएँ चलीं गईं हैं! देश में चिने श्यांकारी और अन्य हमउम्र वालों से कहता था, 'अरे भाई, तुम्हारे पाँव पड़ता हूँ, एक बार 'हरिबोल' बोलो। सब के पाँव पड़ने लग जाता था। तब चिने ने कहा, 'ओ रे! तेरा अब प्रथम अनुराग है, जभी तो सब समान लगते हैं।' पहले जब तूफान, आँधी चढ़ती है, तब धूल उड़ती है, तब आम के वृक्ष, इमली के वृक्ष सब एक से लगते हैं। यह आम का वृक्ष है, यह इमली का वृक्ष है, पहचाना नहीं जाता।''

(श्रीरामकृष्ण का क्या मत है, गृहस्थी या सर्वत्याग? केशवसेन को सन्देह)

कोई भक्त— ऐसा भक्ति-उन्माद या प्रेम-उन्माद अथवा ज्ञान-उन्माद गृहस्थी व्यक्ति को हो जाने पर कैसे चलेगा?

श्रीरामकृष्ण *(संसारी भक्त की ओर देखकर)*— योगी दो प्रकार के हैं।

व्यक्त योगी और गुप्त योगी। गृहस्थी में गुप्त योगी। किसी को पता भी न लगे। गृही के लिये मन में त्याग, बाहिर त्याग नहीं।

राम— आप की तो लड़का फुसलाने वाली बात है। गृह में ज्ञानी हो सकता है, विज्ञानी नहीं।

श्रीरामकृष्ण— अन्त में विज्ञानी होना चाहे तो हो जाएगा। जबरदस्ती करके गृह-त्याग अच्छा नहीं।

राम— केशवसेन कहते थे, 'उनके पास इतने लोग क्यों जाते हैं? एक दिन हल्का-सा डंक मारेंगे, तब भाग आना पड़ेगा।'

श्रीरामकृष्ण— क्यों हल्का-सा डंक मारूँगा? मैं तो लोगों से कहता हूँ, यह भी करो, वह भी करो; संसार भी करो, ईश्वर को भी पुकारो। सर्वत्याग करने के लिये तो नहीं कहता। *(सहास्य)* केशवसेन ने एक दिन लैक्चर दिया, बोला, 'हे ईश्वर, ऐसा कर दो जिससे कि हम भक्ति-नदी में डुबकी लगा सकें, और डुबकी लगाकर जैसे सच्चिदानन्द-सागर में जा पड़ें।' स्त्रियाँ सारी चिक के भीतर थीं। मैंने केशव से कहा, 'एकदम से सबके डुबकी लगाने से क्या होगा? ऐसा हो जाए तो इनकी (स्त्रियों की) क्या दशा होगी? एक-एक बार सूखे में चढ़ो, फिर दोबारा डुबकी मारो, फिर-फिर चढ़ो।' केशव और सब हँसने लगे। हाजरा ने कहा 'तुम रजोमुखी लोगों को बहुत प्यार करते हो। जिनके पास रुपया-पैसा, नाम-यश, खूब इज्जत है।' वही यदि है तो फिर हरीश, लाटु (नोटो) आदि को क्यों प्यार करता हूँ? नरेद्र को क्यों प्यार करता हूँ? उसके पास तो भुना केला खाने को नमक भी नहीं है।

श्रीरामकृष्ण कमरे से बाहिर आए और मास्टर के साथ बातें करते-करते झाऊतले की ओर जा रहे हैं। एक भक्त गाड़ू और परना लेकर संग-संग जा रहे हैं। आज चैतन्यलीला देखने कलकत्ता जाएँगे, ये बातें हो रही हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति, पंचवटी के निकट)*— राम रजोगुण की ही सब बातें करता है। इतना अधिक दाम दे कर बैठने की क्या आवश्यकता है?

बॉक्स का टिकट लेने का प्रयोजन नहीं, ठाकुर कह रहे हैं।

चतुर्थ परिच्छेद

(हाथीबागान में भक्तमन्दिर में— श्रीयुक्त महेन्द्र मुखर्जी की सेवा)

श्रीरामकृष्ण श्रीयुक्त महेन्द्र मुखर्जी की गाड़ी में दक्षिणेश्वर से कलकत्ता आ रहे हैं। रविवार, 6ठा आश्विन, 21 सितम्बर, 1884 ईसवी, आश्विन शुक्ला, द्वितीया। समय 5 का। गाड़ी में महेन्द्र मुखर्जी, मास्टर तथा और भी दो-एक जन हैं। थोड़ा चलते ही ईश्वर-चिन्तन करते-करते ठाकुर भावसमाधि में मग्न हो गए।

काफी देर पश्चात् समाधि भंग हुई। ठाकुर कहते हैं, ''और फिर हाजरा मुझे सिखाता है। साला!'' कुछ देर में कहते हैं, ''मैं जल पीऊँगा।'' बाहिरी जगत में मन उतारने के लिये ठाकुर यही बात प्राय: समाधि के पश्चात् कहा करते थे।

महेन्द्र मुखर्जी *(मास्टर के प्रति)*— तो फिर कुछ खाने के लिए लाया जाए?

मास्टर— ये अब खाएँगे नहीं।

श्रीरामकृष्ण *(भावस्थ)*— मैं खाऊँगा; बाह्य जाऊँगा।

महेन्द्र मुखर्जी की हाथीबागान में मैदे की चक्की है। उसी चक्की में ठाकुर को ले जा रहे हैं। वहाँ पर थोड़ा-सा विश्राम करके स्टार थियेटर में चैतन्यलीला देखने जाएँगे। महेन्द्र का घर बागबाजार में श्री मदनमोहन जी के मन्दिर के कुछ उत्तर में है। परमहंसदेव को उनके पिताजी नहीं जानते। इसीलिये महेन्द्र ठाकुर को घर में नहीं ले गए। उनके द्वितीय भ्राता प्रियनाथ भी भक्त हैं।

महेन्द्र की चक्की में तख्तपोश के ऊपर दरी बिछी है। उसके ऊपर ठाकुर बैठे हुए हैं और ईश्वर की बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर व महेन्द्र के प्रति)*— श्री चैतन्य-चरितामृत सुनते-सुनते हाजरा कहता है, 'यह सब शक्ति की लीला है— विभु इसके भीतर नहीं है।' विभु के बिना क्या शक्ति कभी होती है? यहाँ का (ठाकुर का) मत उलटने की चेष्टा है!

(ब्रह्म विभुरूप में सर्वभूतों में— शुद्धभक्त षडैश्वर्य नहीं चाहता)

"मैं जानता हूँ ब्रह्म और शक्ति अभेद। जैसे जल और जल की हिमशक्ति। अग्नि और दाहिका शक्ति। वे विभुरूप में हैं, तथापि किसी-किसी वस्तु में अधिक शक्ति है, किसी-किसी वस्तु में कम शक्ति का प्रकाश है। हाजरा फिर और भी कहता है, 'भगवान को पा लेने पर उनकी भाँति षडैश्वर्यशाली हो जाता है।' षडैश्वर्य रहेगा, व्यवहार करे अथवा न करे।"

मास्टर— षडैश्वर्य हाथ में रहना तो चाहिये। *(सब का हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ, हाथ में रहना चाहिए। कैसी हीनबुद्धि! जिसने ऐश्वर्य कभी भोगा नहीं है, वही ऐश्वर्य-ऐश्वर्य करके अधीर होता है। जो शुद्ध भक्त है वह कभी भी ऐश्वर्य-प्रार्थना नहीं करता।

कारखाने में पान नहीं बनाए गए थे। ठाकुर कह रहे हैं, पान मँगवा लो। ठाकुर बाह्य जाएँगे। महेन्द्र ने गाड़ू में जल मँगवाया और गाड़ू अपने हाथ में ले लिया। ठाकुर को साथ लेकर मैदान की ओर जाएँगे। ठाकुर ने मणि को सामने देखकर महेन्द्र से कहा, 'तुम्हें नहीं लेना, इनको दे दो।' मणि गाड़ू लेकर ठाकुर के संग में कारखाने के भीतर के मैदान की ओर गए। मुख धो लेने पर ठाकुर को हुक्का बना कर दिया गया। ठाकुर मास्टर से कहते हैं, क्या सन्ध्या हो गई है? तो फिर अब हुक्का नहीं पीऊँगा, 'सन्ध्या हो जाने पर सब कर्म छोड़कर हरि-स्मरण करेंगे।' यह कह कर ठाकुर हाथ के लोम देखते हैं— गिने जाते हैं कि नहीं। लोम यदि गिने न जाएँ, तो फिर— सन्ध्या हो गई है।

पंचम परिच्छेद

नाट्यालय में चैतन्य-लीला— श्रीरामकृष्ण समाधिस्थ

(मास्टर, बाबूराम, नित्यानन्द के वंश का भक्त, महेन्द्र मुखर्जी, गिरीश)

ठाकुर की गाड़ी बीडन स्ट्रीट में स्टार थियेटर के सामने आ गई। रात के प्राय: 8.30 बजे हैं। संग में मास्टर, बाबूराम, महेन्द्र मुखर्जी और भी

दो-एक भक्त हैं। टिकट खरीदने का बन्दोबस्त हो रहा है। नाट्यालय के मैनेजर श्रीयुक्त गिरीश घोष कई कर्मचारियों के साथ ठाकुर की गाड़ी के निकट आए हैं, अभिवादन करके उनको सादर ऊपर ले गए। गिरीश ने परमहंसदेव का नाम सुना है। वे चैतन्य-लीला-अभिनय-दर्शन करने आए हैं, सुनकर परम आह्लादित हुए हैं। ठाकुर को दक्षिण-पश्चिम के बॉक्स में बिठाया गया। ठाकुर की बगल में मास्टर बैठे। पीछे बाबूराम तथा और भी दो-एक भक्त हैं।

नाट्यालय प्रकाश से भरा है। नीचे बहुत लोग हैं। ठाकुर के बायीं ओर 'ड्रॉपसीन' दीख रहा है। कई बॉक्सों में लोग हैं। उनमें एक-एक बेहरा (सेवक) नियुक्त है, बॉक्स के पीछे खड़ा होकर हवा कर रहा है। ठाकुर को हवा करने के लिए गिरीश बेहरा नियुक्त कर गए हैं।

ठाकुर नाट्यालय देखकर बालकवत् आनन्दित हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति सहास्य)*— वाह! यहाँ पर तो बड़ा सुन्दर है! आकर अच्छा हुआ। बहुत-से लोग एक संग में होने पर उद्दीपन होता है। तब ठीक-ठीक देख पाता हूँ, वे ही सब हुए हैं।

मास्टर— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण— यहाँ पर कितना लेंगे?

मास्टर— जी, कुछ नहीं लेंगे। आप आए हैं, इसलिए उन्हें खूब आनन्द है।

श्रीरामकृष्ण— सब माँ का माहात्म्य है!

ड्रॉपसीन उठ गया। दर्शकों की दृष्टि एकसंग रंगमंच के ऊपर पड़ी। प्रथम, पाप और छः रिपुओं की सभा है। तत्पश्चात् वनमार्ग पर विवेक, वैराग्य और भक्ति की कथावार्ता।

भक्ति कहती है, गौरांग ने नदिया में जन्म ग्रहण कर लिया है। जभी विद्याधरियाँ और मुनि-ऋषिगण छद्मवेश में दर्शन करने आ रहे हैं।

धन्य धरा नदीयाय ऐलो गोरा।
देखो, देखो ना बिमाने विद्याधरीगणे, आसितेछे हरि दरशने।
देखो, प्रेमानन्दे होइये बिभोल, मुनि ऋषि आसिछे सकल।

[भावार्थ— धरा धन्य हो गई है। नदिया में प्रभु गौरांग आ गए हैं। देखो-देखो, विमान में विद्याधरियाँ हरि-दर्शनों को आ रही हैं। देखो, प्रेमानन्द में विभोर हुए मुनि-ऋषि सब आ रहे हैं।]

विद्याधरियाँ और मुनि-ऋषिगण गौरांग को भगवान का अवतार जानकर स्तव कर रहे हैं। ठाकुर उनको देखकर भाव में विभोर हो रहे हैं। मास्टर से कह रहे हैं, अहा! कैसा है, देखो!

विद्याधरियाँ और मुनि-ऋषिगण गाकर स्तव कर रहे हैं—

पुरुषगण— केशव कुरु करुणा दीने, कुंज काननचारी।
स्त्रीगण— माधव मनोमोहन, मोहन मुरली धारी।
सभी— हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल, मन आमार।

पुरुषगण— ब्रजकिशोर, कालीयहर, कातर-भय-भंजन।
स्त्रीगण— नयन बाँका, बाँका शिखिपाखा, राधिका हृदिरंजन।
पुरुषगण— गोवर्धन-धारण, वनकुसुम-भूषण, दामोदर कंसदर्पहारी।
स्त्रीगण— श्याम रासरसविहारी।
सभी— हरिबोल, हरिबोल, हरिबोल, मन आमार।

विद्याधरियों ने जब गाया—'नयन बाँका, बाँका शिखिपाखा, राधिका हृदिरंजन' तब ठाकुर श्रीरामकृष्ण गम्भीर समाधि में मग्न हो गए। कॉनसर्ट (ऐक्य तानस्वरवाद्य संगीत) हो रही है। ठाकुर को कोई होश नहीं।

षष्ठ परिच्छेद

(चैतन्यलीला-दर्शन— गौरप्रेम में मतवाले श्रीरामकृष्ण)

जगन्नाथ मिश्र के घर अतिथि आए हैं। बालक निमाई सदानन्द में हमउम्र वालों के साथ गाना गाते हुए टहल रहे हैं—

कहाँ मेरा वृन्दावन, कहाँ यशोदा माई!
कहाँ मेरा नन्द पिता कहाँ बलाई भाई!

कहाँ मेरी धवली श्यामली, कहाँ मेरी मोहन मुरली।
श्रीदाम सुदाम राखालगण कहाँ मैं पाई॥
कहाँ मेरा यमुनातट, कहाँ मेरा वंशीवट।
कहाँ गोपनारियाँ मेरी, कहाँ हमारा राई॥

अतिथि आँखें मून्द कर, भगवान को अन्न निवेदन कर रहे हैं। निमाई दौड़कर आकर वही अन्न भक्षण कर रहे हैं। अतिथि ने उनको भगवान-रूप में पहचान लिया और दशावतार* का स्तव करके प्रसन्न करते हैं। मिश्र और शची से विदा लेते समय वे फिर और स्तव करते हैं—

जय नित्यानन्द गौरचन्द्र जय भवतारण,
अनाथत्राण जीवप्राण भीतभयवारण।
युगे युगे रंग, नव लीला नव रंग,
नव तरंग नव प्रसंग धरा भार धारण।
तापहारी प्रेमवारि, वितर रासरसविहारी,
दीनआश— कलुषनाश दृष्ट त्रासकारण।

स्तव सुनते-सुनते ठाकुर फिर और भाव-विभोर हो रहे हैं।

नवद्वीप का गंगातीर— गंगास्नान के बाद ब्राह्मण और स्त्रियाँ पुरुषघाट पर बैठकर पूजा कर रहे हैं। निमाई नैवेद्य छीनकर खा रहे हैं। एक ब्राह्मण बड़ा गुस्सा हो गया, और बोला, अरे दुष्ट! विष्णु-पूजा का नैवैद्य छीन रहा है— तेरा सर्वनाश होगा! निमाई ने तब भी छीन लिया, और दौड़ने को उद्यत हुए। अनेक नारियाँ लड़के को बहुत प्यार करती हैं। निमाई का चले जाना देखकर उनके प्राणों को सहन नहीं हुआ। वे उच्चस्वर से पुकारने लगीं, निमाई लौट आ; निमाई लौट आ। निमाई ने नहीं सुना।

कोई निमाई को लौटा लाने का महामन्त्र जानता था। वह 'हरिबोल-हरिबोल' बोलने लगा। तुरन्त निमाई 'हरिबोल-हरिबोल' बोलते-बोलते लौट आए।

मणि ठाकुर के पास बैठे हैं। ठाकुर कह रहे हैं, आहा!

---

* दशावतार = 1. मत्स्य 2. कूर्म 3. बराह 4. नरसिंह 5. वामन 6. परशुराम 7. राम 8. कृष्ण 9. बुद्ध 10. कल्की अवतार।

ठाकुर अधिक स्थिर नहीं रह सके। ''आहा'' कहते-कहते मणि की ओर ताकते हुए प्रेमाश्रु-विसर्जन कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(बाबूराम और मास्टर के प्रति)*— देखो, यदि मेरा भाव या समाधि हो तो तुम लोग गड़बड़ मत करना। ऐहिक लोग ढोंग समझेंगे।

निमाई का उपनयन। निमाई संन्यासी बने हुए हैं। शची और पड़ौसिनें चारों ओर खड़ी हुई हैं। निमाई गाना गाकर भिक्षा माँग रहे हैं—

दे गो भिक्षा दे।
आमि नूतन योगी फिरि केंदे केंदे।
ओगो ब्रजवासी तोदेर भालोबासि,
ओगो ताईतो आमि, देखो ना उपवासी।
देखो ना द्वारे योगी बोले 'राधे-राधे'।
बेला गेलो जेते होबे फिरे,
एकाकी थाकि मा यमुना तीरे।
आँखिनीरे मिशे नीरे,
चले धीरे-धीरे धारा मृदु नादे।

[भावार्थ— कोई भिक्षा दे माँ मेरी! मैं नया योगी रोता-रोता फिर रहा हूँ। अरे ब्रजवासियो, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। अरी माई, तभी तो आता हूँ। देखो माँ, मैं उपवासी हूँ। देखो माँ, द्वार पर योगी राधे-राधे कह रहा है। समय हो चुका है, अब वापिस जाना होगा। यमुना-तीर पर माँ, मैं अकेला रहता हूँ। आँखों का नीर यमुना में मिल कर धीरे-धीरे चलकर धारा के मृदु नाद में मिल जाता है।]

सब चले गए। निमाई एकाकी रह गए हैं। देवगण ब्राह्मण-ब्राह्मणी वेश में उनका स्तव कर रहे हैं।

पुरुषगण— चन्द्रकिरण अंगे, नमो वामन रूपधारी।
स्त्रीगण— गोपीगण मनोमोहन, मंजुकुंजचारी।
निमाई— जय राधे श्री राधे।

पुरुषगण— ब्रज बालक संग, मदन मान भंग।
स्त्रीगण— उन्मादिनी, ब्रजकामिनी, उन्माद तरंग।
पुरुषगण— दैत्यछलन, नारायण, सुरगण-भयहारी।

स्त्रीगण— ब्रजबिहारी गोपनारी-मान-भिखारी।
निमाई— जय राधे श्री राधे।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण यह गाना सुनते-सुनते समाधिस्थ हो गए। यवनिका गिर गई। कान्सर्ट (एकतान वाद्य) बज रहे हैं।

(संसारी लोग दोनों ओर रखने को कहते हैं— गंगादास और श्रीवास)

अद्वैत के घर के सामने श्रीवासादि बातें कर रहे हैं। मुकुन्द मधुर कण्ठ से गाना गा रहे हैं—

आर घुमाईओ ना मन। मायाघोरे कतोदिन रबे अचेतन।
के तुमि कि हेतु एले, आपनारे भुले गेले,
चाहरे नयन मेले त्यज कुस्वपन॥
रचेछो अनित्य ध्याने नित्यानन्दे हेरो प्राणे,
तम परिहरि हेरो तरुण तपन॥

[भावार्थ— अरे मन, अब और मत घुमाना। माया के नशे में कितने दिनों तक अचेतन रहा है। कौन हो तुम, किस कारण आए हो, अपने को भूल गए हो। यह कुस्वप्न छोड़कर आँखें खोलकर देखो। अनित्य के ध्यान में रह रहे हो, अपने प्राणों में नित्यानन्द को हेरो, अन्धेरे को छोड़कर युवा तेज़ सूर्य को देखो।]

मुकुन्द बड़े सुकण्ठ हैं। श्रीरामकृष्ण मणि के निकट उनकी प्रशंसा कर रहे हैं।

निमाई घर में हैं। श्रीवास देखने के लिए आए हैं। पहले शची से मिले। शची रोने लगी। कहने लगी, मेरा बेटा गृहधर्म में मन नहीं देता।

'जे अवधि गेछे विश्वरूप
प्राण मम कांपे निरन्तर, पाछे होय निमाई संन्यासी।'

[भावार्थ— जब से विश्वरूप गया है, मेरा प्राण निरन्तर काँपता रहता है कि कहीं पीछे निमाई भी संन्यासी न हो जाए।]

इस समय निमाई आ रहे हैं। शची श्रीवास से कहती हैं—

आहा देखो-देखो पागलेर प्राय,
आँखिनीरे बुक भेसे जाय, बोलो-बोलो ए भाव केमने जाय?

[भावार्थ— हाय, देखो-देखो, प्रायः पागल-सा ही हो रहा है। आँखों के जल से छाती भीग रही है। बताओ, जल्दी बताओ, यह भाव कैसे जाएगा?]

निमाई श्रीवास को देखकर उनके पाँव पकड़कर रोते हैं और कहते हैं—

कोई प्रभु कोई मम कृष्ण भक्ति होलो,
अधम जनम वृथा केरे गेलो।
बोलो प्रभु, कृष्ण कोई, कृष्ण कोथा पाबो,
देहो पदधूलि बनमाली जेनो पाई॥

[भावार्थ— कहाँ प्रभु, मेरी कृष्ण-भक्ति कहाँ हुई! अधम जन्म वृथा ही कट गया! बाताओ प्रभु, कृष्ण कहाँ हैं, कृष्ण को कहाँ प्राप्त करूँ? आप चरणधूलि देने की कृपा करें ताकि मैं वनमाली को खोज लूँ।]

श्रीरामकृष्ण मास्टर की ओर ताकते हुए बातें करना चाह रहे हैं, किन्तु कर नहीं सक रहे। गद्‌गद् स्वर! कपोल नयनों के जल में डूबे हुए हैं। एकटक देख रहे हैं, निमाई श्रीवास के पाँव पकड़े हुए हैं। और कह रहे हैं, 'कहाँ प्रभु, कृष्ण-भक्ति तो नहीं हुई!'

इधर निमाई छात्रों को पढ़ा नहीं सक रहे हैं। गंगादास के निकट निमाई पढ़े थे। वे निमाई को समझाने आए हैं। श्रीवास को कहते हैं— 'श्रीवास ठाकुर, हम भी ब्राह्मण हैं, विष्णुपूजा करते हैं, आप लोगों ने मिलकर गृहस्थी को बरबाद कर दिया है।'

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर से)*— यह गृही की शिक्षा है— यह भी करो, वह भी करो। गृही जब शिक्षा देता है, तब दो तरफ रखने को कहता है।

मास्टर— जी, हाँ।

गंगादास निमाई को फिर और समझाते हैं— 'अरे ओ निमाई, तुम्हें तो शास्त्र-ज्ञान है! तुम मेरे साथ तर्क करो। संसारधर्म की अपेक्षा कौन-सा धर्म प्रधान है, मुझे समझाओ। तुम गृही हो, गृही के जैसा आचरण न

करके अन्य आचरण क्यों करते हो?'

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— देख लिया? दोनों ओर रखने को कह रहा है।

मास्टर— जी, हाँ।

निमाई बोले, मैं इच्छा से गृहस्थ-धर्म की उपेक्षा नहीं कर रहा; मेरी तो बल्कि इच्छा है कि जिससे सब ठीक रहे। किन्तु—

प्रभु कोन् हेतु किछु नाहि जानि,
प्राण टाने कि करि कि करि,
भावि कुले रई, कुले आर रहिते ना पारि,
प्राण धाय बुझाले न फेरे,
सदा चाय झाँप दिते अकूल पाथारे।

[भावार्थ— प्रभु किस कारण से यह हो रहा है, यह कुछ भी नहीं जानता। प्राणों के आकर्षण से क्या-क्या कर रहा हूँ! सोचता हूँ कुल में रहूँ, किन्तु यहाँ और रह नहीं सकता। प्राण दौड़ता है, समझाने से भी नहीं लौटता। सर्वदा घने समुद्र में छलाँग मारना चाहता है।]

श्रीरामकृष्ण— आहा!

सप्तम परिच्छेद

(नाट्यालय में नित्यानन्दवंश और श्रीरामकृष्ण का उद्दीपन मास्टर, बाबूराम, खड़दाह के नित्यानन्दवंश के गोस्वामी)

नवद्वीप में नित्यानन्द आए हैं, वे निमाई को खोज रहे हैं, उस समय निमाई के साथ मिलन हो गया। निमाई भी उनको खोज रहे थे। मिलने पर निमाई कह रहे हैं—

सार्थक जीवन; सत्य मम फलेछे स्वपन;
लुकाइले स्वप्ने देखा दिये।

[भावार्थ— मेरा जीवन सार्थक हो गया है; मेरा स्वप्न सच्चा हो गया है, फल आ गया है। स्वप्न में दर्शन देकर छिप गए थे।]

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर से गद्‌गद् स्वर में)*— निमाई कह रहे हैं स्वप्न में देखा था।

श्रीवास षड्‌भुज-दर्शन कर रहे हैं, और स्तव कर रहे हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण भावाविष्ट होकर षड्‌भुज-दर्शन कर रहे हैं। गौरांग को ईश्वर-आवेश हुआ है। वे अद्वैत, श्रीवास, हरिदास इत्यादि के साथ भाव में बातें करते हैं।

गौरांग का भाव समझ कर निताई गाना गा रहे हैं—

कोई कृष्ण एलो कुंजे प्राण सई!
दे रे कृष्ण दे, कृष्ण एने दे,
राधा जाने कि गो कृष्ण बोई।

[भावार्थ— हे प्राणसखी, कृष्ण कुंज में कहाँ आए? मुझे कृष्ण ला दे। ओ प्यारी सखी, राधा कृष्ण के बिना और किसे जानती है?]

श्रीरामकृष्ण गाना सुनते-सुनते समाधिस्थ हो गए। काफी देर उसी भाव में रहे। कान्सर्ट (समवेत वाद्य संगीत) चलने लगा। ठाकुर की समाधि भंग हो गई। इसी बीच खड़दाह के नित्यानन्द गोस्वामी के वंश के एक बाबू आए और ठाकुर की कुर्सी के पीछे खड़े हो गए। वयस 34-35 होगी। ठाकुर उन्हें देखकर आनन्द में डूबने-उतराने लगे। उनका हाथ पकड़कर कितनी बातें कर रहे हैं! बीच-बीच में उनसे कह रहे हैं, ''यहाँ पर बैठो ना! तुम्हारे यहाँ रहने से खूब उद्दीपन होता है।'' सस्नेह मानो उनका हाथ लेकर खेल करते हैं। सस्नेह मुख पर हाथ देकर आदर-प्यार करते हैं।

गोस्वामी के चले जाने पर मास्टर से कहते हैं—

''वह बड़ा पण्डित है, बाप बड़ा भक्त है। मेरे खड़दाह में श्यामसुन्दर देखने जाने पर, जो भोग सौ रुपये देने पर भी नहीं मिलता, वही भोग लाकर मुझे खिलाता है।

''इसके लक्षण बड़े अच्छे हैं; थोड़ा-सा हिलाने-डुलाने से ही चैतन्य हो जाता है। उसको देखते-देखते बड़ा उद्दीपन होता है। और थोड़ा-सा होने से तो मैं खड़ा हो जाता।''

गोस्वामी को देखते-देखते और थोड़ा होने से ठाकुर को भाव-समाधि हो जाती; यही बात कह रहे हैं।

यवनिका उठ गई। राजपथ पर नित्यानन्द सिर पर हाथ रखकर खून बहना बन्द कर रहे हैं। मधाई ने कलसी का कोना फेंक कर मारा है; निताई को भ्रूक्षेप नहीं, गौरांगप्रेम में गरगर (गले तक) मतवाले हैं। ठाकुर भावाविष्ट हैं। देख रहे हैं, निताई जगाई-माधाई को छाती से लगा लेंगे। निताई कहते हैं—

> प्राण भरे आय हरि बोलि, नेये आय जगाई माधाई।
> मेरेछो बेश करेछो, हरि बोले नाचो भाई॥
>
> बोल रे हरि बोल; प्रेमिक हरि प्रेमे दिबे कोल।
> तोलो रे तोलो हरिनामेर रोल॥
>
> पाओनि प्रेमेर स्वाद, ओरे हरि बोले कांदो, हेरबि हृदयचाँद।
> ओरे प्रेमे तोदेर नाम बिलाबो, प्रेमे निताई डाके ताई॥

[भावार्थ— आओ जगाई-माधाई, नाचते हुए आओ, जी भर कर हरि बोलें। अरे भाई, मारा है तो अच्छा ही किया है, हरि-हरि बोल कर नाचो। बोल रे हरि बोल; प्रेमिक जन हरिप्रेम में आलिंगन करेंगे— गोद में ले लेंगे। उठाओ रे उठाओ हरिनाम शब्द, इसका शोर मचा दो। प्रेम का स्वाद नहीं मिला है, अरे भाई, हरि बोल कर क्रन्दन करो, तब हृदय में चाँद देखोगे। अरे भाई, प्रेम में तुम लोगों के लिए नाम वितरण करूँगा, निताई तभी तो प्रेम से बुला रहा है।]

अब निमाई शची से संन्यास की बात कह रहे हैं।

शची मूर्च्छित हो गई। मूर्छा देखकर दर्शकों में बहुत-से ही हा-हा-कार करते हैं। श्रीरामकृष्ण अणुमात्र भी बिना विचलित हुए एकटक देख रहे हैं; केवल नयनों के कोने में एक बिन्दु जल दिखाई दिया!

अष्टम परिच्छेद

(गौरांग-प्रेम में मतवाले ठाकुर श्रीरामकृष्ण)

अभिनय समाप्त हो गया। ठाकुर गाड़ी में चढ़ रहे हैं। किसी भक्त ने पूछा, 'कैसा देखा?' ठाकुर ने हँसते-हँसते कहा, 'असल, नकल एक देखा।'

गाड़ी महेन्द्र मुखर्जी के कारखाने को जा रही है। हठात् ठाकुर भावाविष्ट हो गए। कितनी ही देर के बाद प्रेमपूर्वक अपने-आप बोल रहे हैं—

"हा कृष्ण! हे कृष्ण! ज्ञान कृष्ण! प्राण कृष्ण! मन कृष्ण! आत्मा कृष्ण! देह कृष्ण!" और फिर कहते हैं, "प्राण, हे गोविन्द, मम जीवन!"

गाड़ी मुखर्जी के कारखाने में पहुँच गई। बड़े यत्न, प्यार से महेन्द्र ने ठाकुर को खिलाया। मणि पास बैठे हैं। ठाकुर सस्नेह उनसे कह रहे हैं, तुम कुछ खाओ। हाथ में लेकर मिठाई प्रसाद दिया।

अब श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में जा रहे हैं। गाड़ी में महेन्द्र मुखर्जी तथा और भी दो-तीन भक्त हैं। महेन्द्र थोड़ा-सा आगे तक छोड़ेंगे। ठाकुर आनन्द से जा रहे हैं और गाना आरम्भ कर दिया—

गौर निताई तोमरा दुभाई।*

मणि संग-संग में गा रहे हैं।

महेन्द्र तीर्थ जाएँगे। ठाकुर के साथ वे ही बातें हो रही हैं।

श्रीरामकृष्ण *(महेन्द्र के प्रति, सहास्य)*— प्रेम का अंकुर होने के साथ-साथ ही सब सूख जाएगा।

"किन्तु शीघ्र आना। आहा, अनेक दिनों से 'तुम्हारे घर जाऊँगा' मन में हुआ था, वह एक बार देखना हो गया, अच्छा हुआ।"

महेन्द्र— जी, जीवन सार्थक हुआ।

---

* सम्पूर्ण गान तथा भावार्थ के लिए इसी ग्रन्थ का पृष्ठ 146-147 देखिए।

श्रीरामकृष्ण— सार्थक तो (आप) हैं ही। आप का पिता भी अच्छा है! उस दिन देखा था, अध्यात्म रामायण पर विश्वास है।

महेन्द्र— जी, कृपा रखें ताकि भक्ति हो।

श्रीरामकृष्ण— तुम खूब उदार और सरल हो। उदार, सरल हुए बिना भगवान को नहीं पाया जाता। वे कपटता से अनेक दूर हैं।

महेन्द्र ने श्यामबाजार के निकट विदा ली। गाड़ी चल रही है।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— यदु मल्लिक ने क्या किया?

मास्टर *(स्वगत)*— ठाकुर सब के मंगल के लिए भावना कर रहे हैं। चैतन्यदेव की न्यायीं इन्होंने भी क्या भक्ति सिखाने के लिये देह धारण की हुई है?

साधारण ब्राह्मसमाज

पंचदश खण्ड

साधारण ब्राह्मसमाज में श्रीरामकृष्ण —विजय गोस्वामी के प्रति उपदेश

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण साधारण ब्राह्मसमाज के मन्दिर में)

(मास्टर, हाजरा, विजय, शिवनाथ, केदार)

आज श्रीरामकृष्ण ने कलकत्ता नगरी में आगमन किया है। सप्तमी-पूजा, शुक्रवार, 26 सितम्बर, 1884 ईसवी। ठाकुर के बहुत-से काम हैं। शारदीय महोत्सव— राजधानी में हिन्दुओं के प्राय: घर-घर में माँ की सप्तमी-पूजा आरम्भ है। ठाकुर अधर के घर की प्रतिमा का दर्शन करेंगे और आनन्दमयी के आनन्दोत्सव में योगदान करेंगे। और एक साध है, श्रीयुक्त शिवनाथ का दर्शन करेंगे।

प्राय: दोपहर से साधारण ब्राह्मसमाज के फुटपाथ के ऊपर एक छतरी हाथ में लिए हुए मास्टर टहल रहे हैं। एक बज गया, दो बज गए, ठाकुर नहीं आए। श्रीयुक्त महलानवीस की डिस्पैन्सरी की सीढ़ियों पर बीच-बीच में बैठते हैं; दुर्गापूजा के उपलक्ष्य में लड़कों का आनन्द और आबालवृद्ध सब का व्यस्तभाव देख रहे हैं।

समय तीन का हो गया। कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर की गाड़ी आ गई। गाड़ी से अवतरण करते ही समाज-मन्दिर की ओर देखकर ठाकुर

ने कर जोड़ कर प्रणाम किया। संग में हाजरा तथा और भी दो-एक भक्त हैं। मास्टर ने ठाकुर का दर्शन करके उनकी चरण-वन्दना की। ठाकुर ने कहा, ''मैं शिवनाथ के घर पर जाऊँगा।'' ठाकुर के आने की बात सुनकर देखते ही देखते ब्राह्मभक्त आकर जमा हो गए। वे ठाकुर को साथ लेकर ब्राह्म-मोहल्ले में शिवनाथ के घर के दरवाजे पर उनको ले गए। शिवनाथ घर पर नहीं थे। क्या होगा? देखते-देखते श्रीयुक्त विजय (गोस्वामी), श्रीयुक्त महलानवीस इत्यादि ब्राह्मसमाज के कर्त्ताधर्त्ता आ गए और ठाकुर का स्वागत करके समाजमन्दिर में ले गए। ठाकुर थोड़ा बैठ गए— अभी शिवनाथ आते ही होंगे।

ठाकुर ने आनन्दमय सहास्यवदन आसन ग्रहण किया। वेदी के नीचे जिस स्थान से संकीर्त्तन होता है, उसी स्थान पर बैठने के लिए आसन बिछा दिया गया। विजय आदि अनेक ब्राह्मभक्त सामने बैठ गए।

(साधारण ब्राह्मसमाज और साइनबोर्ड, साकार-निराकार-समन्वय)

श्रीरामकृष्ण *(विजय से सहास्य)*—सुना था कि यहाँ पर साइनबोर्ड है। अन्य मत के लोग यहाँ पर नहीं आ सकते। नरेन्द्र कहता है समाज में जाने का काम नहीं, शिवनाथ के घर में जाना।

''मैं कहता हूँ सब ही उनको पुकारते हैं। द्वेष-अद्वेष की जरूरत नहीं है। कोई कहता है साकार, कोई कहता है निराकार। मैं कहता हूँ, जिसका साकार पर विश्वास है, वह साकार का चिन्तन करे। जिस का निराकार पर विश्वास है, वह निराकार का चिन्तन करे। तो भी कट्टरपन (dogmatism) अच्छा नहीं; अर्थात् यह कहना कि मेरा धर्म ठीक है और सब गलत। 'मेरा धर्म ठीक है; और उनका धर्म ठीक है या गलत, सत्य या मिथ्या, यह मैं समझ नहीं सकता'— यह भाव अच्छा है। क्योंकि ईश्वर का साक्षात्कार किए बिना उनका स्वरूप समझ में नहीं आता। कबीर कहता था, 'साकार मेरी माँ है, निराकार मेरा बाप। काको निन्दों, काको बन्दों, दोनों पल्ले भारी!'

''हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, शाक्त, शैव, वैष्णव, ऋषियों के काल के ब्रह्मज्ञानी और अब के ब्रह्मज्ञानी तुम लोग— सब लोग ही एक वस्तु को माँगते

हो। फिर जो जिसके पेट को सहन होता है, माँ उसी प्रकार व्यवस्था करती हैं। यदि माँ घर में मछली मँगवाए और पाँच बच्चे हों तो सबको ही पुलाव और कलिया नहीं बनाकर देती। सबके पेट समान नहीं हैं। किसी के लिए मछली के झोल की व्यवस्था करती है। किन्तु माँ सबको ही समान प्यार करती है।

''मेरा भाव क्या है, जानते हो? मैं सब प्रकार की मछली खाना पसन्द करता हूँ। मेरा स्त्री-स्वभाव है! *(सब का हास्य)*। मैं माछ भाजी (तली हुई), हल्दी लगा माछ, खटाई वाली माछ, बाटि-चचड़ि (छोटी माछ भुजिया), इत्यादि सब पसन्द करता हूँ। और फिर मुड़िघण्टो (मुरमुरे और मछली वाली तरकारी) भी, कलिया पुलाव भी। *(सब का हास्य)*।

''क्या है, जानते हो? देश-काल-पात्र भेद से ईश्वर ने नाना धर्म बनाए हैं। किन्तु सब मत ही पथ हैं, मत कोई ईश्वर नहीं है। तो भी आन्तरिक भक्ति करने पर एक मत का आश्रय करके उनके पास पहुँचा जाता है। यदि कोई मत आश्रय करके, उसमें भूल रहती है तो आन्तरिक होने पर वे उस भूल को सुधार देते हैं। यदि कोई आन्तरिक जगन्नाथ के दर्शन के लिए निकले, और भूल से दक्षिण दिशा को न जाकर उत्तर को चला जाता है तो फिर अवश्य पथ में कोई बोल देता है, अरे उस ओर मत जाओ— दक्षिण दिशा में जाओ। वह व्यक्ति कभी न कभी जगन्नाथ-दर्शन करेगा ही।

''तथापि दूसरे के मत में गलती है, इस बात की हमें दरकार नहीं। जिनका जगत है, वे सोचते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि जो कुछ भी करके जगन्नाथ-दर्शन हो जाए।

''तब तुम्हारा मत तो खूब अच्छा है। उनको निराकार कहते हो, यह तो अच्छा है। मिश्री की रोटी सीधी करके खाओ, या आड़ी करके खाओ, मीठी ही लगेगी।

''तथापि 'मतुयार' (मतवादी) बुद्धि अच्छी नहीं है। तुमने बहुरूपिए (गिरगिट) की कहानी सुनी है! कोई व्यक्ति बाह्य करने गया था, वृक्ष के ऊपर उसने बहुरूपिया देखा था; मित्रों से आकर बोला मैंने एक लाल गिरगिट

देखा था। उसका पक्का विश्वास है कि बिल्कुल लाल ही है। अन्य एक व्यक्ति उसी वृक्ष के पास से आकर बोला कि एक हरा गिरगिट देखकर आया हूँ। उसका विश्वास है कि एकदम पक्का हरा है। किन्तु जो वृक्ष के नीचे वास करता था, वह बोला, तुम लोग जो कहते हो, सब ठीक है किन्तु वह जानवर कभी लाल, कभी हरा, कभी पीला होता है, कभी कोई भी रंग नहीं होता।

"वेद में उनको सगुण-निर्गुण दोनों ही कहा गया है। तुम लोग निराकार बोलते हो। कट्टरवादी हो, तो वही हो जाओ। एक का ठीक-ठीक पता लग जाएगा तो अन्य का भी पता लग जाएगा। वे ही जनवा देंगे। तुम लोगों को, जो-जो यहाँ पर आते हो, वह इनको भी जानता है, उनको भी जानता है।" *(दो-एक जन ब्राह्म भक्तों की ओर उंगली से निर्देश)*।

द्वितीय परिच्छेद

(विजय गोस्वामी के प्रति उपदेश)

विजय तब तक भी साधारण ब्राह्मसमाज के अन्तर्गत हैं; उसी ब्राह्मसमाज में वेतन-भोगी एक आचार्य हैं। आजकल वे ब्राह्मसमाज के सब नियम मानकर नहीं चल पा रहे हैं। साकारवादियों के संग भी मिलते हैं। ये सब बातें लेकर साधारण ब्राह्मसमाज के प्रबन्धकर्त्ताओं के साथ उनका मतान्तर हो रहा है। समाज के ब्राह्मभक्तों में से अनेक ही उनके ऊपर असन्तुष्ट हो गए हैं। ठाकुर हठात् विजय को लक्ष्य करके फिर और कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(विजय के प्रति, सहास्य)*— तुम साकारवादियों के संग में मिलते-जुलते हो, इससे तुम्हारी बड़ी निन्दा हो रही है। जो भगवान का भक्त है, उसकी कूटस्थ बुद्धि होनी चाहिए। जैसे लुहारशाला की निहाई होती है। हथौड़े की मार अनवरत पड़ती है, तथापि निर्विकार। असज्जन तुम्हें कितना ही कुछ कहेंगे, निन्दा करेंगे, तुम यदि आन्तरिक भगवान को चाहते हो, तुम

सब सहन करोगे। दुष्ट लोगों के बीच रहकर क्या फिर ईश्वर-चिन्तन नहीं होता? देखो ना, ऋषि वन के बीच ईश्वर-चिन्तन करते थे। चारों ओर बाघ, भालु, नाना हिंसक जन्तु। असज्जनों का बाघ-भालु का स्वभाव होता है; पीछे से आकर अनिष्ट करता है।

''इन कई-एक के पास सावधान रहना चाहिये।

''प्रथम, बड़ा मनुष्य। रुपये पैसे वाले लोग अनेक होते हैं, इच्छा होने से ही तुम्हारा अनिष्ट कर सकता है; उनके साथ सावधानी से बातें करनी चाहिएँ। हो सकता है वह कुछ कहे, तुम्हें हामी भरनी चाहिए! फिर कुत्ता। जब कुत्ते को भगाने पर भी पीछा करता है या घेउ-घेउ करता है, भौंकता है, तब खड़े होकर मुख से आवाज करके उसे ठण्डा करना चाहिए। फिर साँड— सींग मारने आने पर, उसको भी आवाज से ठण्डा करना चाहिए। फिर माताल (पागल), उसे यदि नाराज कर दो, तो वह फिर कहेगा तेरे चौदह पुरुष, तेरा यह, तेरा वह हो, कह-कह कर गालियाँ देगा। उससे कहना चाहिए, क्यों चाचा, कैसे हो? तो फिर बहुत खुश होगा, तुम्हारे पास बैठ कर तम्बाकू भी पी लेगा।

''असत् व्यक्ति देखकर मैं सावधान हो जाता हूँ। यदि कोई आकर कहता है, अरे हुक्का-शुक्का है? मैं कहता हूँ, है।

''किसी-किसी का साँप का स्वभाव होता है। तुम्हें पता नहीं, वह तुम्हारे ऊपर मुख से आक्रमण करेगा (छोबल देगा)। इस आक्रमण को सम्भालने के लिए अनेक विचार लाने पड़ेंगे। विचार न लाकर तुम्हें इतना क्रोध आ गया कि उसे फिर उल्टा तुम्हारा और भी अनिष्ट करने की इच्छा हो जाती है।

''इसीलिए बीच-बीच में सत्संग बड़ा दरकार है। सत्संग करने पर ही फिर सत्-असत् विचार आता है।''

विजय— अवसर नहीं है, यहाँ पर कार्य में आबद्ध रहता हूँ।

श्रीरामकृष्ण— तुम आचार्य हो; दूसरों की छुट्टी हो जाती है, किन्तु आचार्य की छुट्टी नहीं। नायब (गुमाश्ता) के एक तरफ का शासन कर लेने पर

जमींदार और एक तरफ शासन करने भेज देता है। तभी तुम्हें छुट्टी नहीं है। *(सब का हास्य)*।

विजय *(हाथ जोड़कर)*— आप थोड़ा आशीर्वाद करें।

श्रीरामकृष्ण— यह तो सब अज्ञान की बात है। आशीर्वाद ईश्वर करेंगे।

(गृहस्थ ब्रह्मज्ञानी को उपदेश— गृहस्थाश्रम और संन्यास)

विजय— जी, आप कुछ उपदेश दें।

श्रीरामकृष्ण *(समाज-गृह के चारों ओर देख कर, सहास्य)*— यह एक प्रकार से अच्छा है। सार भी है, मस्ती भी है। *(सब का हास्य)*। मैं अधिक काट कर जल गया हूँ। *(सब का हास्य)*। नक्स का खेल जानते हो? सत्रह बिन्दु (points) से अधिक होने पर जल जाता है। एक तरह का ताश का खेल है, जो सत्रह बिन्दु (points) से कम में रहते हैं, जो पाँच में, सात में, दस में रहते हैं, वे चतुर (सयाने) हैं। मैं अधिक काटने से जल गया हूँ।

"केशवसेन ने घर में लैक्चर दिया था। मैंने सुना था। अनेक व्यक्ति बैठे थे। चिक के अन्दर स्त्रियाँ भी थीं। केशवसेन ने कहा, 'हे ईश्वर, तुम आशीर्वाद करो, जिस प्रकार हम भक्ति-नदी में एकदम ही डूब जाएँ।' मैंने हँस कर केशव से कहा, 'भक्ति नदी में यदि एकदम डूब जाओगे, तो फिर चिक के भीतर जो हैं, उनकी क्या दशा होगी? इसलिए एक कर्म करो, डुबकी लगाओगे, और बीच-बीच में किनारे पर आ जाओगे। एकदम डुबकी लगाकर नीचे ही न रह जाना।' यह बात सुनकर केशव और सब के सब ही-ही करके हँसने लगे।

"चलो, वह हो। आन्तरिक होने से संसार में भी ईश्वर-लाभ किया जाता है। 'मैं' और 'मेरा'— यही तो है अज्ञान। हे ईश्वर 'तुम' और 'तुम्हारा'— यही तो है ज्ञान।

"संसार में रहो, जैसे बड़े व्यक्ति के घर की दासी। सब काम करती है, बच्चे को पालती है, बाबू के लड़के को कहती है 'मेरा हरि', किन्तु

मन-मन में खूब जानती है, यह घर मेरा नहीं, यह लड़का भी मेरा नहीं। वह सब काम करती है, किन्तु उसका मन 'देस' में पड़ा रहता है। वैसे ही संसार के सब कर्म करो किन्तु ईश्वर की ओर मन को रखो। और जानो कि गृह, स्त्री, पुत्र इत्यादि मेरे नहीं हैं, ये सब उनके हैं। मैं केवल उनका दास हूँ।

"मैं मन से त्याग करने के लिए कहता हूँ। गृह-त्याग को नहीं कहता। अनासक्त होकर गृह में रहकर, आन्तरिक चाहने पर उनको प्राप्त किया जाता है।"

(ब्राह्मसमाज और ध्यानयोग— Yog—subjective and objective)

(विजय के प्रति)— "मैं आँखें बन्द करके ध्यान किया करता था। उसके बाद सोचने लगा, ऐसे करने से (आँखें बन्द करने से) ईश्वर हैं, और ऐसे करने से (आँखें खोल लेने से) क्या ईश्वर नहीं हैं? नेत्र खोल कर भी देखता हूँ, ईश्वर सर्वभूतों में रह रहे हैं। मनुष्य, जीव-जन्तु, पेड़-पौधे, चन्द्र-सूर्य के मध्य में, जल में, स्थल में, सर्वभूतों में वे हैं।

(शिवनाथ— श्रीयुक्त केदार चैटर्जी)

"क्यों शिवनाथ को पसन्द करता हूँ? क्योंकि वह अनेक दिन से ईश्वर-चिन्तन करता है, उसके भीतर सार है। उसके भीतर ईश्वर की शक्ति है। और फिर जो अच्छा गाता है, अच्छा बजाता है, कोई एक विद्या खूब अच्छी तरह जानता है, उसके भीतर भी सार है। ईश्वर की शक्ति है। यही तो गीता का मत है।* चण्डी में है, जो बहुत सुन्दर है, उसके भीतर भी सार है; ईश्वर की शक्ति है।

(विजय के प्रति) आहा! केदार का कैसा स्वभाव हो गया है! आते ही रोता है! आँखें सर्वदा ही मानो छानाबड़ा (पनीर का तला हुआ बड़ा) बनी रहती हैं।"

---

* यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥ (गीता 10:41)

विजय— वहाँ पर* तो केवल आप की ही बातें होती हैं। और वह आप के पास आने के लिए व्याकुल है!

कुछ देर बाद ठाकुर उठे। ब्राह्मभक्तों ने नमस्कार किया। उन्होंने भी लोगों को प्रणाम किया। ठाकुर गाड़ी में बैठ गए। अधर के घर में प्रतिमा-दर्शन करने के लिये जा रहे हैं।

---

* केदारनाथ चैटर्जी, परम भक्त, तब सरकारी काम के उपलक्ष्य में ढाका में थे। श्री विजय गोस्वामी जब ढाका में कभी-कभी जाते थे, तब उनके साथ मिलना हुआ था। दोनों ही भक्त हैं, परस्पर दर्शन-आनन्द मनाते हैं।

षोडश खण्ड

राम के घर में भक्तों के संग श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(महाष्टमी के दिन राम के घर में श्रीरामकृष्ण)

आज रविवार, महाष्टमी, 28 सितम्बर, 1884 ईसवी। ठाकुर श्रीरामकृष्ण प्रतिमा–दर्शन करने कलकत्ता आए हैं। अधर के घर शारदीय दुर्गोत्सव हो रहा है। ठाकुर को तीन दिन का निमंत्रण है। अधर के घर प्रतिमा–दर्शन करने के पहले राम के घर जा रहे हैं। विजय, केदार, राम, सुरेन्द्र, चुनिलाल, नरेन्द्र, निरंजन, नाराण, हरीश, बाबूराम, मास्टर इत्यादि अनेक जन उपस्थित हैं। बलराम और राखाल अभी वृन्दावन धाम में वास कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(विजय और केदार की ओर देखते हुए, सहास्य)*— आज खूब मिले हैं! दोनों ही एक भाव के भावी।

(विजय के प्रति) हाँ जी, शिवनाथ ? आप—

विजय— जी हाँ, उन्होंने सुन लिया है। मुझे नहीं मिले। फिर भी मैंने संवाद भेज दिया था, और उन्होंने सुन भी लिया है।

ठाकुर शिवनाथ के घर गए थे उनसे मिलने के लिए, किन्तु मिलना नहीं हो पाया था। पीछे विजय ने संवाद दे दिया था, किन्तु शिवनाथ अधिक कार्य के कारण मिल नहीं सके।

श्रीरामकृष्ण *(विजय आदि के प्रति)*— मन में चार साधें (तीव्र इच्छाएँ) उठी थीं :

''बैंगन डालकर मछली का झोल खाऊँ। शिवनाथ के संग मिलूँ। हरिनाम की माला लाकर भक्तलोग जपें, मैं देखूँ। और आठ आने का 'कारण' अष्टमी के दिन तन्त्र के साधकगण पान करें, वह देखूँ और प्रणाम करूँ।''

नरेन्द्र सामने बैठे हैं। अब आयु 22/23। बातें करते-करते ठाकुर की दृष्टि नरेन्द्र के ऊपर पड़ी। ठाकुर खड़े हो गए और समाधिस्थ हो गए। नरेन्द्र के घुटने पर एक पैर बढ़ा कर उसी भाव में खड़े हैं। सम्पूर्ण बाह्यशून्य, चक्षु स्पन्दनहीन!

(God impersonal and personal— सच्चिदानन्द और कारणानन्दमयी— राजर्षि और ब्रह्मर्षि! ईश्वरकोटि और जीवकोटि— नित्यसिद्ध की श्रेणी)

काफी देर के बाद समाधि भंग हुई। अभी भी आनन्द का नशा गया नहीं है। ठाकुर अपने-आप बातें कर रहे हैं, भावस्थ होकर नाम कर रहे हैं। कह रहे हैं— सच्चिदानन्द! सच्चिदानन्द! सच्चिदानन्द! कहूँ? ना, आज कारणानन्द-दायिनी! कारणानन्दमयी! सा रे गा मा पा धा नी। नी पर रहना अच्छा नहीं, अनेक क्षण रहा भी नहीं जाता। एक स्वर नीचे रहूँगा।

''स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारण! महाकरण में जाकर चुप! वहाँ पर बातें नहीं चलतीं!

''ईश्वरकोटि महाकारण में जाकर लौट कर आ सकता है। अवतार आदि ईश्वरकोटि। वे ऊपर चढ़ते हैं, और फिर नीचे भी आ सकते हैं। अनुलोम, विलोम। सात मंजिल का घर है, कोई बाहिर के घर तक ही जा सकता है। राजा का बेटा अपनी सात मंजिलों में ही घूम-फिर सकता है।

''एक ऐसा अनार (आतिशबाजी) है कि एक बार एक प्रकार के फूल छोड़ता है, तब फिर थोड़ी देर में और एक प्रकार के बनाता है, फिर और एक

प्रकार के। उसका नाना प्रकार के फूल बनाना समाप्त नहीं होता।

"और एक प्रकार का अनार (आतिशबाजी) है, आग लगाने के थोड़ा-सा बाद ही भस् करके, चढ़कर टूट जाता है! यदि साध्यसाधना करके ऊपर जाता है तो फिर आकर खबर नहीं देता। जीवकोटि की, साध्यसाधना करके, समाधि तो हो सकती है; किन्तु समाधि के पश्चात् नीचे आता नहीं या आकर खबर दे सकता नहीं।

"एक है, नित्यसिद्ध की श्रेणी। वे जन्म से ही ईश्वर को चाहते हैं, संसार की कोई वस्तु उन्हें अच्छी नहीं लगती। वेद में है, होमा पक्षी की कथा। यह पक्षी खूब ऊँचे आकाश में रहता है। उसी आकाश में अण्डा देता है। इतना ऊपर होता है कि अण्डा बहुत दिनों तक गिरता रहता है। गिरते-गिरते अण्डा फूट जाता है। तब चूजा गिरता रहता है। अनेक दिन गिरता रहता है। गिरते-गिरते आँखें खुल जाती हैं। जब धरती के निकट आता है, तब उसको चैतन्य हो जाता है। तब समझ लेता है कि मिट्टी शरीर को छूते ही मृत्यु हो जाएगी। पक्षी चीत्कार करके माँ की ओर सीधी तेज़ दौड़ लगाता है। धरती पर मृत्यु है, धरती देखते ही भय हुआ है! अब माँ को चाहता है! माँ उसी ऊँचे आकाश पर है। उसी ओर सीधी तीव्र दौड़! और किसी भी ओर दृष्टि नहीं।

"अवतार के संग में जो आते हैं, वे हैं नित्य सिद्ध अथवा किसी का शेष जन्म है।

(विजय के प्रति)— "तुम लोगों के दोनों ही हैं— योग और भोग। जनक राजा का भोग भी था, योग भी था। तभी जनक राजर्षि, राजा-ऋषि, दोनों ही। नारद देवर्षि। शुकदेव ब्रह्मर्षि।

"शुकदेव ब्रह्मर्षि, शुकदेव ज्ञानी नहीं, ज्ञान की घनमूर्ति। ज्ञानी किसको कहते हैं? ज्ञान जिसे हो गया है— साध्यसाधना करके ज्ञान हुआ है। शुकदेव ज्ञान की मूर्ति अर्थात् ज्ञान का ठोस ढेर— ऐसे ही हो गया, साध्यसाधना करके नहीं।"

बातें करते-करते ठाकुर श्रीरामकृष्ण प्रकृतिस्थ हो गए। अब भक्तों के

साथ बातें कर सकेंगे।

केदार को गाना गाने के लिए कहा। केदार गा रहे हैं—

(1) मनेर कथा कइबो कि सइ कइते माना।
दरदी नइले प्राण बाँचे ना॥
मनेर मानुष होय जे जाना,
ओ तार नयनेते जाय गो चेना, से दुइ एक जना।
भावे भासे रसे डुबे, ओ से उजान पथे करे आनागोना॥
(भावेर मानुष उजान पथे करे आनागोना।)

[भावार्थ— हे सखि! मन की बात क्या कहूँ, कहनी मना है। दरदी बिना मिले प्राण नहीं बच रहा। जो मन को जानने वाला मनुष्य हो, तो जानता है। वह अपने नेत्रों से पहचाना जाता है, वे कोई एक-दो जन ही होते हैं। वह भाव में तैरता है, आनन्द-रस में डूबा रहता है; वह मनुष्य उजान (ऊँचे) पथ पर आना-जाना करता रहता है। (भाव का मनुष्य ही उजान पथ पर आना-जाना करता है।)]

(2) गौर प्रेमेर ढेउ लेगेछे गाय।
तार हिल्लोले पाषण्ड-दलन ए ब्रह्माण्ड तलिये जाय॥
मने करि डूबे तलिये रइ,
गौरचाँदेर प्रेम-कुमीरे गिलेछे गो सई।
एमन व्यथार व्यथी के आर आछे
हात धरे टेने तोलाय॥

[भावार्थ— शरीर पर गौर (चैतन्य महाप्रभु) के प्रेम की लहरें लग गई हैं। उसकी हिल्लोलें पाषण्ड को दलन करती हुई ब्रह्माण्ड को डुबा रही हैं। मन करता है डूबकर तले में रह जाऊँ पर वहाँ भी अरि सखि, मेरे मन को गौर रूपी चाँद के प्रेम रूप मगरमच्छ ने निगल लिया है। क्या कोई इस व्यथा को जानने वाला दर्दी है जो हाथ पकड़ कर निकाल लेगा?]

(3) जे जन प्रेमेर घाट चेने ना।

[भावार्थ— जो जन प्रेम के घाट को नहीं पहचानता।]

गाने के बाद फिर ठाकुर भक्तों के साथ और बातें करते हैं। श्रीयुक्त

केशवसेन के भतीजे नन्दलाल उपस्थित हैं। वे और उनके दो-एक ब्राह्मबन्धु ठाकुर के पास बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(विजयादि भक्तों के प्रति)*— कारण (शराब) की एक बोतल कोई लाया था, मैं छूने लगा, फिर छू नहीं सका।

विजय— आहा!

श्रीरामकृष्ण— सहजानन्द होने पर तो वैसे ही नशा हो जाता है। मद खाना नहीं पड़ता। माँ का चरणामृत देखकर मुझे नशा हो जाता है। बिल्कुल वैसा जैसे पाँच बोतल शराब पीने पर हो जाता है।

(ज्ञानी और भक्तों की अवस्था—
ज्ञानी और भक्त के आहार के नियम)

''इस अवस्था में हर समय हर प्रकार का आहार नहीं चलता।''

नरेन्द्र— खाने-पीने के समय यदृच्छालाभ ही अच्छा है।

श्रीरामकृष्ण— अवस्था विशेष में वैसा होता है। ज्ञानी के लिए तो किसी में भी दोष नहीं है। गीता के मत में ज्ञानी आप नहीं खाता, कुण्डलिनी को आहुति देता है।

''भक्त के लिए वह नहीं है। मेरी अब की अवस्था है कि मैं ब्राह्मण के द्वारा दिए बिना भोग नहीं खा सकता। पहले ऐसी अवस्था थी कि दक्षिणेश्वर के उस पार से मरे-जले हुए मुर्दों की जो गन्ध आया करती थी, उस गन्ध को नाक द्वारा खींच लिया करता था, इतनी मीठी लगती थी! अब सब का नहीं खा सकता।

''खा तो चाहे नहीं सकता, किन्तु फिर भी कभी-कभी होता है। केशवसेन के वहाँ पर (नववृन्दावन) थियेटर में मुझे ले गए थे। पूरी और छक्का (सूखी मिर्च मसाले की सब्जी) लाए। वह धोबी या नाई लाया था, पता नहीं। *(सब का हास्य)*। खूब खाया। राखाल ने कहा, 'थोड़ी खाओ।'

(नरेन्द्र के प्रति)— ''तुम्हारा अब होगा। तुम इसमें भी हो, और फिर उसमें भी हो! तुम अब सब-कुछ खा सकोगे।

(भक्तों के प्रति)— ''शूकर-माँस खाकर यदि ईश्वर पर आकर्षण रहता है, वह व्यक्ति धन्य! और हविष्य करके यदि कामिनी-कांचन में मन रहता है, तो फिर उसे धिक्कार है।''

(पूर्व कथा, प्रथम उन्माद में ब्रह्मज्ञान और जातिभेदबुद्धि-त्याग— कामारपुकुर-गमन, धनी लोहारिन, रामलाल का बाप— गोबिन्द राय से अल्लाहमन्त्र)

''मेरी लोहारों के घर की दाल खाने की इच्छा थी। बचपन से लोहार कहा करते थे, बामुन क्या पकाना जानते हैं? तभी खा लिया, किन्तु लोहारी-लोहारी गन्ध थी।* *(सब का हास्य)*।

''गोबिन्द राय से अल्लाह-मन्त्र लिया था। कोठी में प्याज डाल कर भात बना। थोड़ा-सा खाया। मणि मल्लिक के (बराहनगर के) बागान में मैंने पकी तरकारी खा ली, किन्तु कैसी एक तरह की घृणा हो गई।

''जब गाँव गया, रामलाल के पिता को भय हो गया, चिन्ता हो गई कि जिस किसी के घर में जाकर खा लेगा। डर हो गया कि कहीं फिर पीछे जात से बाहिर न निकाल दें। इसी कारण मैं अधिक दिन वहाँ रह न सका था, आ गया।''

(वेद, पुराण और तन्त्रमत में शुद्धाचार कैसा)

''वेद-पुराण में शुद्धाचार की बात कही है। वेद-पुराण में जो कहा गया है— 'करो मत, अनाचार होगा'— तन्त्र में फिर उसे (करना) अच्छा कहा गया है।

''कैसी-कैसी अवस्थाएँ ही जा चुकी हैं। मुख को सोचता आकाश-पाताल जुड़ा हुआ है, और 'माँ' बोलता था। मानो, माँ को पकड़कर ला रहा

* ठाकुर अपनी भिक्षामाता लोहारिन के घर गए थे।

हूँ। जैसे जाल डालकर मछलियों को घसीट कर खींच लाना। गाने में है—

ऐबार काली तोमाय खाबो (खाबो खाबो गो दीन दयामयी)
खाबो खाबो बोलि गो मा उदरस्थ ना करिबो॥
एइ हृदिपद्मे बसाइया, मनोमानसे पूजिबो॥
(तारा गण्डयोगे जन्म आमार)
गण्डयोगे जनमिले से होय मा— खेको छेले।
ऐ बार तुमि खाओ कि आमि खाइ मा, दु'टार एकटा कोरे जाबो॥
हाते काली मुखे काली, सर्वांगे काली माखिबो।
जखन आसबे शमन बाँधबे कसे, सेई काली तार मुखे दिबो॥
यदि बोलो काली खेले, कालेर हाते ठेका जाबो।
आमार भय कि ताते, काली बोले कालेरे कला देखाबो॥
डाकिनी योगिनी दिये, तरकारी बनाये खाबो।
मुण्डमाला केड़े निये अम्बले सम्बरा दिबो॥
कालीर बेटा श्रीरामप्रसाद, भालोमते ताइ जानाबो।
ताते मन्त्रेर साधन, शरीर पतन, जा होबार ताइ घटाइबो॥

[भावार्थ— हे काली, अब की बार तुम्हें खा लूँगा। ओ दीन दयामयी, तुम्हें जरूर खाऊँगा। 'खाऊँगा-खाऊँगा' तो कहता हूँ किन्तु उदरस्थ नहीं करूँगा। इस हृदयकमल में बिठा लूँगा और मन द्वारा मानसपूजा करूँगा। (मेरा जन्म गण्डयोग नक्षत्र में हुआ है।) गण्डयोग नक्षत्र में जन्म लेने वाला बालक माँ को खाने वाला होता है। इस बार तुम मुझे खाओगी माँ या मैं तुम्हें खाऊँगा, दो में से एक तो कर ही जाऊँगा। हाथ, मुख— सर्वांग में काली को मल लूँगा। जब यमराज आकर जोर से बाँधेगा, उस स्याही (काली) को उसके मुख पर लगा दूँगा।

यदि कहो कि काली को खाकर मैं काल के हाथ ठगा जाऊँगा, इसका मुझे क्या भय है? मैं उसे काली नाम लेकर अँगूठा दिखा दूँगा। डाकिनी-योगिनियों की तरकारी बना कर खा लूँगा। मुण्डमाला छीनकर अम्बल में छौंक लगा दूँगा। उसको ठीक तरह अवगत करवा दूँगा कि मैं काली का बेटा रामप्रसाद हूँ। उससे मन्त्र का साधन हो या शरीर का पतन, जो भी होना हो, हो जाए, मैं तो यही करूँगा।]

''पागल जैसी अवस्था हो गई थी। यही है व्याकुलता!''

नरेन्द्र गाना गाने लगे—

आमाय दे मा पागल करे (ब्रह्ममयी)।
आर काज नाई ज्ञान विचारे॥

तोमार प्रेम सुरा पाने करो मातोयारा।
ओ मा भक्त चित्तहरा डुबाओ प्रेमसागरे॥
तोमार ए पागला गारदे, केहो हासे केहो कांदे,
केहो नाचे आनन्द भरे।
ईसा मूसा श्री चैतन्य, ओ मा प्रेमेर भरे अचैतन्य,
हाय कबे होबो मा धन्य, (ओ मा) मिशे तार भितरे॥
स्वर्गेते पागलेर मेला, जेमन गुरु तेमनि चेला,
प्रेमेरखेला के बुझते पारे।
तुई प्रेमे उन्मादिनी, ओ मा पागलेर शिरोमणि,
प्रेमधने करो मा धनी, कांगाल प्रेमदासेरे॥

[भावार्थ— ब्रह्ममयी माँ, मुझे पागल कर दो। ज्ञान-विचार का अब और काम नहीं है। अपनी प्रेम की सुरा-पान में मतवाला बना दो। अरी माँ, भक्त के चित्त को हरने वाली, मुझे प्रेम-सागर में डुबो दो। तुम्हारे इस पागलों के जेलखाने में कोई हँसता है, कोई रोता है, कोई आनन्द से गद्गद् हो कर नाचता है।

श्री ईसा, श्री मूसा, श्री चैतन्य, ओ माँ प्रेम से भर कर अचैतन्य हैं। हाय, तुम्हारे में मिलकर मैं कब धन्य होऊँगा? स्वर्ग में पागलों का मेला लगा हुआ है, जैसा गुरु है वैसे ही चेले हैं, प्रेम का खेल कौन समझ सकता है?

ओ माता, तुम प्रेम में उन्मादिनी हो, पागलों की शिरोमणि हो। हे माँ, मुझ कंगाल प्रेमदास को प्रेमधन से धनवान बना दो।]

गाना सुनते-सुनते ठाकुर फिर समाधिस्थ हो गए।

समाधि भंग होने पर ठाकुर गिरिराणी का भाव आरोप करके आगमनी गा रहे हैं। गिरिराणी कहती हैं, अरे पुरवासियो! क्या मेरी उमा आ गई है? ठाकुर प्रेमोन्मत्त होकर गाना गा रहे हैं।

गाने के पश्चात् ठाकुर भक्तों से कहते हैं,
''आज महाष्टमी है कि ना? माँ आई हैं! इसी कारण इतना उद्दीपन हो रहा है!''

केदार— प्रभु! आप ही आए हैं। माँ क्या आपके बिना हैं?

ठाकुर ने अन्य ओर दृष्टि डालकर अनमने भाव से गाना आरम्भ कर दिया—

तारे कै पेलुम सोई, होलाम जार जन्य पागल।
ब्रह्मा पागल, विष्णु पागल, आर पागल शिव॥
तिन पागले युक्ति कोरे भांगलो नवद्वीप।
आर एक पागल देखे एलाम वृन्दावन माझे।
राइके राजा साजाये आपनि कोटाल साजे॥
आर एक पागल देखे एलाम नवद्वीपेर पथे।
राधाप्रेम सुधा बोले, करोया कीस्ति हाते॥

[भावार्थ— हे सखि, उनको मैंने कहाँ पाया है, जिनके लिए मैं पागल हो गई हूँ? ब्रह्मा, विष्णु, शिव तीनों ने पागल होकर नवद्वीप को तोड़ दिया है। और एक पागल को वृन्दावन में देखकर आई हूँ, जो राधा को राजा बनाकर अपने-आप कोतवाल सजा हुआ है। और एक पागल नवद्वीप के रास्ते में देखा है, जो राधा के प्रेम को कड़ुवे तुम्बे (कमण्डल) में सुधा कह कर लिए फिर रहा है।]

और फिर भाव में मस्त होकर ठाकुर गा रहे हैं—

कखनो कि रंगे थाको मा श्यामा, सुधा तरंगिणी।
तुमि रंगे भंगे अपांगे अनंगे भंग दाओ जननि॥
लंफे झंपे कंपे धरा असिधरा करालिनी।
(तुमि) त्रिगुणा त्रिपुरा तारा भयंकरा कालकामिनी॥
साधकेर वांछा पूर्ण करो नाना रूप धारिणी।
(कभु) कमलेर कमले नाचो मा पूर्णब्रह्म सनातनी॥

[भावार्थ— हे श्यामा! तुम अमृतमयी लहरों के समान हो। कौन जाने कि तुम कब किस रंग में रहती हो। हे जननि! तुम अपनी रंग-भंगी से कामदेव के कटाक्ष को नष्ट कर देती हो। हे खड्गधारिणी, करालिनी, तुम्हारे लम्फ-झम्प (उछल-कूद) से सारी पृथ्वी काँप उठती है। तुम त्रिगुणा हो, तुम त्रिपुरा हो, तुम तारा हो, तुम भयंकरा हो और कालकामिनी हो। नाना रूप धारण करने वाली माँ! तुम भक्तों की आकांक्षा पूर्ण करने वाली हो। हे पूर्णब्रह्म सनातनी माँ! कभी तो तुम कमलाकांत के हृत्कमल में नाचो।]

ठाकुर गाना गा रहे हैं। हठात् 'हरिबोल-हरिबोल' बोलते-बोलते विजय खड़े हो गए। ठाकुर श्रीरामकृष्ण भी भावोन्मत्त होकर विजय आदि भक्तों

के संग में नृत्य करने लगे।

द्वितीय परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग में)

कीर्त्तनान्ते ठाकुर श्रीरामकृष्ण, विजय, नरेन्द्र और अन्य भक्तों ने आसन ग्रहण किया। सब की दृष्टि ठाकुर की ओर है। सन्ध्या में कुछ विलम्ब है। ठाकुर भक्तों के संग बातें कर रहे हैं। उनसे कुशल प्रश्न कर रहे हैं। केदार अति विनीत भाव में हाथ जोड़कर अति मृदु और मीठी बोली में ठाकुर के पास कुछ निवेदन कर रहे हैं। निकट नरेन्द्र, चुनि, सुरेन्द्र, राम, मास्टर और हरीश हैं।

केदार *(श्रीरामकृष्ण के प्रति, विनीत भाव में)*— सिर का घूमना किस तरह हटेगा?

श्रीरामकृष्ण *(सस्नेह)*— वह होता ही है, मुझे हुआ था! थोड़ा-थोड़ा बादाम रोगन लगाना। सुना है, लगाने से हट जाता है।

केदार— जो, आज्ञा।

श्रीरामकृष्ण *(चुनि के प्रति)*— क्यों भाई, तुम सब कैसे हो?

चुनि— अब सब मंगल है। वृन्दावन में बलराम बाबू, राखाल— वे लोग सब अच्छे हैं।

श्रीरामकृष्ण— तुमने इतना 'सन्देश' क्यों भेजा?

चुनि— जी, वृन्दावन से अब आया हूँ—

चुनिलाल बलराम के संग में श्री वृन्दावन में गए थे। और कई मास थे। छुट्टी समाप्त हो गई है, जभी अब कलकत्ता लौटे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(हरीश के प्रति)*— तू दो दिन बाद जाइयो। बीमार हो गया था, फिर जाकर वहाँ पर पड़ेगा।

(नारायण के प्रति, सस्नेह)— बैठ, पास आकर बैठ। कल जाइयो— जाकर

वहाँ पर खाइयो। *(मास्टर को दिखलाकर)* इसके संग जाओगे? *(मास्टर के प्रति)* क्यों जी?

मास्टर की उसी दिन ही ठाकुर के संग में जाने की इच्छा है। तभी सोच रहे हैं। सुरेन्द्र बहुत देर रहे थे, बीच में एक बार घर चले गए थे। घर से आकर फिर ठाकुर के पास खड़े हैं।

सुरेन्द्र कारण पान करते हैं। पहले बहुत अधिक था। ठाकुर सुरेन्द्र की अवस्था देखकर चिन्तित हो गए थे। एकदम शराब-पान त्याग करने के लिए नहीं कहा। कहा था— सुरेन्द्र! देख, जो खाएगा, ठाकुर को निवेदन कर दियो। और जैसे सिर हिले ना और पैर लड़खड़ाए ना। उनका चिन्तन करते-करते तुम्हें पान करना फिर और अच्छा नहीं लगेगा। वे कारणानन्द-दायिनी हैं। उनको प्राप्त कर लेने पर सहजानन्द होता है।

सुरेन्द्र पास खड़े हैं। ठाकुर उनकी ओर दृष्टिपात करके बोल उठे, 'तुम ने कारण पिया है?' कहते ही भाव में हो गए।

सन्ध्या हो गई। थोड़ा-सा बाह्यलाभ करके (होश में आकर) ठाकुर माँ का नाम करके आनन्द में गाना गाने लगे—

शिव संगे सदारंगे आनन्द मगना,
सुधापाने ढल-ढल ढले किन्तु पड़े ना (माँ)।
विपरीत रतातुरा, पदभरे काँपे धरा,
उभये पागलेर पारा, लज्जा भय आर माने ना (माँ)।

[भावार्थ— माँ शिव के संग सदा आनन्द में मग्न हैं। अमृत रूपी सुधा पीकर डगमगा तो रही हैं परन्तु गिरती नहीं हैं। प्रेम में आतुर हुई के पद उठाने से धरती काँपती है। दोनों का पागलों का घेरा है। लज्जा और भय कोई नहीं मानता।]

सन्ध्या हो चुकी है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण हरिनाम कर रहे हैं। बीच-बीच में ताली बजा रहे हैं। सुस्वर में कह रहे हैं—

हरिबोल, हरिबोल, हरिमय हरिबोल, हरि हरि हरिबोल।

और फिर राम-नाम कर रहे हैं—

राम, राम, राम! राम, राम! राम, राम।

(ठाकुर की प्रार्थना— How to pray)

ठाकुर अब प्रार्थना कर रहे हैं—

''ओ राम! ओ राम! मैं भजनहीन, साधनहीन, भक्तिहीन, मैं क्रियाहीन हूँ! राम शरणागत! ओ राम शरणागत! देह-सुख नहीं चाहता राम! लोकमान्य नहीं चाहता राम, अष्टसिद्धि नहीं चाहता राम! शतसिद्धि नहीं चाहता राम, शरणागत, शरणागत! केवल इतना करो— जैसे तुम्हारे श्रीपादपद्मों में शुद्धा भक्ति हो जाय राम! और जैसे तुम्हारी भुवनमोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ राम! ओ राम, शरणागत!''

ठाकुर प्रार्थना कर रहे हैं, सब एकटक उनकी ओर निहार रहे हैं। उनका करुणा भरा स्वर सुनकर अनेक जन अश्रु संवरण नहीं कर पा रहे हैं।

राम निकट खड़े हैं।

श्रीरामकृष्ण *(राम के प्रति)*— राम, तुम कहाँ पर थे?

राम— जी, मैं ऊपर था।

ठाकुर और भक्तों की सेवा के लिए राम ऊपर आयोजन कर रहे थे।

श्रीरामकृष्ण *(राम के प्रति, सहास्य)*— ऊपर रहने की अपेक्षा नीचे रहना क्या अच्छा नहीं? नीची जमीन पर जल ठहरता है, ऊँची जमीन से जल बह जाता है।

राम *(हँसते-हँसते)*— जी, हाँ।

छत पर पत्तलें पड़ गईं। रामचन्द्र ठाकुर और भक्तों को ले गए और खूब परितोषपूर्वक खिलाया। उसके बाद ठाकुर श्रीरामकृष्ण निरंजन, मास्टर आदि के संग अधर के घर चले गए। वहाँ पर माँ आई हुई हैं। आज है महाष्टमी! अधर की विशेष प्रार्थना है कि ठाकुर उपस्थित रहेंगे, तभी उनकी पूजा सार्थक होगी।

सप्तदश खण्ड

दक्षिणेश्वर में नवमीपूजा के दिन भक्तों के संग में श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्ण, नरेन्द्र, भवनाथ आदि के संग में)

आज नवमीपूजा—सोमवार, 29 सितम्बर, 1884 ईसवी। अभी-अभी सुबह हुई है। माँ काली की मंगल आरती हो गई है। नहबत से रौशनचौकी प्रभाती रागरागिणी आलाप कर रही है। चंगेरी हाथ में लेकर माली लोग और पूजा की टोकरी हाथ में लिए ब्राह्मणगण फूल चुनने के लिए आ रहे हैं। माँ की पूजा होगी।

श्रीरामकृष्ण अति प्रत्यूष काल में अन्धकार रहते-रहते उठे हैं। भवनाथ, बाबूराम, निरंजन और मास्टर गत रात्रि से यहाँ पर रह रहे हैं। वे लोग ठाकुर के कमरे वाले बरामदे में सोए थे। आँखें खोल कर देखते हैं, ठाकुर मतवाले हुए नृत्य कर रहे हैं। कह रहे हैं— जय जय दुर्गे! जय जय दुर्गे!

ठीक एक बालक! कमर में धोती नहीं। माँ का नाम करते-करते कमरे के बीच में नाचते हुए टहल रहे हैं।

कुछ क्षण पश्चात् फिर और कह रहे हैं— सहजानन्द, सहजानन्द! अन्त में गोविन्द का नाम बार-बार बोल रहे हैं— प्राण हे गोविन्द मम जीवन!

भक्त उठकर बैठे हुए हैं। एकटक ठाकुर का भाव देख रहे हैं। हाजरा भी कालीबाड़ी में हैं। ठाकुर के कमरे के दक्षिणपूर्व वाले बरामदे में उनका आसन है। लाटु भी हैं और ठाकुर की सेवा करते हैं। राखाल इस समय वृन्दावन में हैं। नरेन्द्र बीच-बीच में आकर दर्शन करते हैं। आज नरेन्द्र आएँगे।

ठाकुर के कमरे के उत्तर की ओर के छोटे बरामदे में भक्तगण सोए हुए थे। शीतकाल, जभी टट्टर लगाया हुआ है। सब के मुख धो लेने पर इसी उत्तर वाले बरामदे में ही ठाकुर आकर एक मादुर (चटाई) पर बैठ गए। भवनाथ और मास्टर निकट बैठे हैं। अन्य-अन्य भक्त भी बीच-बीच में आकर बैठ रहे हैं।

(जीवकोटि संशय-आत्मा (Sceptic)— ईश्वरकोटि स्वतः सिद्ध विश्वास)

श्रीरामकृष्ण *(भवनाथ के प्रति)*— जानता है क्या है, जो जीवकोटि हैं, उन्हें विश्वास सहज नहीं होता। ईश्वरकोटि का विश्वास स्वत:सिद्ध होता है। प्रह्लाद 'क' लिखते ही एकदम रोने लगे— कृष्ण की याद आ गई। जीव का स्वभाव— संशयात्मक बुद्धि लिए हुए होता है। वे कहते हैं, हाँ, है तो, किन्तु—

"हाजरा किसी भी प्रकार विश्वास नहीं करेगा कि ब्रह्म और शक्ति, शक्ति और शक्तिमान् अभेद हैं। जब निष्क्रिय हैं तब उनको ब्रह्म नाम से कहता हूँ; जब सृष्टि, स्थिति, प्रलय करते हैं, तब शक्ति कहता हूँ। किन्तु वस्तु एक ही है; अभेद। अग्नि कहने से ही दाहिका शक्ति का तुरन्त ख्याल आता है। दाहिका शक्ति कहते ही अग्नि की याद आ जाती है। एक को छोड़कर दूसरी को सोच ही नहीं सकता।

"तब प्रार्थना की थी— माँ, हाजरा यहाँ का मत उलट देने की चेष्टा करता है। या तो उसको समझा दे, नहीं तो यहाँ से हटा दे। उसके अगले दिन वह फिर आकर कहने लगा, 'हाँ मानता हूँ।' तब बोला कि विभु सब जगहों पर है।"

भवनाथ *(सहास्य)*— हाजरा की इस बात पर आप को इतना कष्ट बोध हुआ था?

श्रीरामकृष्ण— मेरी अवस्था बदल गई है। अब लोगों के साथ वाद-विवाद नहीं कर सकता। हाजरा के साथ मैं तर्क-झगड़ा करूँ, वैसी अवस्था अब मेरी नहीं है। यदु मल्लिक के बाग में हृदे* ने कहा था, 'मामा, मुझे रखने की क्या तुम्हारी इच्छा नहीं है?' मैंने कहा, 'नहीं, वह अवस्था अब मेरी नहीं है, अब तेरे साथ तर्क-झगड़ा करने योग्य मैं नहीं हूँ।'

(पूर्वकथा— कामारपुकुर में श्रीरामकृष्ण— जगत चैतन्यमय— बालक का विश्वास)

"ज्ञान और अज्ञान किसको कहते हैं?— जब तक ईश्वर दूर हैं, यह बोध रहता है, तब तक अज्ञान है; जब तक यहाँ हैं, यह बोध है, तब तक ज्ञान है।

"जब ठीक ज्ञान हो जाता है, तब सब चीजें चैतन्यमय बोध होती हैं। मैं शिबु के संग में आलाप किया करता था। शिबु तब छोटा बालक था। चार-पाँच वर्ष का होगा। उस देश (कामारपुकुर) में था। मेघ गरज रहा था, बिजली चमक रही थी। शिबु कहने लगा, चाचा! वह चकमक फेंक रहा है! *(सब का हास्य)*। एक दिन देखा, वह अकेला फतिंगे पकड़ने जा रहा था। पास के वृक्ष के पत्ते हिल रहे थे। तब पत्ते को कहता है— चुप-चुप, मैं फतिंगा पकड़ूँगा। बालक सब चैतन्यमय देख रहा है! सरल विश्वास, बालक का विश्वास न हो तो भगवान नहीं मिलते।

"ओह, मेरी कैसी अवस्था थी! एक दिन घास-वन में कुछ काट गया था। तब डर लगा, यदि साँप काट गया हो! तब क्या करूँ? सुना था, फिर दोबारा यदि काट ले तो विष उठा लेता है। झट से उसी स्थान पर बैठ कर गड्ढे में खोजने लगा, जिससे फिर दोबारा काट ले। वैसा कर रहा था तो एक

---

* हृदे = हृदय को तब बाग में आने का हुकुम नहीं था। मालिकगण उस पर असन्तुष्ट हो गए थे। हृदय की इच्छा थी कि ठाकुर उनसे कह कर फिर दोबारा उसे कार्य में लगवा दें। हृदय ठाकुर की खूब सेवा किया करते थे किन्तु कटु वाक्य भी बोल दिया करते थे। ठाकुर बहुत सहन करते थे। बीच-बीच में खूब तिरस्कार भी किया करते थे।

व्यक्ति ने पूछा क्या कर रहे हो? सब सुनकर वह बोला, ठीक उसी स्थान पर काटना चाहिए, जहाँ पर पहले काटा है। तब उठकर आ गया। शायद किसी बिच्छू-शिच्छू ने काटा था।

"और एक दिन रामलाल से सुना था, शरत् की हिम अच्छी होती है। क्या एक श्लोक है, रामलाल ने कहा था। मैंने कलकत्ता से गाड़ी में आते समय गर्दन बाहिर निकाल ली थी, ताकि सारी हिम लग जाए। उसके बाद असुख हो गया।" *(सब का हास्य)*।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और औषध)

अब ठाकुर कमरे में आकर बैठ गए। उनके दोनों पाँव थोड़े-थोड़े फूले-फूले-से हुए थे। भक्तों को हाथ लगाकर देखने के लिए कहा कि उंगली से दबाने पर गढ़ा पड़ता है कि नहीं। थोड़ा-थोड़ा-सा गढ़ा पड़ने लगा; किन्तु सब ही कहने लगे, यह कुछ नहीं है।

श्रीरामकृष्ण *(भवनाथ से)*— तू सींथी के महेन्द्र को बुला दे। उसके कहने पर मेरा मन ठीक होगा।

भवनाथ *(सहास्य)*— आप का औषध में खूब विश्वास है। हमारा इतना नहीं।

श्रीरामकृष्ण— औषध उनकी ही है। वे ही एक रूप में चिकित्सक हैं। गंगाप्रसाद ने कहा, आप रात को जल मत पीना। मैंने वही बात वेदवाक्य की तरह पकड़ रखी थी। मैं जानता हूँ, वे साक्षात् धन्वन्तरि हैं।

द्वितीय परिच्छेद

(नरेन्द्र, भवनाथ आदि के बीच में समाधिस्थ)

हाजरा आकर बैठ गए। इधर-उधर की बातों के पश्चात् ठाकुर ने हाजरा से कहा—

"देख, कल राम के घर में इतने सारे लोग बैठे थे, विजय, केदार— ये लोग;

तब भी नरेन्द्र को देखकर इतना क्यों हुआ ? केदार, मैंने देखा, कारणानन्द का घर है।''

ठाकुर कल महाष्टमी के दिन, प्रतिमा-दर्शन के लिए कलकत्ता गए थे। अधर के घर प्रतिमा-दर्शन करने से पहले ही राम के घर गए थे। वहाँ पर बहुत-सारे भक्त समवेत हुए थे। नरेन्द्र को देखकर ठाकुर समाधिस्थ हो गए थे। नरेन्द्र के घुटने के ऊपर पाँव बढ़ा दिया था, और खड़े-खड़े समाधिस्थ हो गए थे।

देखते-देखते नरेन्द्र आ उपस्थित हुए— ठाकुर के आनन्द की फिर सीमा नहीं रही। नरेन्द्र ठाकुर को प्रणाम के पश्चात् भवनाथ आदि के साथ उसी कमरे में कुछ बातें करते हैं। पास में मास्टर हैं। कमरे के बीच में लम्बी मादुर बिछी हुई है। नरेन्द्र बातें करते-करते औंधे (उल्टे) होकर मादुर के ऊपर लेट गए हैं। हठात् उनको देखते-देखते ठाकुर को समाधि हो गई— उनकी पीठ पर बैठ गए; समाधिस्थ!

भवनाथ गाना गा रहे हैं—

गो आनन्दमयी होये मा आमाय निरानन्द कोरो ना।*

ठाकुर की समाधि भंग हो गई। ठाकुर गा रहे हैं—

कखनो कि रंगे थाको मा, श्यामा सुधा तरंगिणी।

[भावार्थ— हे माँ, कब किस रंग में रहती हो तुम, हे श्यामा सुधा तरंगिणी!]

ठाकुर फिर गा रहे हैं—

बोल रे श्रीदुर्गा नाम।
(ओरे आमार आमार आमार मन रे)।
नमो नमो नमो गौरी, नमो नारायणि!
दुःखी दासे करो दया तबे गुण जानि॥
तुमि सन्ध्या, तुमि दिवा, तुमि गो यामिनी।
कखनो पुरुष होओ मा, कखनो कामिनी॥

---

* सम्पूर्ण गान तथा भावार्थ के लिए इसी ग्रन्थ का पृष्ठ 66 देखिए।

रामरूपे धरो धनु मा, कृष्णरूपे बाँशी।
भुलालि शिवेर मन मा होये एलोकेशी॥

दश महाविद्या तुमि मा, दश अवतार।
कोनोरूपे एइबार आमारे करो मा पार॥

यशोदा पुजियेछिलो मा जवा विल्वदले।
मनोवांछा पूर्ण कैलि कृष्ण दिये कोले॥

जेखाने सेखाने थाकि मा, थाकि गो कानने।
निशि दिन मन थाके जेनो मा रांगाचरणे॥

जेखाने सेखाने मरि मा, मरि गो विपाके।
अन्तकाले जिह्वा जेनो मा, श्रीदुर्गा बोले डाके॥

यदि बोलो जाओ जाओ मा, जाबो कार काछे।
सुधामाखा तारा नाम, मा आर कार आछे॥

यदि बोलो छाड़ो-छाड़ो मा, आमि ना छाड़िबो।
बाजन नूपुर होये मा तोर चरणे बाजिबो॥

जखन बोशिबे मागो शिव सन्निधाने।
जय शिव जय शिव बोले, बाजिबो चरणे॥

चरणे लिखिते नाम आँचड़ यदि जाय।
भूमिते लिखिये थुइ नाम, पद दे गो ताय॥

शंकरी होइये मागो गगने उड़िबे।
मीन होये रबो जले मा नखे तुले लबे॥

नखाघाते ब्रह्ममयी जखन जाबे गो पराणी।
कृपा करे दिओ मा गो रांगा चरण दुखानि॥

पार करो ओ मा काली, कालेर-कामिनी।
तरावारे दुटि पद करेछो तरणी॥

तुमि स्वर्ग, तुमि मर्त्य, तुमि गो पाताल।
तोमा होते हरि ब्रह्मा द्वादश गोपाल॥

गोलोके सर्वमंगला, ब्रजे कात्यायनी।
काशी ते मा अन्नपूर्णा अनन्तरूपिणी॥

दुर्गा–दुर्गा–दुर्गा बोले, जेबा पथे चले जाय।
शूलहस्ते शूलपाणि रक्षा करेन ताय॥

[भावार्थ— ओ मेरे मन, तू दुर्गा–दुर्गा नाम बोल। नमे–नमो नमो गौरी, नमो नारायणि। जब तुम इस दुःखी दास के ऊपर दया करोगी तब ही तुम्हारी शक्ति को जानूँगा। तुम ही सन्ध्या, तुम ही दिवा, तुम ही यामिनी हो। कभी पुरुष बनती हो और कभी कामिनी। राम–रूप में धनुष धारण करती हो और कृष्ण–रूप में बाँसुरी। तुम ने खुले बालों वाली (ऐलोकेशी) होकर शिव का मन हरण कर लिया है। हे माँ, तुम ही दसों महाविद्या तथा दसों अवतार हो। तुम किस रूप में मुझे अब की बार पार करोगी? यशोदा ने ओ माँ, तुम्हें जवा और विल्वदलों से पूजा था। तुमने कृष्ण को गोद में देकर उसकी मनोवांछा पूर्ण कर दी थी। जहाँ कहीं भी रहता हूँ माँ, मैं तो 'कानन' में ही रहता हूँ। रात–दिन मेरा मन जैसे भी हो, तुम्हारे लाल चरणों में ही रहे! जहाँ कहीं भी किसी भी मुसीबत से मरूँ, अन्तकाल में माँ जैसे भी हो, श्री दुर्गा कह कर ही पुकारूँ। यदि तुम कहती हो कि मैं चला जाऊँ तो जाऊँ भी किस के पास? हे माँ, ऐसा अमृत भरा नाम 'तारा' और किसका है? यदि कहो छोड़, छोड़, किन्तु मैं नहीं छोड़ूँगा। हे माँ, मैं तेरे चरणों का नूपुर बनकर बजूँगा। जब तुम शिव के संग बैठोगी, तब मैं जय शिव, जय शिव, कह कर तुम्हारे चरणों में बजूँगा। चरणों में नाम लिखने से यदि तुम्हारे पाँव में खरोंच आ जाती है तो मैं धरती पर नाम लिखकर रख देता हूँ, तुम उस पर अपना पद रख दो। माँ, तुम शंकरी (चील) बनकर गगन में उड़ोगी तो मैं मीन बनकर जल में रहूँगा, तुम अपने नखों से उठा लेना। नख की चोट से ऐ ब्रह्ममयी माँ, जब यह प्राण जाएगा तब कृपा करके अपने ये दोनों लाल चरण दे देना। ओ माँ, काल की कामिनी काली, मुझे पार करो। तारने के लिए तुमने अपने दोनों चरणों को नाव बना रखा है। तुम ही स्वर्ग, तुम ही मर्त्य और तुम ही पाताल हो। हरि, ब्रह्मा, द्वादश गोपाल तुम्हीं से हुए हैं। तुम गोलोक में सर्वमंगला, व्रज में कात्यायनी, काशी में अनन्त रूपिणी अन्नपूर्णा हो। जो जन दुर्गा–दुर्गा–दुर्गा बोल कर मार्ग में चलता है, शूल को हाथ में लेकर हे शूलपाणि! तुम उसकी रक्षा करती हो।]

तृतीय परिच्छेद

(भवनाथ, नरेन्द्रादि के मध्य श्रीरामकृष्ण की समाधि और नृत्य)

हाजरा उत्तरपूर्व वाले बरामदे में बैठे हरिनाम की माला हाथ में लेकर जप कर रहे हैं। ठाकुर सामने आकर बैठ गए और हाजरा की जप की माला

अपने हाथ में ले ली। मास्टर और भवनाथ साथ हैं। समय प्राय: दस का होगा।

श्रीरामकृष्ण *(हाजरा के प्रति)*— देखो, मेरा जप नहीं होता,— ना, ना, होता है— बायें हाथ में कर सकता हूँ, किन्तु उधर (नामजप) नहीं होता।

यह कह कर ठाकुर थोड़ा-सा जप करने की चेष्टा करने लगे। किन्तु जप आरम्भ करने लगते ही एकदम समाधि!

ठाकुर इसी समाधि की अवस्था में काफी देर बैठे रहे। हाथ में जप-माला अब भी है। भक्तगण आवाक् हुए देख रहे हैं। हाजरा अपने आसन पर बैठै हैं। वे भी अवाक् हुए देख रहे हैं। अनेक क्षणों के बाद होश आई। ठाकुर बोल उठे, भूख लगी है। प्रकृतिस्थ होने के लिए यही बात प्राय: बोलते हैं।

मास्टर खाने के लिए कुछ लेने जा रहे हैं। ठाकुर बोल उठे, ''नहीं भाई, पहले काली-मन्दिर जाऊँगा।''

(नवमी-पूजा के दिन श्रीरामकृष्ण की श्री काली-पूजा)

ठाकुर पक्के आँगन में से दक्षिणास्य होकर काली-मन्दिर की ओर जा रहे हैं। जाते-जाते बारह मन्दिरों को शिव के उद्देश्य से प्रणाम किया। बायीं ओर राधाकान्त का मन्दिर है। उनका दर्शन करके प्रणाम किया। काली-मन्दिर में जाकर माँ को प्रणाम करके आसन पर बैठ कर माँ के पादपद्मों में फूल दिए, अपने सिर पर भी फूल दिए। आने के लिए चलते समय भवनाथ से कहा, 'ये चीजें ले चल— माँ का प्रसादी डाब और श्रीचरणामृत।' ठाकुर कमरे में लौट आए, संग में भवनाथ और मास्टर हैं। आते ही हाजरा के सामने प्रणाम। हाजरा चीत्कार करके उठ गए, बोले, 'क्या करते हैं, क्या करते हैं!'

ठाकुर श्रीरामकृष्ण बोले, तुम बतलाओ, क्या यह अन्याय है ?

हाजरा तर्क करते हुए प्राय: यही बात ही कहा करते हैं, ईश्वर सब के भीतर ही हैं, साधन के द्वारा सब ही ब्रह्मज्ञान-लाभ कर सकते हैं।

समय हो गया। भोग-आरती का घण्टा बज गया। अतिथिशाला में

ब्राह्मण, वैष्णव, कंगाल सब जा रहे हैं। माँ का प्रसाद, राधाकान्त का प्रसाद, सब ही पाएँगे। भक्तगण भी माँ का प्रसाद पाएँगे। अतिथिशाला में ब्राह्मण कर्मचारीगण जहाँ पर बैठते हैं, वहीं पर भक्तगण भी बैठकर प्रसाद पाएँगे। ठाकुर ने कहा है,

"सब ही वहाँ पर जाकर खाएँ— क्यों जी? *(नरेन्द्र के प्रति)* नहीं, तू यहाँ पर खाएगा?"—

"अच्छा, नरेन्द्र और मैं यहाँ पर खाएँगे।"

भवनाथ, बाबूराम, मास्टर इत्यादि सब प्रसाद पाने गए।

प्रसाद पाने के बाद ठाकुर ने थोड़ा-सा विश्राम किया, किन्तु अधिक देर नहीं। भक्तगण बरामदे में बैठकर बातें कर रहे हैं, ठाकुर वहाँ पर आकर बैठ गए और उनके संग में आनन्द मनाने लगे। समय दो का है। सब ही उत्तरपूर्व वाले बरामदे में हैं। हठात् भवनाथ दक्षिणपूर्व-बरामदे से ब्रह्मचारी के वेश में आ उपस्थित हुए। शरीर पर गैरिक वस्त्र, हाथ में कमण्डलु, मुख पर हँसी। ठाकुर और सब भक्त हँसते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— उसके मन का भाव वही है कि ना, तभी तो वैसा ही सज गया है।

नरेन्द्र— वह ब्रह्मचारी बना है, मैं वामाचारी बनता हूँ। *(हास्य)*।

हाजरा— उसमें तो पंच मकार*, चक्र, यह सब करना पड़ता है।

ठाकुर वामाचार की बात पर चुप रहे। उस बात का समर्थन नहीं किया। केवल हँसी-मजाक में उड़ा दी। हठात् मतवाले होकर नृत्य करने लगे। गा रहे हैं—

आर भुलाले भुलबो ना मा, देखेछि तोमार रांगा चरण।

[भावार्थ— अब आपके भुलवाने पर भी नहीं भूलूँगा माँ, क्योंकि तुम्हारे लाल चरणों का दर्शन कर लिया है।]

---

* पंच मकार = मद, माँस, माछ, मुद्रा और मैथुन

(पूर्वकथा— राजनारायण की चण्डी— नकुड़ आचार्य का गाना)

ठाकुर कह रहे हैं, आहा, राजनाराण का चण्डीगान कैसा सुन्दर! उसी प्रकार नाच-नाच कर वे गाते हैं। और उस देश में नकुड़ आचार्य का गाना! आहा, कैसा नृत्य! कैसा गान!

पंचवटी में एक साधु आए हैं। बड़े क्रोधी साधु। जिस-तिस को गालियाँ देते हैं और श्राप देते हैं। वे खड़ाऊँ पहन कर आ गए।

साधु बोले, 'यहाँ आग मिलेगी?' ठाकुर श्रीरामकृष्ण हाथ जोड़कर साधु को नमस्कार कर रहे हैं और जब तक वह साधु रहे, तब तक हाथ जोड़े खड़े रहे।

उस साधु के चले जाने पर भवनाथ हँसते-हँसते कहते हैं, 'आप की साधु के ऊपर कैसी भक्ति?'

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ओ रे तमोगुण नारायण! जिनमें तमोगुण हो, उनको इसी प्रकार प्रसन्न करना चाहिए। यह तो साधु!

(श्रीरामकृष्ण और गोलोकधाम-खेल— 'ठीक व्यक्ति की सर्वत्र जय')

गोलोकधाम-खेल हो रहा है। भक्तगण खेल रहे हैं। हाजरा भी खेल रहे हैं। ठाकुर आकर खड़े हो गए। मास्टर और किशोरी की गोटी (पक) गई। ठाकुर ने दोनों जनों को नमस्कार किया। बोले, 'धन्य तुम दोनों भाई*।' *(मास्टर से एकान्त में)* और मत खेलो।

ठाकुर खेल देख रहे हैं, हाजरा की गोटी एक बार नरक में पड़ गई थी। ठाकुर कह रहे हैं, हाजरा को क्या हुआ?— फिर दोबारा!

अर्थात् हाजरा की गोटी फिर दोबारा नरक में गिर गई है। सब ही-हो-हो करके हँस रहे हैं।

सातों कौड़ियों के एकदम चित्त पड़ने से लाटु की गोटी को संसार के घर से एकदम मुक्ति मिल गई। लाटु धेई-धेई करके नाचने लगे।

---

* किशोरी ठाकुर द्वारा दीक्षित, श्री म से ठीक एक वर्ष पूर्व देह-त्याग किया था— ठाकुर के संन्यासियों के प्रिय थे। स्वामी सुबोधानन्द, स्वामी शिवानन्द आदि प्यार करते थे। शेष काल में अकेले रहा करते।

ठाकुर कह रहे हैं—

नोटो (लाटु) को जो आनन्द है— देखो तो! उसका वैसा न होता तो उसे मन में बड़ा कष्ट होता।

(भक्तों के प्रति एकान्त में)— 'इसका एक अर्थ है। हाजरा का बड़ा अहंकार है कि इसमें भी मेरी जीत होगी। ईश्वर का ऐसा भी है कि ठीक व्यक्ति का वे कभी भी कहीं भी अपमान नहीं होने देते! सबके पास ही जीत होती है।'

चतुर्थ परिच्छेद

(नरेन्द्रादि के लिए स्त्रियों को लेकर साधन निषेध, वामाचार-निन्दा)

(पूर्वकथा— तीर्थदर्शन, काशी में भैरवी चक्र— ठाकुर का सन्तान-भाव)

कमरे में छोटे तख्तपोश पर ठाकुर बैठे हैं। नरेन्द्र, भवनाथ, बाबूराम, मास्टर फरश पर बैठे हैं। घोषपाड़ा और पंचनामी इत्यादि मतों की बात नरेन्द्र ने उठाई। ठाकुर उनका वर्णन करके निन्दा कर रहे हैं। कह रहे हैं—

''ठीक-ठीक साधन नहीं कर सकते, धर्म का नाम लेकर इन्द्रियों को चरितार्थ करते हैं।''

(नरेन्द्र के प्रति)— ''तुझे इन सब के सुनने का प्रयोजन नहीं है।

''भैरव-भैरवी, इनका भी उसी प्रकार का है। मैं जब काशी गया था, तब एक दिन भैरवी चक्र में मुझे ले गए थे। एक-एक भैरव, एक-एक भैरवी। मुझे कारण-पान करने के लिए कहा। मैंने कहा, माँ, मैं कारण को छू नहीं सकता। तब वे पीने लगे। मैंने सोचा था कि अब शायद ये जप-ध्यान करेंगे। वह तो नहीं किया, नृत्य करना आरम्भ कर दिया। मुझे भय लगा कि कहीं गंगा में न जा पड़ें। वह चक्र गंगा के किनारे बना था।

''पति-पत्नी यदि भैरव-भैरवी बनें तब उनका बड़ा मान होता है।''

(नरेन्द्रादि भक्तों के प्रति)— बात क्या है, जानते हो? मेरा भाव मातृभाव, सन्तानभाव है। मातृभाव अति शुद्ध भाव है। इसमें कोई विपद नहीं।

भगिनीभाव, यह भी मन्द नहीं। स्त्रीभाव— वीरभाव बड़ा कठिन है। तारक का बाप उसी भाव में साधना किया करता था। बड़ा कठिन है। ठीक भाव रखा नहीं जाता।

"नानापथ ईश्वर के पास पहुँचने के हैं। मत पथ। जैसे काली-मन्दिर में नाना पथों से जाया जाता है। तो भी उनमें कोई पथ शुद्ध है, कोई पथ गन्दा। शुद्ध पथ द्वारा ही जाना अच्छा है।

"अनेक मत— अनेक पथ देखे हैं। अब यह सब और अच्छा नहीं लगता। परस्पर सब विवाद करते हैं। यहाँ पर और कोई नहीं है; तुम अपने ही जन हो, तुम से कहता हूँ, अन्त में यही समझा हूँ कि वे पूर्ण, मैं उनका अंश; वे प्रभु, मैं उनका दास; और फिर कभी सोचता हूँ, वे ही मैं हूँ, मैं ही वे हैं।"

भक्तगण नि:स्तब्ध होकर यह बात सुन रहे हैं।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और मनुष्य के ऊपर प्यार— Love of mankind)

भवनाथ *(विनीत भाव से)*— व्यक्ति के साथ मनमुटाव हो तो मन कैसा-कैसा करता है। तब तो सब से प्यार नहीं कर सकता।

श्रीरामकृष्ण— पहले एक बार बातचीत करके— उनके साथ मेल करने की चेष्टा करना। चेष्टा करके भी यदि न हो तब फिर उसकी परवाह न करे। उनके शरणागत हो जाओ— उनका चिन्तन करो— उनको छोड़, अन्य लोगों के लिए मन खराब करने का प्रयोजन नहीं है।

भवनाथ— क्राइस्ट, चैतन्य— ये कह गए हैं, सब को प्यार करना।

श्रीरामकृष्ण— प्यार तो करना ही है, सर्वभूतों में ईश्वर जो हैं। किन्तु जहाँ पर दुष्ट व्यक्ति है, वहाँ पर दूर से प्रणाम करना। चैतन्यदेव क्या करते थे? वे भी 'विजातीय लोक देखे प्रभु करेन भाव-संवरण।' श्रीवास के घर में उनकी सास को केश पकड़ कर बाहिर कर दिया था।

भवनाथ— उसे और किसी व्यक्ति ने बाहिर निकाला था।

श्रीरामकृष्ण— उनकी सम्मति हुए बिना क्या कोई कर सकता था?

"क्या किया जाए? यदि दूसरे का मन न मिले, तो क्या रात-दिन वही भावना करनी होगी? जो मन उनको दोगे, उस मन को व्यर्थ इधर-उधर खर्च करोगे? मैं कहता हूँ, 'माँ, मैं नरेन्द्र, भवनाथ, राखाल कुछ भी नहीं चाहता; केवल तुम्हें चाहता हूँ। मनुष्य को लेकर क्या करूँगा?'

"घरे आसबेन चण्डी, शुन्‌बो कतो चण्डी,
कत आसबेन् दण्डी योगी जटाधारी!*

"उनको पा लेने पर सब को ही पा लूँगा! रुपया मिट्टी, मिट्टी ही रुपया— सोना मिट्टी, मिट्टी ही सोना— यह बोल कर त्याग किया था; गंगा के जल में फेंक दिया था। तब भय हुआ कि यदि माँ लक्ष्मी नाराज हो जाएँ! लक्ष्मी के ऐश्वर्य की अवज्ञा जो की है! यदि खाना बन्द कर दें! तब कहा था, माँ तुम्हें ही चाहता हूँ, और कुछ नहीं चाहता। उनको पा लेने पर फिर सब पा लूँगा।"

भवनाथ *(हँसते-हँसते)*— यह पटवारीपन है!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ, इतना-सा पटवारीपन!

"भगवान ने दर्शन देकर एकजन से कहा, तुम्हारी तपस्या देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। अब एक वर माँगो। साधक ने कहा, 'भगवान यदि वर दे ही रहे हैं तो यही वर दीजिए, जैसे सोने की थाली में पोते के साथ बैठ कर खाऊँ।' एक वर में काफी कुछ हो गया। ऐश्वर्य हुआ, लड़का हुआ, पोता हुआ।" *(सब का हास्य)*।

पंचम परिच्छेद

(ईश्वर अभिभावक— श्रीरामकृष्ण की मातृभक्ति— संकीर्त्तनानन्द)

भक्त लोग कमरे में बैठे हैं। हाजरा बरामदे में बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण— हाजरा क्या चाहते हैं, जानते हो? कुछ रुपया चाहिए, घर में

---

* घर में जब चण्डी आ जाएँगी तब कितना ही चण्डी गान सुनूँगा। और तब कितने दण्डी, योगी, जटाधारी यहाँ पर आएँगे!

कष्ट है। कर्ज देना है। तभी, जप-ध्यान करता है कि वे (ईश्वर) रुपया देंगे।

एक भक्त— वे क्या वांछा पूर्ण नहीं कर सकते?

श्रीरामकृष्ण— उनकी इच्छा! किन्तु प्रेमोन्माद बिना हुए वे समस्त भार नहीं लेते। छोटे बच्चे को ही हाथ से पकड़कर खाने के लिए बिठा देते हैं। बूढ़ों को कौन बिठाता है? उनका चिन्तन करके जब निज का भार निज नहीं ले सकता, तब ही ईश्वर भार लेते हैं।*

"*(हाजरा)* निज तो घर की खबर नहीं लेता। हाजरा के बेटे ने रामलाल से कहा था, 'पिता से आने के लिए कहना, हम कुछ नहीं माँगेंगे।' यह बातें सुनकर मुझे रोना आ गया।"

(श्रीमुख-कथित चरितामृत— श्री वृन्दावन-दर्शन)

"हाजरा की माँ ने रामलाल से कहा था, 'प्रताप को एक बार आने के लिए कहो, और अपने चाचा जी को मेरा नाम लेकर कहना कि वे किसी तरह से प्रताप को आने के लिए कहें।' मैंने कहा था, फिर भी उसने सुना नहीं।

"माँ क्या कम वस्तु है जी? चैतन्यदेव ने कितना समझाया था, तभी माँ के पास से आ सके थे। शची ने कहा था, केशव भारती को काट दूँगी। चैतन्य ने बहुत तरह से समझाया। बोले, 'माँ, तुम यदि अनुमति नहीं दोगी तो मैं नहीं जाऊँगा। किन्तु गृहस्थ में मुझे यदि रखोगी तो मेरा शरीर नहीं रहेगा। और माँ, जब तुम याद करोगी, मुझ को देख पाओगी। मैं निकट ही रहूँगा, बीच-बीच में मिल जाया करूँगा।' तब ही तो शची ने अनुमति दी।

"माँ जब तक थीं, नारद तपस्या के लिए नहीं जा सके। माँ की सेवा करनी होती थी कि ना! माँ का देह-त्याग हो जाने पर ही हरिसाधन करने के लिए निकले थे।

"वृन्दावन में जाकर मेरी लौटने की इच्छा नहीं हुई। गंगा माँ के पास रहने की बात हुई। सब ठीक-ठाक हो गया। इस तरफ मेरा बिछौना होगा,

---

* अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥ (गीता 9/22)

उस तरफ गंगा माँ का बिछौना होगा, अब कलकत्ता नहीं जाऊँगा, कैवर्त का भात और कितने दिन खाऊँ? तब हृदय बोला, नहीं, तुम कलकत्ता चलो। वह एक तरफ खींचता था, गंगा माँ दूसरी तरफ खींच रही थी। मेरी रहने की खूब इच्छा थी। इसी समय माँ की याद आ गई। तुरन्त सब बदल गया। माँ बूढ़ी हो गईं हैं। विचार किया कि माँ की चिन्ता रहेगी तो ईश्वर-फीश्वर सब उलट जाएगा। उसकी अपेक्षा तो उनके पास ही चलता हूँ। जाकर वहाँ पर ही ईश्वर-चिन्तन करूँगा, निश्चिन्त होकर।

(नरेन्द्र के प्रति)—"तुम उसको ज़रा कहो ना! मुझ से उस दिन कहा था कि हाँ जाऊँगा, तीन दिन जाकर रहूँगा। उसके बाद वैसा ही है।

(भक्तों के प्रति)—"आज घोषपाड़ा-फोषपाड़ा, कैसी-कैसी बातें हुईं! गोविन्द, गोविन्द, गोविन्द! अब थोड़ा हरिनाम बोलो। उड़द-फुड़द की दाल के पश्चात् पायस मुण्डी (पनीर का पायस) हो जाए।"

नरेन्द्र गा रहे हैं—

एक पुरातन पुरुष निरंजने, चित्त समाधान कोरो रे,
आदि सत्य तिनि कारण-कारण, प्राणरूपे व्याप्त चराचरे,
जीवन्त ज्योतिर्मय, सकलेर आश्रय, देखे सेइ जे जन विश्वास करे।
अतीन्द्रिय नित्य चैतन्यस्वरूप, विराजित हृदिकन्दरे;
ज्ञानप्रेम पुण्ये, भूषित नानागुणे, जाहार चिन्तने सन्ताप हरे।
अनन्त गुणाधार, प्रशान्त-मूरति, धारणा करिते केहो नाहि पारे;
पदाश्रित जने, देखा देन निज गुणे, दीन हीन बोले दया करे।
चिर क्षमाशील कल्याणदाता, निकटसहाय दुःख सागरे;
परम न्यायवान् करेन फलदान, पाप-पुण्य कर्म अनुसारे।
प्रेममय दयासिन्धु, कृपानिधि, श्रवणे जाँर, गुण आँखि झरे,
ताँर मुख देखि, सबे होओ रे सुखी, तृषित मन प्राण जाँर तरे।
विचित्र शोभामय निर्मल प्रकृति, वर्णिते से अपरूप वचन हारे;
भजन साधन ताँर, करो हे निरन्तर, चिर भिखारी होये ताँर द्वारे।

[भावार्थ— हे चित्त, तुम निश्चय रखो कि एक पुरातन पुरुष निरंजन है। वे आदि-सत्य और कारण के कारण हैं, वे चर-अचर में प्राण रूप में व्याप्त हैं। वे जीवन्त ज्योतिर्मय, सब के आश्रय हैं। जो जन विश्वास करता है, वही उन्हें देखता है। वे अतीन्द्रिय और नित्य

चैतन्य स्वरूप, सब की हृदय-कन्दरा में विराजमान हैं। ज्ञानप्रेम के पुण्य द्वारा नानागुणों से विभूषित हैं और जिनका चिन्तन हर प्रकार के सन्ताप को हर लेता है। वे अनन्त गुणों के आधार, प्रशान्त मूर्ति हैं। कोई उनकी धारणा नहीं कर सकता। किन्तु अपने शरणागत पदाश्रितों को वे अपने ही गुण से, उन्हें दीन-हीन जानकर, दया करके दर्शन दे देते हैं। चिर-क्षमाशील तथा कल्याणदाता हैं और सर्वदा दु:ख के सागर में निकट सहायी रहते हैं। वे परम न्यायवान् हैं और पाप-पुण्य के अनुसार कर्म का फल देते हैं। वे प्रेममय दयासिन्धु कृपानिधि हैं, जिनके गुण-श्रवण से अश्रुपात होने लगता है। उनका दर्शन करके सब लोग सुखी हो जाओ जिन से प्यासे मन-प्राण को किनारा मिलता है। उनकी विचित्र शोभामय निर्मल प्रकृति है, जिस रूप का वर्णन करते हुए वाणी हार जाती है। तुम मेरे भाई, उनके द्वार के चिर-भिखारी बन कर उनका ही निरन्तर साधन-भजन करो।]

(2) चिदाकाशे होलो पूर्ण प्रेमचन्द्रोदय हे।*

ठाकुर नाच रहे हैं। घूम-घूम कर नाच रहे हैं। सब कीर्त्तन कर रहे हैं और नाच रहे हैं। खूब आनन्द है। गाना हो जाने पर ठाकुर ने अपने-आप फिर और गाना आरम्भ कर दिया—

शिवसंगे सदारंगे आनन्दे मगना,
सुधा पाने ढल-ढल-ढले किन्तु पड़े ना (माँ)।
विपरीत रतातुरा, पदभरे काँपे धरा,
उभये पागलेर पारा लज्जा भय और माने ना।

[भावार्थ— माँ शिव के संग सदा आनन्द में मग्न हैं। अमृतरूपी सुधा पीकर डगमगा तो रही हैं, परन्तु गिरती नहीं हैं। प्रेमातुरा के पग उठाने से धरती काँपती है। दोनों का पागलों का घेरा है, लज्जा और भय कोई नहीं मानता।]

मास्टर को संग-संग गाते हुए देखकर ठाकुर बड़े खुश हैं। गाना हो जाने पर ठाकुर मास्टर को सहास्य कह रहे हैं, सुन्दर हुआ। खुलि (खोल बजाने वाला) होता तो फिर तो और भी समाँ बँध जाता। ताक् ताक् ता धिना, दाक् दाक् दा धिना— ऐसे बोल बजते।

कीर्त्तन होते-होते सन्ध्या हो गई।

---

* सम्पूर्ण गान तथा भावार्थ के लिए इसी ग्रन्थ का पृष्ठ 12 देखिए।

अष्टादश खण्ड

श्रीरामकृष्ण का अधर के घर आगमन और भक्तों के संग में कीर्त्तनानन्द

प्रथम परिच्छेद

विजय, केदार, बाबूराम आदि भक्तों के संग में श्रीरामकृष्ण

(केदार, विजय, बाबूराम, नाराण, मास्टर, वैष्णवचरण)

आज आश्विन शुक्ला एकादशी है— बुधवार, पहली अक्तूबर, 1884 ईसवी। ठाकुर दक्षिणेश्वर से अधर के घर आए हैं। संग में नाराण, गंगाधर हैं। पथ में हठात् ठाकुर को भावावस्था हो गई। भाव में कह रहे हैं, ''मैं माला जपूँ? थ्याक् थू। यह शिव तो पाताल फोड़ा शिव है, स्वयंभूलिंग!''

अधर के घर आ गए हैं। यहाँ पर अनेक भक्त एकत्रित हुए हैं। केदार, विजय, बाबूराम आदि अनेक हैं। कीर्त्तनिया वैष्णवचरण आए हुए हैं। ठाकुर के आदेश के अनुसार अधर प्रतिदिन ऑफिस से आते ही वैष्णवचरण के मुख से कीर्त्तन सुनते हैं। वैष्णवचरण का संकीर्त्तन अति मिष्ट है। आज भी संकीर्त्तन होगा। ठाकुर ने अधर की बैठक में प्रवेश किया। सभी भक्तों ने उठकर उनकी चरणवन्दना की। ठाकुर के सहास्य आसन ग्रहण कर लेने पर वे भी बैठ गए। केदार और विजय के प्रणाम

कर लेने पर ठाकुर ने नाराण और बाबूराम को उन्हें प्रणाम के लिए कहा। और बोले कि आप लोग आशीर्वाद करो कि इन्हें भक्ति हो। नाराण को दिखाकर बोले, यह बड़ा सरल है। भक्तगण बाबूराम और नाराण को *(एकटक)* देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(केदार आदि भक्तों के प्रति)*— तुम लोगों के साथ रास्ते में मेल हो गया, नहीं तो तुम लोग कालीबाड़ी पहुँच जाते। ईश्वर-इच्छा से मेल हो गया!

केदार *(विनीत भाव से, हाथ जोड़ कर)*— ईश्वर की इच्छा! वह तो आप की ही इच्छा है।

ठाकुर हँसते हैं।

द्वितीय परिच्छेद

(भक्तों के संग में कीर्त्तनानन्द में)

अब कीर्त्तन आरम्भ हुआ। वैष्णवचरण ने 'अभिसार' आरम्भ करके, रासकीर्त्तन करके संगीत-कीर्त्तन समाप्त किया। श्री श्री राधाकृष्ण का मिलन-कीर्त्तन ज्योंहि आरम्भ हुआ, ठाकुर प्रेमानन्द में नृत्य करने लगे। संग-संग भक्तगण भी उनको घेर कर नाचने लगे और संकीर्त्तन करने लगे। कीर्त्तन के अन्त में सब ने आसन ग्रहण किया।

श्रीरामकृष्ण *(विजय के प्रति)*— ये सुन्दर गाते हैं।

यह कह कर वैष्णवचरण को दिखा दिया और उनसे 'श्रीगौरांगसुन्दर', यह गाना गाने के लिए कहा। वैष्णवचरण गाने लगे—

'श्रीगौरांगसुन्दर नव नटवर, तपत कांचनकाय' इत्यादि।

गाना समाप्त होने पर ठाकुर विजय से बोले, 'कैसा?'

विजय बोले, 'आश्चर्य!'

ठाकुर ने गौरांग के भाव में स्वयं गाना आरम्भ किया—

भाव होबे बै कि रे!
भावनिधि श्रीगौरांगेर भाव होबे बै कि रे॥

भावे हासे काँदे नाचे गाय।
वन देखे वृन्दावन भावे; समुद्र देखे जमुना भावे।
जार अन्त:कृष्ण बहिर्गौर (भाव होबे)।
गोरा फुकरि फुकरि कांदे; गोरा आपनार पाय आपनि धरे।
बोले कोथा राई प्रेममयी।

[भावार्थ— भाव के समुद्र श्रीगौरांग को भाव के बिना और क्या है रे! वे भाव में हँसते, रोते, नाचते, गाते हैं। वन को देखकर वृन्दावन की भावना करते हैं, समुद्र देखकर यमुना की भावना करते हैं। जिसके अन्तर में कृष्ण और बाहिर गौर-भाव होगा— चैतन्य प्रभु फुफक-फुफक कर रोते हैं, गौरा अपने पैर अपने-आप पकड़ता है और कहता है, प्रेममयी राधा कहाँ है?]

मणि संग-संग गा रहे हैं।

ठाकुर का गाना समाप्त होने पर वैष्णवचरण फिर और गाते हैं—

हरि हरि बोल रे वीणे!
हरिर करुणा बिने, परम तत्त्व आर पाबिने॥
हरि-नामे ताप हरे, मुखे बोलो हरे कृष्ण हरे,
हरि यदि कृपा करे, तबे भवे आर भाविने!
बीणे एकबार हरि बोल हरि नाम बिने नाई सम्बल,
दास गोविन्द कय दिन गेलो, अकूले येन डुबिने।

[भावार्थ— हे वीणा! हरि-हरि बोल। हरि की करुणा के बिना परमतत्त्व तो नहीं मिलेगा। हरि-नाम से ताप नष्ट होता है, मुख से बोलो— हरे कृष्ण हरे, हरे कृष्ण हरे। हरि यदि कृपा करें, तब फिर कोई चिन्ता नहीं है। हे वीणे, एक बार हरि बोल। हरिनाम बिना कोई सहारा नहीं है। दास गोविन्द कहते हैं, दिन तो चले जा रहे हैं, किनारा पाये बिना जैसे डूब न जाऊँ।]

ठाकुर कीर्त्तनिया की भाँति गाने के संग-संग सुर निकाल रहे हैं। वैष्णवचरण से कह रहे हैं, इस तरह करके बोलो— कीर्त्तनिया के ढंग से।

वैष्णवचरण फिर और गाते हैं—

श्री दुर्गा नाम जपो सदा रसना आमार।
दुर्गमे श्रीदुर्गा बिने के करे निस्तार॥

दुर्गानाम तरी भवार्णव तरिवारे,
मासितेछे सेई तरी श्रद्धासरोवरे।
श्रीगुरु करुणा करि जेइ धन दिले,
साधना करहो तरी मिलिबे गो कूले॥

यदि बोलो छय रिपु होइये पवन,
धरिते ना दिबे तरी करिबे तुफान।
तुफानेते कि करिबे श्रीदुर्गानाम जार तरी,
अवश्य पाइबे कूल मृत्युंजय जार काण्डारी॥

तुमि स्वर्ग, तुमि मर्त्य मा, तुमि से पाताल,
तोमा होते हरि ब्रह्मा द्वादश गोपाल।
दश महाविद्या माता दश अवतार,
एबार कोनोरूपे आमाय करिते होबे पार॥

चल अचल तुमि मा तुमि सूक्ष्म, स्थूल,
सृष्टि स्थिति प्रलय तुमि मा तुमि विश्वमूल,
त्रिलोकजननी तुमि, त्रिलोक तारिणी;
सकलेर शक्ति तुमि मा तोमार शक्ति तुमि॥

ठाकुर गायक के संग पुनः पुनः गाने लगे—

चल अचल तुमि मा तुमि सूक्ष्म, स्थूल,
सृष्टि स्थिति प्रलय तुमि मा तुमि विश्वमूल,
त्रिलोकजननी तुमि, त्रिलोक तारिणी;
सकलेर शक्ति तुमि मा तोमार शक्ति तुमि॥

कीर्त्तनिया ने फिर और आरम्भ किया—

वायु अन्धकार आदि शून्य आर आकाश,
रूप दिक् दिगन्तर तोमा होते प्रकाश।
ब्रह्मा विष्णु आदि करि जतेक अमरे,
तव शक्ति प्रकाशिछे सकल शरीरे॥

इड़ा पिंगला सुषुम्ना बज्रा चित्राणीते,
क्रमयोगे आछे जेगे सहस्रा होइते।

चित्राणीर मध्ये ऊर्ध्वे आछे पद्म सारि सारि,
शुक्लवर्ण सुबर्णबर्ण विद्युतादि करि॥

दुइ पद्म प्रस्फुटित एकपद्म कोढ़ा,
अधोमुखे ऊर्ध्वे मुखे आछे दुइ पद्म जोड़ा।
हंसरूपे बिहार तथाय करोगो आपनि,
आधार कमले होओ मा कुलकुण्डलिनी॥

तदूर्ध्वे मणिपुर नाम नाभिस्थल,
रक्तवर्ण पद्म ताहे आछे दशदल।
सेइ पद्मे तव शक्ति अनल आछय,
से अनल निबृत्ति होले सकलइ निभाय॥

हृदि पद्मे आकाश मानस सरोवर,
अनाहत पद्म भासे ताहार उपर।
सुबर्णबर्ण द्वादशदल तथाय शिव बाण,
सेइ पद्मे तव शक्ति जीव आर प्राण॥

तदूर्ध्वे कण्ठदेश धुम्रवर्ण पद्म,
षोडशदल नाम ताँर पद्म विशुद्धाख्य।
सेइ पद्मे तव शक्ति आछये आकाश,
से आकाश रुद्ध होले सकलि आकाश॥

तदूर्ध्वे शिरसि मध्ये पद्म सहस्रदल,
गुरुदेवेर स्थान सेइ अति गुह्य स्थल।
सेइ पद्मे विश्वरूपे परमशिव विराजे,
एका आछेन शुक्लवर्ण सहस्रदल पंकजे॥

ब्रह्मरन्ध्र आछे यथा शिव विश्वरूप,
तुमि तथा गेले, शिव होन स्वीयरूप।
तथा शिवसंगे रंगे करो गो विहार,
विहार समापने शिव होन बिम्बाकार॥

[भावार्थ— हे मेरी रसना, तुम सदा श्री दुर्गानाम जपो। इस दुर्गम स्थान से श्री दुर्गा बिना कौन निस्तार कर सकता है? भवसागर तरने के लिए दुर्गानाम की नाव श्रद्धा-सरोवर में तैर रही है। श्री गुरु करुणाकर जो धन देते हैं, साधना करने से वह नाव कूल किनारे पर लग जाती है।

यदि कहो कि छह रिपु पवन बन कर नाव को तूफान में घेर लेंगे तो तूफान में से दुर्गा नाम की नाव अवश्य कूल किनारा पा लेगी क्योंकि उसके कर्णधार मृत्युञ्जय हैं।

तुम ही स्वर्ग! मर्त्य, पाताल हो माँ! तुम से ही हरि, ब्रह्मा, द्वादश गोपाल, दश महाविद्या-माताएँ, दश अवतार हुए हैं। अब की बार मुझे किसी न किसी रूप में पार करना ही होगा। चल, अचल, सूक्ष्म, स्थूल, सृष्टि, स्थिति, प्रलय तुम ही हो। तुम ही विश्वमूल, त्रिलोकजननी, त्रिलोकतारिणी हो। सब की शक्ति तुम ही हो और तुम्हारी शक्ति भी तुम ही हो माँ।

वायु, अन्धकार आदि, शून्य और आकाश, दिशाएँ— सब तुम से ही प्रकाश पाकर रूपायित होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु आदि जितने भी अमर हुए हैं, उन सब शरीरों में तुम्हारी शक्ति ही प्रकाशित हो रही है।

इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, बज्रा, चित्राणी आदि क्रमश: सहस्रार से ही जाग रही हैं। चित्राणी के मध्य से और ऊपर पंक्ति की पंक्तियाँ पद्म हैं। शुक्लवर्ण, सुवर्णवर्ण की विद्युत आदि की रोशनी देते हैं।

दो पद्म तो खिले हुए हैं और एक डोडी है। अधोमुख और ऊर्ध्वमुख दो जोड़े कमल हैं। माँ आप वहाँ पर हंस रूप में आधार कमल में कुलकुण्डलिनी होकर विहार कर रही हो।

उसके ऊपर मणिपुर नाम नाभिस्थल है। उस पर रक्तवर्ण का दशदल कमल है। उस पद्म में तुम्हारी शक्ति, अग्नि रहती है, उस अग्नि के हट जाने पर सब ही बुझ जाता है।

हृदयपद्म में आकाश रूपी मानस सरोवर है, उस पर अनाहत पद्म तैर रहा है। वहाँ पर सुवर्ण रंग का द्वादश दल पद्म तथा शिव बाण है। उस पद्म में तेरी शक्ति जीव और प्राण रूप में रहती है। उस के ऊपर कण्ठ स्थान में धूम्रवर्ण का षोडशदल विशुद्धाख्य नामक पद्म है। उस पद्म में तेरी शक्ति आकाश रूप में रहती है, उस आकाश के रुद्ध हो जाने पर सब आकाश ही आकाश बन जाता है।

उसके ऊपर सिर में सहस्र दल पद्म है, गुरुदेव का अति गुह्य स्थल वही स्थान है। उसी पद्म में विश्व रूप में परमशिव विराजमान रहते हैं, और वे शुक्लवर्ण के सहस्र दल कमल में अकेले रहते हैं।

जहाँ पर शिव बिम्बरूप में हैं, वहाँ ब्रह्मरंध्र है। तुम्हारे वहाँ जाने पर शिव स्वीय रूप में हो जाते हैं। वहाँ पर तुम शिव के संग में आनन्द से विहार करती हो और विहार के समापन होने पर शिव बिम्बाकार में हो जाते हैं।]

तृतीय परिच्छेद

(विजयादि के संग साकार-निराकार कथा— चीनी का पहाड़)

केदार और कई भक्त उठे— घर जाएँगे। केदार ने ठाकुर को प्रणाम किया और बोले, 'अच्छा, तो अब चलूँ।'

श्रीरामकृष्ण— तुम अधर को बिना कहे चले जाओगे ? अभद्रता होगी ?

केदार— तस्मिन् तुष्टे जगत तुष्टम्, जब आप ठहर रहे हैं, सब का ही रहना हो गया— और कुछ तबियत ठीक नहीं लग रही— और विवाह आदि रिश्ते करने के लिए एक विशेष भय होता है— समाज है— एक बार तो गड़बड़ हुई है—

विजय— इनको छोड़ कर जाना !

इसी समय ठाकुर को लेकर जाने के लिए अधर आ गए। भीतर पत्तलें पड़ गई हैं। ठाकुर उठे और विजय तथा केदार को सम्बोधन करके बोले, ''आओ जी चलो, मेरे संग में चलो।'' विजय, केदार और अन्य भक्तों ने ठाकुर के संग बैठ कर प्रसाद ग्रहण किया।

ठाकुर आहार के पश्चात् फिर दोबारा आकर बैठक में बैठ गए। केदार, विजय और अन्य भक्त चारों ओर बैठ गए।

(केदार की विनती और क्षमा-प्रार्थना— विजय का देवदर्शन)

केदार हाथ जोड़कर अति नम्रभाव में ठाकुर से कहते हैं, 'क्षमा करें, जो इधर-उधर करता रहा हूँ।' केदार शायद सोच रहे हैं, ठाकुर ने जहाँ पर आहार कर लिया है, वहाँ पर मैं कौन अधम !

केदार का कर्मस्थल ढाका में है। वहाँ पर बहुत से भक्त उनके पास आते हैं, और उनके खाने के लिए सन्देशादि नाना प्रकार के द्रव्य लाते हैं। केदार वे ही सब बातें ठाकुर से निवेदन कर रहे हैं।

केदार *(विनीत भाव में)*— बहुत-से लोग खिलाने आते हैं। क्या करूँ प्रभु ?

हुकुम करें।

श्रीरामकृष्ण— भक्त हो तो चाण्डाल का अन्न भी खाया जा सकता है। सात वर्ष उन्माद के बाद मैं उस देश (कामारपुकुर) गया था। तब तो कैसी अवस्था हो गई थी! वेश्या तक ने खिला दिया था। किन्तु अब नहीं खा सकता।

केदार *(विदा लेने के पूर्व मृदुस्वर में)*— प्रभु, आप शक्ति संचार करो। अनेक लोग आते हैं। मैं क्या जानूँ?

श्रीरामकृष्ण— हो जाएगा भाई! ईश्वर में आन्तरिक मति रहे तो हो जाता है।

केदार के विदा लेने से पहले 'बंगवासी' के सम्पादक श्रीयुक्त योगेन्द्र ने प्रवेश किया और ठाकुर को प्रणाम करके आसन ग्रहण किया।

साकार-निराकार के सम्बन्ध में बातें हो रही हैं।

श्रीरामकृष्ण— वे साकार-निराकार, और फिर कितना क्या-क्या हैं— वह हम नहीं जानते! केवल निराकार कहने से कैसे होगा?

योगेन्द्र— ब्राह्मसमाज का एक आश्चर्य है। बारह वर्ष का लड़का है, वह भी निराकार देखता है! आदि समाज में साकार में इतना कट्टरपन नहीं है। वे पूजा में बड़े लोगों के घर में जा सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— इन्होंने सुन्दर कहा, वह भी निराकार देखता है।

अधर— शिवनाथ बाबू साकार नहीं मानते।

विजय— वह तो उनकी भूल है। ये जैसे कहते हैं— बहुरूपी कभी इस रंग का, कभी उस रंग का। जो वृक्ष के नीचे बैठा रहता है, वही ठीक-ठीक जान सकता है। मैंने ध्यान करते-करते चलचित्र देखा था। कितने देवता! वे क्या-क्या, कितना कुछ बोले। मैंने कहा, उनके पास जाऊँगा, तब समझूँगा।

श्रीरामकृष्ण— तुम ने ठीक देखा है।

केदार— भक्त के लिए साकार। प्रेम में भक्त साकार देखता है। ध्रुव ने भगवान के दर्शन कर के कहा था, आपके कुण्डल हिलते क्यों नहीं? भगवान बोले, तुम हिलाओगे तो हिलेंगे।

श्रीरामकृष्ण— सब मानना चाहिए भाई— निराकार, साकार सब मानना चाहिए। काली-मन्दिर में ध्यान करते-करते देखा था 'रमणि खानकी'! (रमणी वेश्या)। मैंने कहा, माँ, तुम इस रूप में भी हो! तभी तो कहता हूँ, सब मानना चाहिए। वे कब किस रूप में दिखाई देती हैं, सामने आती हैं, कहा नहीं जाता।

यह कह कर ठाकुर गाना गाने लगे—

एसेछेन एक भावेर फकिर।

(प्रभु के भाव का फकीर आया है।)

विजय— वे अनन्तशक्ति हैं— वे क्या किसी एक रूप में दिखाई नहीं दे सकते? कैसा आश्चर्य! ये सब लोग जो समस्त रेणु की रेणु हैं, ये निश्चय करने जाते हैं!

श्रीरामकृष्ण— तनिक गीता, तनिक भागवत, तनिक वेदान्त पढ़ कर लोग सोचते हैं, 'मैंने सब समझ लिया है'। चीनी के पहाड़ पर एक चींटी गई थी। एक दाना चीनी खाकर उसका पेट भर गया। वह और एक दाना मुँह में रख कर घर ले जा रही है और सोच रही है, अब की बार आकर सारा पहाड़ ले जाऊँगी। *(सब का हास्य)*।

ऊनविंश खण्ड

दक्षिणेश्वर में भक्तों के संग में श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर में वेदान्तवागीश— ईशान आदि भक्तों के संग)

आज शनिवार, 11 अक्तूबर, 1884 ईसवी। ठाकुर दक्षिणेश्वर में कालीबाड़ी में छोटे तख्तपोश पर लेटे हुए हैं। समय लगभग दो का है। फरश पर मास्टर और प्रिय मुखर्जी बैठे हैं।

मास्टर स्कूल से एक बजे चल कर दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में प्राय: 2 बजे पहुँचे हैं।

श्रीरामकृष्ण— यदु मल्लिक के घर गया था। एकदम वह पूछने लगा, 'गाड़ी भाड़ा कितना!' जब उन्होंने कहा तीन रुपए दो आने, तब एक बार मुझ से पूछ कर फिर उसका एक और आदमी ठाकुर की आड़ में गाड़ीवान से पूछता है। उसने कहा— 'तीन रुपये चार आने' *(सब का हास्य)*। तब फिर दोबारा मेरे पास दौड़ कर आया; कहने लगा, भाड़ा कितना है ?

''उसके पास एक दलाल आया। उसने यदु से कहा, बड़ा बाजार में चार काठा जमीन बिकने वाली है, आप लेंगे क्या ? यदु ने कहा, 'कितना दाम

है ? ये दाम कुछ कम नहीं होंगे ?' मैंने कहा, 'तुम ने लेनी तो नहीं है, केवल ढोंग रचा रहे हो। क्यों ?' तब फिर मेरी ओर घूम कर हँसा। विषयी लोगों का दस्तूर ही यही है कि पाँच-दस लोग आना-जाना करेंगे, बाजार में खूब नाम होगा।

"अधर के घर वह गया था तो मैंने उसे कहा था, 'तुम अधर के घर गए थे तो वह बड़ा सन्तुष्ट हुआ था।' तब बोला, 'हैं, हैं, सन्तुष्ट हुआ था ?'

"यदु के घर में— *(एक दूसरा)* मल्लिक आया था। बड़ा चतुर और शठ, आँखें देख कर ही समझ गया था। उसकी आँखों की ओर ताकते हुए कहा था, 'चतुर होना अच्छा नहीं होता, कौआ बड़ा सयाना, चतुर होता है, किन्तु दूसरे का 'गू' खा कर मरता है।' और देखा कि वह अभागा है। यदु की माँ अवाक् होकर बोली, 'बाबा, तुम ने कैसे जान लिया कि उस के कुछ नहीं है।' चेहरा देख कर मैंने समझ लिया था।"

नारा'ण आए हैं, वे भी फरश पर बैठे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(प्रियनाथ के प्रति)*— हाँ जी, तुम्हारा हरि तो खूब अच्छा है ?
प्रियनाथ—जी, ऐसे ही है। विशेष अच्छा क्या है ? फिर भी बालक है—
नाराण— स्त्री को 'माँ' कहता है।
श्रीरामकृष्ण— वह कैसे! मैं ही नहीं कह सकता, और वह 'माँ' कहता है। *(प्रियनाथ के प्रति)*— कैसा है, जानते हो, लड़का बड़ा शान्त है, ईश्वर की ओर मन है।

ठाकुर ने अन्य बात उठा दी।

"हेम ने क्या कहा था, पता है ? बाबूराम से उसने कहा था, 'ईश्वर ही एक सत्य है और सब मिथ्या।' *(सब का हास्य)*। नहीं भाई, आन्तरिक कहा था। और फिर मुझे घर ले जाकर कीर्त्तन सुनाने के लिए कहा था पर वह हो नहीं पाया। उसके पश्चात् कहा था, 'मैं खोल (मृदंग) करताल ले लूँगा तो लोग क्या कहेंगे ?' डर गया था, कहीं लोग पीछे उसे पागल न कहने लगें।"

(घोषपाड़ा की स्त्रियों का हरिपद के प्रति गोपाल भाव— कौमार-वैराग्य और नारी)

''हरिपद घोषपाड़ा की एक औरत के वश में पड़ गया है। छोड़ती नहीं। कहता है, गोद में लेकर खिलाती है। कहता है कि गोपाल-भाव है। मैंने खूब सावधान कर दिया है। इसी वात्सल्य से फिर ताच्छल्य (तुच्छ) हो जाता है। क्या है, जानते हो? स्त्रियों से काफी दूर रहना चाहिए, तो भी यदि भगवान लाभ हो। जिनकी नीयत खराब होती है, उन स्त्रियों के पास आना-जाना करना, या उनके हाथ से कुछ खाना बड़ा खराब है। ये सत्ता हरण कर लेती हैं।

''अनेक सावधानी से रहने पर ही तब भक्ति रक्षित रहेगी। भवनाथ, राखाल आदि ने एक दिन स्वयं खाना पकाया। वे खाने बैठे ही थे कि उस समय कोई बाऊल आकर उनकी पंक्ति में बैठ कर बोला, 'मैं खाऊँगा'। मैंने कहा, 'जगह नहीं है। अच्छा, यदि बचा तो तुम्हारे लिए रख लूँगा।' उससे वह गुस्सा होकर उठकर चला गया।

''विजया के दिन कोई भी मुँह में खिला देता है, वह ठीक नहीं। शुद्धसत्त्व भक्तों के हाथ से खाया जा सकता है।

''स्त्रियों से खूब सावधान रहना चाहिए। 'गोपाल भाव इत्यादि,' ऐसी बातें मत सुनो। 'औरत त्रिभुवन तक खा जाती है।' अनेक औरतें जवान लड़का, देखने में अच्छा, देखकर नए-नए माया-जाल बिछाती हैं। वही है गोपाल भाव!

''जिनका कौमार-वैराग्य है, जो बचपन से भगवान के लिए व्याकुल हुए फिरते हैं, गृहस्थ में नहीं पड़े, उनकी एक क्लास ही अलग है! वे शुद्ध कुलीन। ठीक-ठीक वैराग्य होने पर वे लोग औरतों से 50 (पचास) हाथ दूर रहते हैं, कहीं पीछे उनका भाव न भंग हो जाए। वे यदि स्त्री के पल्ले पड़ ही जाते हैं तो फिर शुद्ध कुलीन नहीं रहते, भाव भंग हो जाता है; उनका घर नीचा हो जाता है। जिन का ठीक कौमार-वैराग्य है, उनका ऊँचा घर है; अति शुद्ध भाव। शरीर पर दाग तक भी नहीं लगता।''

(जितेन्द्रिय होने का उपाय— प्रकृतिभाव साधन)

"जितेन्द्रिय कैसे होता है ? अपने पर स्त्रियों का भाव आरोप करना चाहिए। मैं अनेक दिन सखी-भाव में था। स्त्रियों के जैसे कपड़े, गहने पहनता, ओढ़ना ओढ़ता! ओढ़ना पहन कर आरती करता! वैसा न होता तो कैसे पत्नी को आठ मास पास रखे रखा था? दोनों जन ही थे माँ की सखियाँ!

"मैं अपने को पु (पुरुष) नहीं कह सका। एक दिन भाव में था, उसने (पत्नी ने) पूछा— 'मैं तुम्हारी क्या हूँ?' मैंने कहा, 'आनन्दमयी'।

"एक मत में है, जिसका स्तन स्त्री जैसा है वही स्त्री है। अर्जुन और कृष्ण के स्त्री जैसे स्तन नहीं थे।

"शिवपूजा का भाव जानते हो? शिवलिंग की पूजा— मातृस्थान की और पितृस्थान की पूजा। भक्त यह कह कर पूजा करता है कि प्रभु देखना जैसे और जन्म न हो। शोणितशुक्र के मध्य से मातृस्थान द्वारा जैसे फिर और आना न पड़े।"

द्वितीय परिच्छेद

(नारी को लेकर साधन— श्रीरामकृष्ण का पुनः-पुनः निषेध)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण प्रकृति-भाव की बातें बतला रहे हैं। श्रीयुक्त प्रिय मुखर्जी, मास्टर तथा और भी कई-एक भक्त बैठे हैं। इस समय ठाकुरों (देवेन्द्रनाथ टैगोर) के घर के एक शिक्षक ठाकुरों के कई लड़के लेकर आ गए।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— श्री कृष्ण के सिर पर मोर पंख है, मोर पंख पर योनिचिह्न है— अर्थात् श्रीकृष्ण ने प्रकृति को सिर पर रखा हुआ है।

"कृष्ण रास-मण्डल में गए। किन्तु वहाँ पर स्वयं प्रकृति बन गए। तभी तो रासमण्डल में वे स्त्री-वेश में हैं। निज प्रकृतिभाव न हो तो प्रकृति के संग का अधिकारी नहीं होता। प्रकृति-भाव होने पर ही रास, तभी सम्भोग। किन्तु साधक की अवस्था में खूब सावधान होना पड़ता है! तब स्त्री से बहुत

अन्तर पर रहना चाहिए। यहाँ तक कि भक्तिमती होने पर भी अधिक पास नहीं जाते। छत के ऊपर चढ़ने के समय हिलते-डुलते नहीं। हिलने-डुलने से गिरने की खूब सम्भावना रहती है। जो दुर्बल हैं, उन्हें तो पकड़-पकड़ कर चढ़ना चाहिए।

''सिद्ध अवस्था की बात अलग है। भगवान के दर्शन के बाद अधिक भय नहीं; काफी निर्भय। छत पर एक बार चढ़ने से ही कार्य हो जाता है। चढ़ जाने के पश्चात् तो छत पर नाचा भी जाता है। सीढ़ियों पर किन्तु नहीं नाचा जाता। और फिर देखो— जो त्याग करके गया है, छत पर चढ़ने पर तो फिर और त्याग नहीं करना होता। छत भी ईंट, चूने, सुरखी की बनी है, और सीढ़ियाँ भी उन्हीं वस्तुओं से तैयार की गई हैं। जिस स्त्री-शरीर से इतना सावधान रहना पड़ता है, भगवान-दर्शन हो जाने पर बोध हो जाएगा, वही स्त्री-शरीर है, साक्षात् भगवती। तब उनकी मातृज्ञान में पूजा करेगा। फिर उतना भय नहीं।

''बात तो यही है कि धाई को छू कर जो इच्छा सो कर।''

(ध्यानयोग और श्रीरामकृष्ण— अन्तर्मुख और बहिर्मुख)

''बहिर्मुख अवस्था में व्यक्ति स्थूल देखता है। तब अन्नमय कोष में मन रहता है। फिर है सूक्ष्म शरीर— लिंग शरीर। तब मनोमय और विज्ञानमय कोष में मन रहता है। उसके बाद है कारण शरीर। जब मन कारण शरीर में आता है, तब आनन्द,— मन आनन्दमय कोष में रहता है। यही है चैतन्यदेव की अर्धबाह्य दशा।

''तब फिर मन लीन हो जाता है। मन का नाश हो जाता है। महाकारण में नाश हो जाता है। मन का नाश हो जाने पर खबर नहीं। यही है चैतन्यदेव की अन्तर्दशा।

''अन्तर्मुख अवस्था क्या है, जानते हो? दयानन्द ने कहा था, अन्दर आओ, कपाट बन्द करो! अन्दर के घर में हर कोई नहीं जा सकता।

"मैं दीपशिखा को लेकर आरोप किया करता था। लाल-से रंग को कहता स्थूल, उसके भीतर सफेद-सफेद भाग को कहता सूक्ष्म, सब से भीतर के काले तिनके जैसे भाग को कहता कारण शरीर।

"ध्यान जो ठीक हो रहा है, उसका लक्षण है। एक लक्षण तो यह है कि जड़ समझ कर सिर पर पक्षी बैठ जाएगा।"

(पूर्वकथा— केशव का प्रथम दर्शन 1864,
ध्यानस्थ— चक्षु खोलकर भी ध्यान होता है)

"केशवसेन को पहले पहल आदि समाज में देखा था। वेदी के ऊपर कई जन बैठे थे, केशव बीच में बैठे थे। देखा, मानो काठवत् है! सेजोबाबू (मथुरबाबू) से कहा, 'उसके फातने को देखो, मछली ने खा लिया है! ऐसा ध्यानी था। इसी कारण ईश्वर की इच्छा से जो चीजें मन में चाही थीं (मान-शान आदि) वे हो गईं।'

"खुले चक्षु से भी ध्यान होता है। बातें कर रहा है, तब भी ध्यान होता है। जैसे कल्पना करो, किसी के दाँत में दर्द है, कन्-कन् कर रहा है!"

ठाकुरों (टैगोर परिवार) का शिक्षक— जी, उसको तो खूब जानता हूँ। *(हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ जी, दाँत-दर्द यदि हो तो सब कर्म करता है, किन्तु मन दर्द की ओर रहता है। तब तो फिर ध्यान आँख खोल कर भी होता है, बातें करते-करते भी होता है।

शिक्षक— पतित पावन नाम उनका है, इसीलिए भरोसा है। वे दयामय हैं।

(पूर्वकथा— सिख और श्रीयुक्त कृष्णदास के साथ बातें)

श्रीरामकृष्ण— सिखों ने भी कहा था, 'वे दयामय हैं'। मैंने कहा, 'वे किस तरह दयामय हैं?' तो वे बोले, 'क्यों महाराज! उन्होंने हमारी सृष्टि की, हमारे लिए चीजें तैयार कीं, हमें मनुष्य बनाया, पद-पद पर हमारी विपद से रक्षा

करते हैं।' तो मैं बोला, 'वे हमें जन्म देकर पाल रहे हैं, खिला रहे हैं, तो फिर इसमें क्या बहादुरी है? तुम्हारा यदि बेटा हो तो उसको फिर क्या बामुनपाड़ा के लोग आकर पालेंगे?'

शिक्षक— जी, किसी का झट से हो जाता है, किसी का नहीं होता, इसका क्या अर्थ है?

(लालाबाबू* और रानी भवानी का वैराग्य— संस्कार से सत्त्वगुण)

श्रीरामकृष्ण— जानते हो क्या है? बहुत-सा तो पूर्वजन्म के संस्कारों से होता है। लोग समझते हैं, हठात् हो गया है।

"किसी ने प्रात: एक बोतल पी ली थी, उससे बहुत अधिक पागलपन, लड़खड़ाहट आरम्भ हो गई। लोग तो अवाक्! एक बोतल से इतना मतवाला कैसे हो गया? किसी ने कहा, अरे भाई, सारी रात शराब पी है।

"हनुमान ने सोने की लंका जला दी। लोग अवाक् हो गए! एक बन्दर ने आकर सब जला दिया। किन्तु फिर कहा, मूल बात तो यह है कि सीता के नि:श्वासों से और राम के कोप से जल गई थी।

"और देखो, लालाबाबू— इतना ऐश्वर्य; पूर्वजन्म के संस्कार बिना झट से वैराग्य क्या होता है? और रानी भवानी— नारी होकर इतनी ज्ञान-भक्ति!"

(कृष्णदास का रजोगुण— तभी जगत का उपकार)

"शेष जन्म में सत्त्वगुण रहता है, भगवान में मन होता है; उनके लिए मन व्याकुल होता है, नाना विषयों में से मन हट जाता है।

"कृष्णदासपाल आया था। रजोगुण देखा! तो भी हिन्दु है, जूता

---

* लालाबाबू, बंगाली जाति का गौरव, पाइकापाड़ा का श्री कृष्णचन्द्र सिंह। यौवन में वैराग्य— सात लाख वार्षिक आय की सम्पत्ति त्याग की। तीस वर्ष की आयु में मथुरावास। चालीसवें वर्ष में मधुकरी, भिक्षाजीवी। बयालीस में श्री-प्राप्ति। पत्नी 'राणी कात्यायनी'। नि:सन्तान। गुरु कृष्णदास बाबा जी, भक्तमाल का (बंगला पद्य में) अनुवादक।

बाहिर रखा था। थोड़ी-सी बातें करने पर देख लिया, भीतर कुछ भी नहीं है। पूछा था, 'मनुष्य का कर्त्तव्य क्या है ?' तब कहा, 'जगत का उपकार करना।' मैंने कहा, 'जी, तुम कौन हो ? और क्या उपकार करोगे ? और जगत ही फिर क्या इतना-सा है जी, जो तुम उपकार करोगे'!''

नाराण आए हैं। ठाकुर को भारी आनन्द हुआ है। नाराण को छोटी खाट के ऊपर निकट बिठाया। देह पर हाथ द्वारा प्यार करने लगे। मिठाई खाने को दी। और सस्नेह बोले, जल पिएगा ? नाराण मास्टर के स्कूल में पढ़ते हैं। ठाकुर के पास आने के कारण घर में मार खाते हैं। ठाकुर सस्नेह ज़रा हँसते-हँसते कहते हैं, ''तू एक चमड़े का जामा (लम्बा कोट) बनवा ले, तो फिर मारने पर लगेगा नहीं।''

ठाकुर ने हरीश से कहा, (तामाक खाबो) हुक्का पीऊँगा।

(स्त्रियों को लेकर साधन, ठाकुर का बार-बार निषेध— घोषपाड़ावत्)

और फिर नारायण (नाराण) को सम्बोधन करके कहते हैं—

''हरिपद की वही बनाई हुई माँ आई थी। मैंने हरिपद को खूब सावधान कर दिया था। उनका घोषपाड़ा का मत है। मैंने उससे पूछा था, तुम्हारा कोई आश्रय है ? वह बोली, हाँ, अमुक चक्रवर्ती।''

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— आहा, नीलकण्ठ उस दिन आया था। ऐसा भाव! और किसी दिन आएगा, कह गया है। गाना सुनाएगा।

''आज उधर नाच हो रहा है, जाकर देखो जी, जाओ ना! *(रामलाल से)* तेल तो नहीं है, *(बर्तन की ओर देखते हुए)* कहाँ, तेल तो इस भाण्डे में नहीं है।''

तृतीय परिच्छेद

पुरुषप्रकृति-विवेक-योग— राधाकृष्ण, वे कौन? आद्याशक्ति

(वेदान्तवागीश, दयानन्द सरस्वती, कर्नल अल्कट्, सुरेन्द्र, नाराण)

अब ठाकुर श्रीरामकृष्ण टहल रहे हैं; कभी कमरे के भीतर, कभी कमरे के दक्षिण की ओर के बरामदे में, कभी फिर पश्चिम की ओर के गोल बरामदे में खड़े होकर गंगा-दर्शन कर रहे हैं।

(संग (environment)-दोष-गुण, छवि, वृक्ष, बालक)

कुछ समय बाद फिर छोटी खाट पर बैठ गए। तीन बज गए हैं। भक्तगण फिर आकर फरश पर बैठ गए। ठाकुर छोटी खाट पर चुप बैठे हैं। एक-एक बार कमरे की दीवार की ओर दृष्टि डाल रहे हैं। दीवार पर अनेक तस्वीरें हैं। ठाकुर के बायीं ओर श्री श्री वीणापाणि की छवि, उसके कुछ दूर निताई गौरभक्तों के संग में कीर्त्तन कर रहे हैं। ठाकुर के सामने ध्रुव और प्रह्लाद की छवि और माँ काली की मूर्ति हैं। ठाकुर के दायीं ओर की दीवार के ऊपर राजराजेश्वरी की मूर्ति, पीछे की दीवार पर यीशु की छवि है— पीटर डूब रहे हैं, यीशु बचा रहे हैं। ठाकुर हठात् मास्टर से कह रहे हैं—

"देखो, साधु-संन्यासी का चित्र कमरे में रखना भला है। प्रातः के समय उठकर अन्य मुख न देखकर साधु-संन्यासियों का मुख देखकर उठना अच्छा है। दीवार पर अंग्रेज़ी छवि— धनी, राजा, क्वीन (रानी), रानी के बेटे की छवि; साहब-मेम टहल रहे हैं, उसकी छवि रखना— इनसे रजोगुण होता है।

"जैसे संग में रहता है, वैसा ही स्वभाव हो जाता है। तभी तो छवि से भी दोष है। और फिर अपना जैसा स्वभाव होता है, व्यक्ति उसी प्रकार का संग खोजता है। परमहंसगण दो-चार लड़के पास रख लेते हैं— निकट आने देते हैं— पाँच-छः वर्ष के बच्चों को। उस अवस्था में बच्चों के बीच में रहना

अच्छा लगता है। बच्चे सत्त्व, रज, तम— किसी भी गुण के वश में नहीं होते।

"वृक्ष देखने से तपोवन का स्मरण हो जाता है— ऋषि तपस्या कर रहा है, उद्दीपन होता है।"

सींथी के एक ब्राह्मण ने कमरे में प्रवेश किया और ठाकुर को प्रणाम किया। इन्होंने काशी में वेदान्त पढ़ा था। स्थूलकाय, सदा हँस-मुख।

श्रीरामकृष्ण— क्यों भाई, कैसे हो? बहुत दिनों से आए नहीं।

पण्डित *(सहास्य)*— जी, गृहस्थी का काम। और आप तो जानते ही हैं, समय भी नहीं होता।

पण्डित ने आसन ग्रहण किया। उनके साथ बातें होती हैं।

श्रीरामकृष्ण— काशी में आप अनेक दिन थे, क्या-क्या देखा, कुछ बताओ। दयानन्द* की बात कुछ बताओ।

पण्डित— दयानन्द के साथ मेल हुआ था। आप तो मिले थे!

श्रीरामकृष्ण— मिलने गया था, तब उस तरफ एक बाग में वह था। केशवसेन के आने की बात थी उस दिन। वह जैसे चातक की तरह केशव के लिए उतावला होने लगा। खूब पण्डित है। बंगला भाषा को कहता था, गौराण्ड भाषा (गौरांग भाषा)। देवता मानता था— केशव नहीं मानता था! उसने कहा ईश्वर ने इतनी वस्तुएँ बनाई हैं और फिर देवता नहीं बना सकते! निराकारवादी! काप्तेन 'राम-राम' कह रहा था, वह बोला, उस की अपेक्षा तो 'सन्देश-सन्देश' बोलो।

पण्डित— काशी में दयानन्द के साथ पण्डितों का खूब विचार हुआ। अन्त में सब एक ओर, और वह एक ओर। फिर इस प्रकार विचार उठाया उन्होंने कि उसे रक्षा के लिए भागते ही बना। सब एक संग उच्च स्वर में कहने लगे— 'दयानन्देन यदुक्तं तद्धेयम्' (दयानन्द ने जो कहा, सब त्याज्य है)।

---

* दयानन्द सरस्वती, (1824—1883)। 1869 में काशी के आनन्दबाग में विचार। कलकत्ता में रहे, ठाकुरों के नैनाल बागान के प्रमोद कानन में दिसम्बर 1872 से मार्च 1873 तक। उसी समय श्रीरामकृष्ण, केशव और काप्तेन का दर्शन। सम्भवत: काप्तेन ने ठाकुर का उसी समय दर्शन किया था।

(श्रीरामकृष्ण और थियोसफी—
वे क्या ईश्वर को व्याकुल होकर खोजते हैं ?)

''और फिर कर्नल अल्कट् को भी मिला था। वे कहते हैं, सब 'महात्मा' हैं। और चन्द्रलोक, सूर्यलोक, नक्षत्रलोक इत्यादि सब हैं। सूक्ष्म शरीर है, वही सब जगह जाता है— ऐसी-ऐसी बहुत-सी बातें हैं। अच्छा महाशय, आपको थियोसफी कैसी लगती है ?

श्रीरामकृष्ण— भक्ति ही एकमात्र सार है— ईश्वर में भक्ति! वे क्या भक्ति खोजते हैं ? तब तो भला है। भगवान-लाभ यदि उद्देश्य है तब तो भला है। चन्द्रलोक, सूर्यलोक, नक्षत्रलोक, महात्मा— केवल इन्हें ही लेकर रहने से ईश्वर को खोजना नहीं होता। उनके पादपद्मों में भक्ति होने के लिए साधन करना चाहिए, व्याकुल होकर पुकारना चाहिए। नाना प्रकार की वस्तुओं से मन को समेट कर उनमें लगाना होगा।

यह कहकर ठाकुर ने रामप्रसाद का गाना शुरु कर दिया—

मन कर कि तत्त्व ताँरे येनो उन्मत्त आँधार घरे।
से जे भावेर विषय, भाव व्यतीत अभावे कि धरते पारे॥
से भाव लागि परम योगी योग करे युग युगान्तरे।
होले भावेर उदय लय से जेमन लोहाके चुम्बके धरे॥[1]

''फिर शास्त्र कहो, दर्शन कहो, वेदान्त कहो— किसी में भी वे नहीं हैं। उनके लिए प्राण व्याकुल बिना हुए कुछ भी नहीं होगा।

षड्दर्शन न पाय दरशन आगम निगम तन्त्रसारे।
से जे भक्तिरसेर रसिक सदानन्दे विराज करे पूरे॥[2]

---

1 अरे मन, तू उनके विषय में उन्मत्त की भाँति अन्धेरे घर में क्या विचार कर रहा है ? वह तो भाव का विषय है, भाव के बिना अभाव में क्या पकड़ सकते हो ? युग- युगान्तर से परम योगी उसी भाव के लिए योग करते आ रहे हैं। भाव के उदय हो जाने पर वह वैसे ही मिल जाता है जैसे चुम्बक लोहे को खींच लेता है।

2 षड्दर्शन, आगम, निगम (वेद-वेदान्त), तन्त्र आदि कोई भी उनका दर्शन नहीं पाता। वे तो भक्ति रस के रसिक सदानन्द में अन्तर में निवास करते हैं।

''खूब व्याकुल होना चाहिए। एक गाना सुनो—

राधार देखा कि पाय सकले!*

(अवतार भी साधन करते हैं लोकशिक्षार्थ— साधन, तभी ईश्वर-दर्शन)

''साधन का खूब प्रयोजन है, फिर चटपट क्या ईश्वर-दर्शन होता है?

''किसी ने पूछा था, कहाँ, मैं तो ईश्वर-दर्शन नहीं कर पाता। तब फिर मन में आया तो कहा, बड़ी मछली पकड़नी है, तो आयोजन करो। चारा (मछलियों को आकृष्ट करने का मसाला) बनाओ। हाथ में डोरी और छिप (पतला बाँस बँसी वाला) जुटाओ। गन्ध पाकर गम्भीर जल में से मछली आएगी। जल के हिलने से पता लग जाएगा बड़ी मछली आ रही है।

''मक्खन खाने की इच्छा है। तो दूध में मक्खन है, दूध में मक्खन है— कहने से क्या होगा? मेहनत करने पर ही तब मक्खन निकलेगा। 'ईश्वर हैं, ईश्वर हैं', कहने से क्या ईश्वर दिखाई देते हैं? साधन चाहिए।

''भगवती ने स्वयं पंचमुण्डी के ऊपर बैठ कर कठोर तपस्या की थी— लोकशिक्षा के लिए। श्री कृष्ण हैं साक्षात् पूर्णब्रह्म। उन्होंने भी राधायंत्र पड़ा हुआ मिल जाने पर लोकशिक्षा के लिए तपस्या की थी।

(राधा ही आद्याशक्ति व प्रकृति— पुरुष व प्रकृति, ब्रह्म व शक्ति अभेद)

''श्री कृष्ण पुरुष; राधा प्रकृति, चित्-शक्ति— आद्याशक्ति। राधा प्रकृति हैं त्रिगुणमयी! इनके भीतर सत्त्व, रज, तम, तीनों गुण हैं। जैसे प्याज छीलते समय प्रथम लाल— काले से रंग का, फिर लाल, फिर सफेद निकलता रहता है। वैष्णव शास्त्र में है, कामराधा, प्रेमराधा, नित्यराधा। कामराधा चन्द्रावली; प्रेमराधा श्रीमती; नित्यराधा नन्द ने देखी थी— गोद में गोपाल थे।

''यह चित् शक्ति और वेदान्त का ब्रह्म (पुरुष) अभेद है। जैसे जल

---

* सम्पूर्ण गान तथा भावार्थ के लिए इसी ग्रन्थ का पृष्ठ 146 देखिए।

और उसकी हिमशक्ति। जल की हिमशक्ति की भावना करते ही जल की भावना आ पड़ती है; और फिर जल की भावना करते ही जल की हिम शक्ति की भावना आ जाती है। साँप और साँप की तिर्यक् गति। तिर्यक् गति को सोचते ही साँप का विचार आ जाता है। ब्रह्म किस समय कहता हूँ? —जब निष्क्रिय हैं अथवा कार्य से निर्लिप्त हैं। पुरुष जब कपड़ा पहनता है, तब वही पुरुष ही रहता है। दिगम्बर था फिर साम्बर हो गया— फिर दोबारा दिगम्बर होगा। साँप के भीतर विष है, साँप को कुछ भी नहीं होता। जिसे काटेगा, उसके लिए ही विष है। ब्रह्म निज निर्लिप्त हैं।

"नामरूप जहाँ पर हैं, वहाँ पर ही प्रकृति का ऐश्वर्य है। सीता ने हनुमान से कहा था, वत्स— मैं ही एक रूप में राम, मैं ही एक रूप में सीता बनी हुई हूँ; एक रूप में इन्द्र, एक रूप में इन्द्राणी; एक रूप में ब्रह्मा, एक रूप में ब्रह्माणी; एक रूप में रुद्र, एक रूप में रुद्राणी बनी हुई हूँ। नामरूप जो है, सब चित्-शक्ति का ऐश्वर्य है। चित्-शक्ति का ऐश्वर्य समस्त ही है, यहाँ तक कि ध्यान, ध्याता तक। मैं ध्यान कर रहा हूँ, जब तक यह बोध है तब तक उनके ही इलाके में हूँ।

(मास्टर के प्रति)— "इन सब की धारणा करो। वेद, पुराण सुनना चाहिए, उन्होंने जो कहा है, करना चाहिए।

(पण्डित के प्रति)— "बीच-बीच में साधुसंग अच्छा है। रोग तो मनुष्य को लगा ही हुआ है। साधुसंग से बहुत हट जाता है।

(वेदान्तवागीश को शिक्षा— साधुसंग करो; मेरा कोई नहीं; दास भाव)

"मैं और मेरा, यह अज्ञान है। हे ईश्वर! तुम्हीं सब कर रहे हो, और तुम्हीं मेरे अपने जन हो। और यह समस्त घर-द्वार, परिवार, आत्मीय, बन्धु, समस्त जगत तुम्हारा है। सब कुछ तुम्हारा है— इसका नाम ही है ठीक ज्ञान। और मैं सब कर रहा हूँ, मैं कर्त्ता हूँ; मेरा घर, मकान, परिवार, लड़के, बन्धु, विषय— यह सब अज्ञान है।

"गुरु शिष्य को यह बात समझा रहे थे— ईश्वर तुम्हारा अपना है और

कोई अपना नहीं है। शिष्य ने कहा, 'जी, माँ-स्त्री ये तो खूब प्यार करती हैं; बिना देखे अँधेरा देखती हैं, कितना प्यार करती हैं!' गुरु ने कहा, 'यह तुम्हारे मन की भूल है। मैं तुम्हें दिखला देता हूँ कि कोई तुम्हारा नहीं है। ये दवाई की कुछ गोलियाँ अपने पास रख लो। घर जाकर खा कर लेट जाना। लोग समझेंगे कि तुम्हारी देह छूट गई है। किन्तु तुम्हारी बाहिरी सब होश रहेगी, तुम सब कुछ देख-सुन सकोगे;— मैं उसी समय पहुँच जाऊँगा।'

''शिष्य ने वैसा ही किया। घर जाकर कई गोलियाँ खा लीं; खा कर बेहोश होकर लेटा रहा। माँ, स्त्री, घर के सब जनों ने रोना आरम्भ कर दिया। उस समय गुरु जी कविराज के वेश में आ गए। समस्त सुन कर बोले, 'अच्छा इसकी दवा है— यह बच कर फिर उठ जाएगा। फिर भी एक बात और है। यह औषध पहले अपने एक जन को खानी पड़ेगी, फिर उसको दी जाएगी। किन्तु आपका जो व्यक्ति उस गोली को खाएगा उसकी मृत्यु हो जाएगी। और यहाँ पर उनकी माँ अथवा स्त्री आदि सब तो हैं, एक न एक जन कोई तो खा ही लेगा, सन्देह नहीं है। बस फिर लड़का बच जाएगा।'

''शिष्य समस्त सुन रहा है। कविराज ने पहले माँ को बुलाया। माँ कातर होकर धूलि में लोट-पोट हो रही थी। कविराज ने कहा, 'माँ! अब रोना नहीं पड़ेगा। तुम यह औषध खा लो, तो फिर उससे लड़का बच जाएगा। किन्तु इससे तुम्हारी मृत्यु हो जाएगी।' माँ औषध हाथ में लेकर सोचने लगी। बहुत सोच-विचार कर रोने लगी, 'बेटा, मेरे तो और भी कई लड़के-लड़कियाँ हैं। मर जाने पर क्या होगा, यही सोच रही हूँ। कौन उन्हें देखेगा, खिलाएगा, उनके लिए चिन्ता है।' तब स्त्री को बुलाकर दवा दी गई, स्त्री भी खूब क्रन्दन कर रही थी। औषध हाथ में लेकर वह भी सोचने लगी, 'अजी, उनका तो जो होना था वह तो हो ही गया है; मेरे छोटे-छोटे बच्चों का अब क्या होगा, बताओ? कौन उनकी रक्षा करेगा? मैं कैसे यह औषध खा लूँ?' शिष्य का तब तक औषध का नशा चला गया था। वह समझ गया कि कोई किसी का नहीं है। वह झटपट उठ कर गुरु के संग चला गया। गुरु ने कहा, 'तुम्हारा अपना केवल एक जन है— ईश्वर।'

''जभी उनके पादपद्मों में जिससे भक्ति हो,— जिससे वे ही 'मेरे हैं'

ऐसा जान कर प्यारे लगें— वैसा ही करना अच्छा है। संसार को तो देख ही रहे हो, दो दिन के लिए ही तो है। और इसमें कुछ भी तो नहीं है।''

(गृहस्थ सर्वत्याग नहीं कर सकता—
ज्ञान अन्तःपुर में नहीं जाता भक्ति जा सकती है)

पण्डित *(सहास्य)*— जी, यहाँ पर आ जाने से उस दिन तो पूर्ण वैराग्य हो जाता है। इच्छा होती है कि संसार छोड़कर चला जाऊँ।

श्रीरामकृष्ण— नहीं, त्याग क्यों करना होगा? आप लोग मन से त्याग करो। गृहस्थ (संसार) में अनासक्त होकर रहो।

''सुरेन्द्र यहाँ पर बीच-बीच में आकर रहेगा। इसलिए उसने बिस्तरा ला कर रखा था। दो-एक दिन आया भी था, फिर उसकी स्त्री ने कहा, 'दिन के समय जहाँ इच्छा हो वहाँ जाओ, रात को घर से नहीं जाना।' तब सुरेन्द्र फिर क्या करे? रात को जो बाहिर रहना ही नहीं!

''और देखो, केवल विचार करने से क्या होगा? उनके लिए व्याकुल होओ, उनको प्यार करना सीखो। ज्ञान-विचार पुरुष है, घर के बाहिर के कमरे तक जाता है। भक्ति स्त्री है, अन्तःपुर तक जाती है।

''कोई एक भाव लेना चाहिए। तभी ईश्वर-लाभ होता है। सनक आदि ऋषियों ने शान्तभाव लिया था। हनुमान ने दासभाव लिया था। श्रीदाम, सुदामा, ब्रज के गोपों का सख्यभाव था। यशोदा का वात्सल्यभाव— ईश्वर में सन्तानबुद्धि। श्रीमती का था मधुरभाव।

''हे ईश्वर! तुम प्रभु हो, मैं दास हूँ— इसी भाव का नाम है, दास-भाव। साधक के लिए यह भाव खूब अच्छा है।''

पण्डित— जी हाँ।

चतुर्थ परिच्छेद

(ईशान को उपदेश— भक्तियोग और कर्मयोग— ज्ञान का लक्षण)

सींथी के पण्डित चले गए हैं। धीरे-धीरे सन्ध्या हो गई। श्री काली-मन्दिर में ठाकुरों की आरती का बाजा बज उठा। श्रीरामकृष्ण ठाकुरों को नमस्कार कर रहे हैं। छोटी खाट पर उन्मना बैठे हैं। कई-एक भक्त आकर फरश पर फिर दोबारा बैठ गए। कमरा नि:शब्द।

रात एक घण्टा हो गई। ईशान मुखोपाध्याय और किशोरी आ गए। उन्होंने ठाकुर को प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। ईशान को पुरश्चरण* आदि शास्त्र-लिखित कर्मों में खूब अनुराग है। ईशान कर्मयोगी हैं। अब ठाकुर बातें करते हैं—

श्रीरामकृष्ण— ज्ञान-ज्ञान बोलने से क्या होता है? ज्ञान होने के लक्षण हैं। दो लक्षण हैं— प्रथम अनुराग अर्थात् ईश्वर में प्यार। केवल ज्ञान-विचार करता है, किन्तु ईश्वर में अनुराग नहीं, प्यार नहीं, वह मिथ्या है। और एक लक्षण है— कुण्डलिनी शक्ति का जागरण। कुलकुण्डलिनी जब तक सोई रहती है, तब तक ज्ञान नहीं होता। बैठा-बैठा पुस्तक पढ़ता रहता है, विचार करता रहता है, किन्तु भीतर व्याकुलता नहीं, वह तो ज्ञान का लक्षण नहीं है।

"कुण्डलिनी शक्ति का जागरण होने पर भाव, भक्ति, प्रेम इत्यादि होता है। इसी का नाम है भक्तियोग।

"कर्मयोग बड़ा कठिन है। कर्मयोग से कई शक्तियाँ हो जाती हैं— सिद्धियाँ हो जाती हैं।"

ईशान— मैं हाजरा महाशय के पास जाता हूँ।

ठाकुर चुप रहे। कुछ क्षण पश्चात् ईशान फिर दोबारा कमरे में आए। संग हाजरा हैं। ठाकुर नि:शब्द बैठे हैं। कुछ क्षण के बाद हाजरा ने ईशान से कहा, 'चलो, ये अब ध्यान करेंगे।' ईशान और हाजरा चले गए।

ठाकुर नि:शब्द बैठे हैं। क्रमश: सचमुच ही ध्यान कर रहे हैं। हाथ

---

* कार्यसिद्धि के लिए किसी देवता के नाम का जप और हवन में आहुति।

पर जप कर रहे हैं। वही हाथ एक बार सिर के ऊपर रखा, फिर कपाल पर, फिर कण्ठ पर, फिर हृदय पर, फिर नाभि पर।

श्रीरामकृष्ण क्या षट्चक्र में आद्याशक्ति का ध्यान कर रहे हैं? शिव-संहिता आदि शास्त्र में जिस योग की बात है, वह क्या यही है?

पंचम परिच्छेद

(निवृत्ति मार्ग— ईश्वर-लाभ के पश्चात् कर्म-त्याग)

(ईशान को शिक्षा— उत्तिष्ठत, जाग्रत— कर्मयोग बड़ा कठिन)

ईशान हाजरा के साथ काली-मन्दिर गए। ठाकुर ध्यान कर रहे थे। रात प्रायः साढ़े सात। इसी बीच अधर आ गए।

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर माँ काली के दर्शन को गए। दर्शन करके पादपद्मों से निर्माल्य लेकर मस्तक पर धारण किया— माँ को प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा की और चमर लेकर माँ पर डोलाया। ठाकुर भाव में मतवाले हो रहे हैं। बाहिर आते समय देखा, ईशान कोशाकुशी* लेकर सन्ध्या कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(ईशान के प्रति)*— क्या, आप तब से ही आए हुए हो? आह्निक *(सन्ध्या-वन्दन)* कर रहे हो? एक गाना सुनो।

भावोन्मत्त होकर ईशान के पास बैठकर मधुर कण्ठ से गाते हैं—

गया गंगा प्रभासादि काशी कांची केबा चाय।
काली काली काली बोले आमार अजपा यदि फुराय॥

त्रिसन्ध्या जे बोले काली, पूजा सन्ध्या से कि चाय।
सन्ध्या तार सन्धाने फिरे कभु संधि नाहि पाय॥

दया व्रत दान आदि आर किछु ना मने लय,
मदनेर यागयज्ञ ब्रह्ममयीर रांगा पाय।

---

* पूजा में प्रयुक्त वस्तुएँ

काली नामेर एतो गुण केबा जानते पारे ताय।
देवादिदेव महादेव जार पंचमुखे गुण गाय।

[भावार्थ— काली-नाम निरंतर लेता हुआ यदि कोई शरीर छोड़ सके तो काशी, कांची, प्रभास, गया, गंगा आदि की कोई चाह नहीं होती। जो व्यक्ति त्रिसन्ध्या काली का नाम लेता रहता है, उसको सन्ध्या-वन्दना की चाह नहीं रहती। स्वयं सन्ध्या उस व्यक्ति की तलाश में रहती है, पर कभी भी मिलने का अवसर नहीं पाती, क्योंकि नाम से वह कभी खाली नहीं रहता। जप, यज्ञ, पूजा, हवन आदि में उसकी रुचि नहीं रहती। मदन (कवि) का यागयज्ञ तो सब ब्रह्ममयी के रक्त चरण ही हैं। जिस काली-नाम का गुणगान स्वयं देवादिदेव महादेव पाँच मुखों से गाया करते हैं, उस नाम का रहस्य भला कौन जान सकता है ?]

"सन्ध्यादि कितने दिन ? जब तक उनके पादपद्मों में भक्ति नहीं होती— उनका नाम करते-करते आँखों से जब तक जल नहीं गिरता— और शरीर में रोमांच जितने दिन नहीं होता।

रामप्रसाद बोले भक्ति मुक्ति उभये माथाय रेखेछि,
आमि काली ब्रह्म जेने मर्म धर्माधर्म सब छेड़ेछि।

(रामप्रसाद कहते हैं मैंने काली ब्रह्म का मर्म जानकर भक्ति और मुक्ति दोनों को मस्तक पर रख लिया है और धर्म-अधर्म सब छोड़ दिए हैं।)

"जब फल होता है तो फूल झड़ जाता है; जब भक्ति होती है, जब ईश्वर-लाभ हो जाता है, तब सन्ध्यादि कर्म चले जाते हैं।

"गृहस्थ की बहू के पेट में जब सन्तान होती है, सास तब काम कम कर देती है। दस महीने हो जाने पर फिर गृहस्थी का काम नहीं करने देती। फिर जब सन्तान पैदा हो जाती है तब वह केवल बच्चे को गोद में लेकर उसकी सेवा करती है। कोई काम भी उसे नहीं रहता। ईश्वर-लाभ हो जाने पर सन्ध्यादि कर्म छूट जाते हैं।

"तुम्हारा इस प्रकार करने से, धीमा तिताला बजाने से नहीं चलेगा। तीव्र वैराग्य आवश्यक है। 14 मास का एक वर्ष करने से क्या होता है ? तुम्हारे भीतर तो जैसे जोर ही नहीं है। शक्ति नहीं है, भीगा चिड़वा जैसे हो। उठ पड़ लगो। कमर कसो।

''जभी तो मुझे वह गाना अच्छा नहीं लगता। 'हरि से लागि रहो रे भाई, तेरी बनत-बनत बनि जाई।' 'बनत-बनत बनि जाई'— मुझे अच्छा नहीं लगता। तीव्र वैराग्य माँगता हूँ। हाजरा से भी वही कहता हूँ।''

(श्रीरामकृष्ण और योगतत्त्व— कामिनी-काँचन योग के विघ्न)

''क्यों तीव्र वैराग्य नहीं होता, पूछते हो? उसका अर्थ है। भीतर वासना-प्रवृत्ति भरी हुई है। हाजरा को भी वही कहता हूँ। उस देश में मैदान में जल लाते हैं, मैदान के चारों ओर मेंड़ बना लेते हैं कि कहीं पीछे जल न निकल जाए। कीचड़ की मेंड़, किन्तु मेंड़ के बीच-बीच में गरत बने हुए हैं। गड्ढे। प्राणपण से जल लाता है, किन्तु मुखों द्वारा निकल जाता है। वासना ही छिद्र हैं, मुख हैं। जप-तप तो चाहे करता है, किन्तु पीछे वासना है। वासना-मुख द्वारा सब निकल जाता है।

''सरका-कल द्वारा मछली पकड़ते हैं। बाँस सीधा रहना चाहिए। किन्तु वह झुका कर क्यों रखा जाता है? मछली जो पकड़नी है। वासना मछली है। जभी मन संसार में झुका रहता है। वासना न हो तो मन की सहज ही में ऊर्ध्व दृष्टि होती है— ईश्वर की ओर।

''कैसे है, जानते हो? जैसे निक्ति का काँटा। कामिनी-काँचन का भार होने के कारण ऊपर का काँटा, नीचे का काँटा एक नहीं होता। जभी योग-भ्रष्ट हो जाता है। दीपशिखा नहीं देखी? ज़रा-सी हवा लगते ही चंचल हो जाती है। योगावस्था दीपशिखा की भाँति है— जहाँ पर हवा नहीं।

''मन बिखर गया है— कुछ ढाका में चला गया, कुछ दिल्ली चला गया, कुछ कूचविहार। उसी मन को समेटना होगा। समेट कर एक स्थान पर लाना होगा। तुम यदि सोलह आने का कपड़ा चाहते हो तो फिर सोलह आने कपड़े वाले को तो देने पड़ेंगे ही। तनिक-सा भी विघ्न रहने पर योग नहीं होने का। टैलिग्राफ की तार यदि ज़रा-सी भी टूटी हुई हो तो खबर नहीं जाएगी।''

(त्रैलोक्य— विश्वास का जोर— निष्काम कर्म करो— जोर करके कहो 'मेरी माँ')

"वह गृहस्थ में है, रहे भी तो क्या? किन्तु कर्मफल ईश्वर को समस्त समर्पण करना होगा। स्वयं किसी भी फल की कामना नहीं करते।

"फिर भी एक बात है। भक्ति-कामना कामना के भीतर नहीं है। भक्ति-कामना, भक्ति-प्रार्थना कर सकते हो।

"भक्ति का तम लाओगे। माँ से जबरदस्ती करो—

"माये पोये मोकद्दमा धूम होबे रामप्रसाद बोले,
तखन शान्त होबो क्षान्त होये आमाय जखन करबि कोले॥"

(रामप्रसाद कहते हैं— माँ-बेटे का मुकद्दमा खूब ज़ोर से होगा, मैं तब शान्त होऊँगा जब माँ क्षमा करके मुझे गोद में उठा लेगी।)

"त्रैलोक्य ने कहा था, मैंने जब उनके घर जन्म लिया है, तब तो मेरा हिस्सा है।

"तुम्हारी तो अपनी माँ है, जी! यह क्या बनाई हुई माँ है? यह क्या धर्म की माँ है? इस पर ज़ोर नहीं चलेगा तो फिर किस पर ज़ोर चलेगा? कहो—

"मा आमि कि आटाशे छेले, आमि भय करिनि चोख रांगाले।
एबार करबो नालिस् श्रीनाथेर आगे, डिक्रि लोबो एक सउयाले।

(माँ, मैं क्या गर्भ के आठवें महीने पैदा हुआ दुर्बल लड़का हूँ? आप के लाल आँखें करने से मैं भय नहीं करता। अब की बार श्रीनाथ के सामने नालिश करूँगा और एक सवाल पर ही डिकरी ले लूँगा।)

"अपनी माँ हैं। जोर करो। जिसकी जिसमें सत्ता रहती है, उसकी उस पर खींच भी रहती है। माँ की सत्ता क्योंकि मेरे अन्दर है तभी तो माँ की ओर इतनी खींच रहती है। जो ठीक-ठीक शैव है, वह शिव की सत्ता पाता है, कुछ कण उसके भीतर आ जाते हैं। जो ठीक वैष्णव है, उसमें नारायण की सत्ता आ जाती है।

और इस समय तो तुम्हें फिर और विषय कर्म नहीं करना पड़ता। अब कुछ दिन उनका चिन्तन करो। देख तो लिया है, संसार में कुछ नहीं है।''

ठाकुर फिर उसी मधुर कण्ठ से गाते हैं—

भेवे देखो मन केउ कारु नय मिछे भ्रम भूमण्डले।
भूलो ना दक्षिणा काली बद्ध होये माया जाले॥
दिन दुइ तिन दिनेर कर्त्ता बोले सवाई माने,
सेइ कर्त्ता के देबे फेले कालाकालेर कर्त्ता एले॥
जार जन्य मरो भेवे से कि तोमार संगे जाबे,
सेइ प्रेयसी दिबे छड़ा अमंगल होबे बोले॥

[भावार्थ— हे मन! विचार करके देखो, इस भूमण्डल में कोई नहीं है, केवल झूठा भय ही है। माया-जाल में बद्ध होकर दक्षिणा काली (रक्षिका माँ) को मत भूलो। यहाँ पर दो-तीन दिन के लिए मालिक के रूप में सब ही मानते हैं। जब काल का भी कर्त्ता आ जाएगा तब उस पूर्व वाले कर्त्ता को फेंक देगा। जिनके लिए तुम मर रहे हो, वे क्या तुम्हारे साथ जाएँगे, ज़रा सोच कर तो देखो? वही प्रियतमा अमंगल (अशुभ) की आशंका से गंगा-जल आदि छिड़कती फिरेगी।]

(पंचायती, मुखियापन, हस्पताल, डिस्पैन्सरी बनवाने की वासना— लोकमान्य, पाण्डित्य-वासना— ये सब हैं आदिकाण्ड— लालचूसनी-त्याग के पश्चात् ईश्वर-लाभ)

''और तुम पंचायती, मुखियापनी इत्यादि क्या करते हो? लोगों का झगड़ा-विवाद मिटाते हो— तुम्हें पंच बनाते हैं, सुनता हूँ। वह सब तो अनेक दिनों से करते आ रहे हो। जिन्होंने करना है, वे करें। तुम अब उनके पादपद्मों में अधिक से अधिक मन दो। कहते हैं, 'लंका में रावण मरा, बहुला रो-रो कर आकुल हो गई।'

''वैसा ही शम्भू ने भी कहा था। कहने लगा, हस्पताल-डिस्पैन्सरी करूँगा। व्यक्ति भक्त था। जभी मैंने कहा, भगवान का साक्षात्कार होने पर क्या हस्पताल, डिस्पैन्सरी माँगोगे?

''केशवसेन ने कहा, ईश्वर-दर्शन क्यों नहीं होता? उस पर मैंने कहा

था कि तुम लोकमान्य, विद्या इत्यादि लिए हुए हो ना! तभी तो नहीं होता। बच्चा जब तक चूसनी लेकर चूसता रहता है, तब तक माँ नहीं आती। लाल चूसनी। कुछ देर पश्चात् चूसनी फेंक कर जब चीत्कार करता है, तब माँ भात की हाँडी उतार कर आ जाती है।

''तुम भी मुखियापन कर रहे हो। माँ सोचती है, मेरा बेटा मुखिया बनकर मजे में है। है, तो रहे।''

ईशान इस बीच ठाकुर के चरण-स्पर्श किए बैठे हैं। चरण पकड़ कर विनीत भाव से कहते हैं— मैं जो इच्छा करके ऐसा कर रहा हूँ, वैसा नहीं है।

(वासना का मूल महामाया— जभी कर्मकाण्ड)

श्रीरामकृष्ण— वह जानता हूँ। वह माँ का ही खेल है। उनकी ही लीला। संसार में बद्ध करके रखना, यह महामाया की इच्छा है। कैसे है, जानते हो? 'भवसागरे उठ्छे डुब्छे कतोई तरी।' (इस भवसागर में कितनी ही किश्तियाँ डूबती-उतराती हैं।) और भी— 'घुड़ी लक्षेर दुटो एकटा काटे, हेसे दाओ मा हात चापड़ि।' (लाखों पतंगों में से दो-एक कटती हैं, और तुम आनन्द से तालियाँ बजाती हो।) लाखों में से दो-एक जन मुक्त हो जाते हैं। बाकी सब ही माँ की इच्छा से बद्ध हुए रहते हैं।

''चोर-चोर का खेल देखा नहीं; धाई की इच्छा से ही वह खेल चलता है। सब ही यदि धाई को छू डालें, तब तो फिर खेल नहीं चलता। जभी तो धाई की इच्छा नहीं होती कि सब ही छू लें।

''और देखो, बड़ी-बड़ी दुकानों पर चावलों के बड़े-बड़े बोरे रहते हैं, घर के छप्पर तक ऊँचे। चावल होते हैं— दाल भी होती है। किन्तु कहीं चूहे न खाएँ, तभी दुकानदार छाज में मीठी खीलें, मुरमुरे रख देते हैं। मीठे लगते हैं और सौंधी गन्ध— जभी जितने चूहे हैं सब छाज में लगे रहते हैं, बड़े-बड़े बोरों का पता नहीं लगता। जीव भी कामिनी-काँचन में मुग्ध हो जाता है। ईश्वर की खबर नहीं पाता।''

षष्ठ परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण का सर्व कामना-त्याग— केवल भक्तिकामना)

श्रीरामकृष्ण— नारद से राम ने कहा, तुम मुझ से कुछ वर लो। नारद बोले, 'राम! मेरा और क्या बाकी है? क्या वर लूँ? किन्तु फिर भी यदि अवश्य ही वर देना चाहते हैं तो यही वर दो कि तुम्हारे पादपद्मों में शुद्धा भक्ति रहे, और जैसे तुम्हारी भुवन-मोहिनी माया में मुग्ध न होऊँ।' राम ने कहा, 'नारद, और कोई वर लो।' नारद ने फिर कहा, 'राम! और मैं कुछ नहीं चाहता, जैसे तुम्हारे पादपद्मों में मेरी शुद्धाभक्ति रहे ऐसा करो।'

"मैंने माँ के पास प्रार्थना की थी, कहा था—

माँ! मैं लोकमान्य नहीं माँगता माँ,
अष्टसिद्धि नहीं माँगता माँ, ओ माँ!
शतसिद्धि नहीं माँगता माँ,
देह-सुख नहीं माँगता माँ,
केवल ऐसा करो,
जैसे तुम्हारे पादपद्मों में शुद्धा भक्ति हो जाए, माँ!

"अध्यात्म (रामायण) में है, लक्ष्मण ने राम से पूछा, 'हे राम! तुम कितने भावों में तथा कितने रूपों में रहते हो! किस रूप में तुम्हारा चिन्तन कर सकता हूँ?' राम बोले, 'भाई! एक बात जान रखो, जहाँ पर ऊर्जिता भक्ति है, वहाँ पर निश्चय ही मैं हूँ।' ऊर्जिता भक्ति में हँसता, रोता, नाचता, गाता है। यदि किसी में ऐसी भक्ति हो जाती है, निश्चय जानो, ईश्वर स्वयं वर्तमान हैं। चैतन्यदेव का ऐसा ही हो गया था।"

भक्तगण अवाक् होकर सुनने लगे। दैववाणी की न्यायीं ये समस्त बातें सुन रहे थे। कोई-कोई सोच रहे हैं, ठाकुर कहते हैं, 'प्रेमे हासे काँदे नाचे गाय'; यह तो केवल चैतन्यदेव की ही अवस्था नहीं है, ठाकुर की भी यही अवस्था है। तब क्या इसी स्थान पर स्वयं ईश्वर साक्षात् वर्तमान हैं?

ठाकुर की अमृतमयी बातें चल रही हैं— निवृत्ति मार्ग की बातें। ईशान को जो बातें मेघ गम्भीर स्वर में कहते हैं— वही बातें हो रही हैं।

(ईशान के लिए खुशामदियों से सावधानी— श्रीरामकृष्ण और जगत का उपकार)

श्रीरामकृष्ण *(ईशान के प्रति)*— तुम खुशामदियों की बातों में मत भूलो। विषयी व्यक्ति देखते ही खुशामदी आकर जमा हो जाते हैं।

''एक मरी गाय पा लेने पर ढेरों गिद्ध वहाँ आ जाते हैं।

(संसारी की शिक्षा, कर्म-काण्ड— सर्वत्यागी की शिक्षा, केवल ईश्वर के पादपद्म-चिन्तन)

''विषयी लोगों में पदार्थ (सार) नहीं होता। जैसे गोबर का टोकरा! खुशामदी लोग आकर कहेंगे, आप तो दानी, ज्ञानी, ध्यानी हैं। कहने से पहले ही झट अहंकार! वह क्या! कितने ही सारे गृहस्थी ब्राह्मणों-पण्डितों को लेकर रात-दिन बैठै रहना, और उन की खुशामद सुनना!

''संसारी लोग तीन जनों के दास होते हैं, उनके पास क्या पदार्थ (सार) रहता है?— औरत के दास, पैसे के दास, मालिक के दास। एक व्यक्ति का नाम नहीं लूँगा। आठ सौ रुपया महीना पाता है किन्तु औरत का दास है, उठने को कहने पर उठता है, बैठने को कहने पर बैठता है।

''और फिर सरपंची, मुखियाई इत्यादि का क्या काम? दया, परोपकार क्यों?— ये सब तो बहुत हो लिए। ये काम जो करेंगे उन की श्रेणी अलग है। तुम्हारा ईश्वर के पादपद्मों में मन देने का समय हो गया है। उनको पा लेने पर सब मिल जाता है। आगे वे, तत्पश्चात् दया, परोपकार, जगत का उपकार, जीव-उद्धार। तुम्हें उसकी चिन्ता से क्या काम?

''लंका में रावण मरा, बहुला रो-रो का आकुल हो गई।

''तुम्हारा वही हुआ है। कोई सर्वत्यागी तुम्हें कह दे कि यह-यह करो, तब अच्छा हो! गृही के परामर्श से ठीक नहीं होगा। वह चाहे ब्राह्मण-पण्डित ही हो या कोई भी हो।''

(ईशान पागल हो जाओ— 'यह समस्त उपदेश माँ ने दिया है')

"पागल हो जाओ, ईश्वर के प्रेम में पागल हो जाओ! लोग चाहे समझें ईशान अब पागल हो गया है, और नहीं कर सकता। ऐसा होने पर वे लोग सरपंची, मुखियाई करवाने के लिए तुम्हारे पास फिर नहीं आएँगे। कोशाकुशि उठा कर फेंक दो, ईशान (शिव) नाम सार्थक करो।"

ईशान— 'दे मा, पागल कोरे। आर काज नाइ मा ज्ञान विचारे॥'
'माँ, मुझे पागल कर दे। ज्ञान-विचार की अब कोई जरूरत नहीं है।'

श्रीरामकृष्ण— पागल या ठीक? शिवनाथ ने कहा था, ईश्वर-चिन्तन अधिक करने से बेहेड (सिर-फिरा, पागल) हो जाता है। मैंने कहा, क्या! चैतन्य का चिन्तन कर के क्या कोई अचैतन्य होता है? वे हैं नित्यशुद्ध बोध-रूप— जिनके बोध से सब बोध करते हैं, जिनके चैतन्य से समस्त चैतन्यमय है। कहता था कि किसी साहब का हो गया था— अधिक चिन्तन कर-कर के सिर-फिरा हो गया था। वैसा हो सकता है। वे लोग ऐहिक पदार्थ की चिन्ता करते हैं। 'भावेते भरलो तनु, हरलो गेयान!' (भाव में शरीर भर गया है और ज्ञान चला गया है।) इस में जिस ज्ञान की बात है, उस ज्ञान का अर्थ है बाह्यज्ञान।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण के चरण-स्पर्श करे ईशान बैठे हैं और समस्त बातें सुन रहे हैं। वे बार-बार मन्दिर-मध्यवर्ती पाषाणमयी काली-प्रतिमा की ओर देख लेते हैं। दीपों के आलोक में माँ का मुख हँस रहा है, मानो देवी आविर्भूता होकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण के मुख से निकले वेदमन्त्र तुल्य वाक्यों को सुनकर आनन्द कर रही हैं।

ईशान *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— ये जो समस्त बातें आप ने श्रीमुख से कही हैं, वे समस्त बातें वहाँ से आ रही हैं।

श्रीरामकृष्ण— मैं यन्त्र, वे यन्त्री; मैं घर, वे घरणी;— मैं रथ, वे रथी; वे जैसे चलाती हैं, वैसे चलता हूँ; जैसे बुलवाती हैं, वैसे बोलता हूँ।

"कलियुग में अन्य प्रकार से दैववाणी नहीं होती। किन्तु होती है, बालक या पागल, इनके मुख द्वारा वे बातें कहती हैं।

"मनुष्य गुरु नहीं हो सकता। ईश्वर की इच्छा से ही सब हो रहा है।

महापातक, बहुत दिनों का पाप, बहुत दिनों का अज्ञान उनकी कृपा होने पर सब एक क्षण में ही भाग जाता है।

"हजार वर्ष के अन्धेरे घर के भीतर यदि हठात् प्रकाश आता है तो फिर क्या वह हजार वर्ष का अन्धकार थोड़ा-थोड़ा करके जाता है, या एक क्षण में चला जाता है? निश्चय ही प्रकाश देखते ही समस्त अन्धकार भाग जाता है।

"मनुष्य क्या करेगा? मनुष्य अनेक बातें कह सकता है, किन्तु अन्त में सब ईश्वर के हाथ में है। वकील कहता है, मैंने तो जो कहना था, कह दिया है, अब हाकिम के हाथ में है।

"ब्रह्म निष्क्रिय हैं। वे जब सृष्टि-स्थिति-प्रलय आदि कार्य करते हैं तब उनको आद्याशक्ति कहते हैं। उसी आद्याशक्ति को ही प्रसन्न करना चाहिए। चण्डी में है, जानते नहीं? देवताओं ने आद्याशक्ति का स्तव किया। उनके प्रसन्न होने पर ही हरि की योगनिद्रा टूटेगी।"

ईशान— जी हाँ, मधुकैटभ-वध के समय ब्रह्मा आदि देवता स्तव करते हैं—

त्वं स्वाहा त्वं स्वधा त्वं हि वषटकार स्वरात्मिका।
सुधा त्वमक्षरे नित्ये त्रिधा मात्रात्मिका स्थिता॥

अर्द्धमात्रा स्थिता नित्या यानुच्चार्य्या विशेषतः।
तमेव सा त्वं सावित्री त्वं देवी जननी परा॥

त्वयैव धार्य्यते सर्वं त्वयैतत् सृज्यते जगत्।
त्वयैतन्पाल्यते देवि त्वमस्त्यन्ते च सर्वदा॥

विसृष्टौ सृष्टिरूपा त्वं स्थितिरूपा च पालने।
तथा संहृति रूपान्ते जगतोऽस्य जगन्मये॥

[भावार्थ— हे माँ, तुम होम, श्राद्ध और यज्ञ में प्रयुक्त स्वाहा, स्वधा हो और वषटकाररूप में मन्त्र की स्वर-स्वरूपा एवं देवता का भोग, सुधा भी तुम ही हो।

हे नित्ये! तुम अक्षरों में ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत— इन तीन प्रकार की मात्रास्वरूप होकर रह रही हो और जो विशेष रूप में अनुचार्य और अर्द्धमात्रा रूप में अवस्थित है, वह भी तुम ही हो। तुम ही वही (वेद सारभूता) सावित्री हो; हे देवि! तुम ही आदि जननी हो!

तुम्हारे द्वारा बनाया गया यह समस्त जगत तुम्हारे द्वारा ही धारण किया हुआ है और तुमसे ही सृष्ट हुआ है। तुम्हारे द्वारा ही यह जगत पालित हो रहा है एवं तुम ही अन्त में इसका भक्षण (संहार) कर लेती हो।

हे जगत रूपा! तुम ही इस जगत के नाना प्रकार से निर्माण-कार्य में सृष्टिरूपा तथा पालन-कार्य में स्थितिरूपा और अन्त में इसके संहार-कार्य में उसी प्रकार संहाररूपा हो।

— मार्कण्डेय चण्डी, 12-16]

श्रीरामकृष्ण— हाँ, इसकी धारणा करनी होगी।

सप्तम परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण और कर्मकाण्ड— कर्मकाण्ड कठिन है, जभी भक्तियोग)

कालीमन्दिर के सामने भक्तगण श्रीरामकृष्ण को चारों ओर से घेर कर बैठे हुए हैं। अब तक अवाक् होकर श्रीमुख की वाणी सुन रहे थे।

अब ठाकुर उठे। मन्दिर के सामने के चबूतरे पर आकर भूमिष्ठ होकर माँ को प्रणाम किया। तब सभी भक्त तुरन्त उनके पास आए और उनके चरणों में भूमिष्ठ लेट गए। सब ही चरण-धूलि के भिखारी हैं। सब के चरण-वन्दना कर लेने पर, ठाकुर चबूतरे से उतरे और मास्टर के संग में बातें करते-करते अपने कमरे की ओर आ रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(गीत गाते-गाते मास्टर के प्रति)*—

प्रसाद बोले भुक्ति मुक्ति उभये माथाय रेखेछि
आमि काली ब्रह्म जेने मर्म, धर्माधर्म सब छेड़ेछि।

(प्रसाद कहते हैं मैंने भुक्ति और मुक्ति दोनों को माथे पर रखा हुआ है। मैंने काली और ब्रह्म का मर्म जान कर धर्म-अधर्म सब छोड़ दिया है।)

"धर्म-अधर्म क्या है, जानते हो? 'धर्म' अर्थात् वैधी धर्म। जैसे दान करना होगा, श्राद्ध करना होगा, कंगालों को भोजन देना होगा— इत्यादि।

"इसी धर्म को ही कर्मकाण्ड कहते हैं। यह पथ बड़ा कठिन है। निष्काम कर्म करना बड़ा कठिन है। जभी भक्ति-पथ का आश्रय लेने को कहा है।

"किसी ने घर में श्राद्ध किया था। अनेक लोग खा रहे थे। एक कसाई

गाय को काटने के लिए ले जा रहा था। गाय उसके वश में नहीं आ रही थी— कसाई हाँफ गया था। तब उसे ख्याल आया श्राद्ध वाले घर में खा लूँ। खाकर गाय को बलपूर्वक ले जाऊँगा। अन्त में वैसा ही किया, किन्तु जब उस गाय को काटा गया तब जिसने श्राद्ध किया था, उस पर गौ-हत्या का पाप लगा।

"जभी कहता हूँ, कर्मकाण्ड से भक्ति-पथ अच्छा है।"

ठाकुर कमरे में प्रवेश कर रहे हैं, संग में मास्टर हैं। ठाकुर गुन-गुन करके गा रहे हैं। निवृत्तिमार्ग के विषय में जो कह रहे थे, वही प्रकट हो रहा है। ठाकुर गुन-गुन करके कहते हैं—

"अवशेषे राखो गो माँ, हाड़ेर माला सिद्धि घोटा।" (अन्त में यही रखो माँ, मुण्डों की माला और भंग-घोटना)।— सब त्याग करवा लो चाहे। बस एक अपने लिए पागलपन रखो।

ठाकुर छोटी खाट पर बैठ गए। अधर, किशोरी और अन्य भक्तगण आकर बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— ईशान को देखा— कहाँ, कुछ भी तो हुआ नहीं। तुम कहते क्या हो? पुरश्चरण पाँच महीने किया है! और कोई व्यक्ति होता तो इतना कुछ करता?"

अधर— हमारे सामने उनको इतनी बातें कहना ठीक नहीं हुआ।

श्रीरामकृष्ण— यह कैसी बात! वह तो जापक व्यक्ति है, उसका उससे क्या?

कुछ क्षण बातों के पश्चात् ठाकुर अधर से कहते हैं, ईशान खूब दानी है। और देखो, जप-तप खूब करता है।

ठाकुर कुछ काल चुप रहे। भक्तगण फरश पर बैठे एकटक देख रहे हैं।

हठात् ठाकुर अधर को उद्देश्य करके कहते हैं—

"आप लोगों के योग और भोग दोनों ही हैं।"

विंश खण्ड

दक्षिणेश्वर में काली-पूजा की महानिशा में भक्तों के संग में— समाधिस्थ श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(मास्टर, बाबूराम, गोपाल, हरिपद, निरंजन का सम्बन्धी, रामलाल, हाजरा)

आज श्री कालीपूजा, 18 अक्तूबर, 1884 ईसवी, शनिवार। रात को दस-ग्यारह बजे श्री कालीपूजा आरम्भ होगी। कई भक्त इस गम्भीर अमावस्या-रात को ठाकुर श्रीरामकृष्ण का दर्शन करेंगे, जभी वे शीघ्र-शीघ्र आ रहे हैं।

मास्टर रात को प्राय: आठ के समय अकेले आ गए थे। बागान में आकर देखा, कालीमन्दिर में महोत्सव आरम्भ हो गया है। उद्यान के मध्य में बीच-बीच में दीप हैं— देवमन्दिर उसी आलोक में सुशोभित है। बीच-बीच में रौशनचौकी बजती है। कर्मचारीगण तेज़ चाल से मन्दिर के इस स्थान से उस स्थान पर यातायात कर रहे हैं।

आज रासमणि की कालीबाड़ी में समारोह होगा, और फिर शेष रात्रि में यात्रा (गीति नाटिका) होगी, दक्षिणेश्वर-ग्रामवासियों ने सुना है। ग्राम से आबाल-वृद्ध-वनिता (बच्चे, बूढ़े, स्त्रियाँ), बहुत लोग ठाकुर-दर्शन करने के लिए सर्वदा आते हैं।

शाम को चण्डी का गाना हुआ था— राजनारायण की 'चण्डी' का गाना। ठाकुर ने भक्तों के संग में प्रेमानन्द में गाना सुना था। आज जगत की

माँ की पूजा फिर और होगी। ठाकुर आनन्द में विभोर हो रहे हैं।

रात को आठ बजे पहुँच कर मास्टर देखते हैं, ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हैं, उनके सामने फरश के ऊपर कई-एक भक्त बैठे हैं— बाबूराम, छोटे गोपाल, हरिपद, किशोरी, निरंजन का एक सम्बन्धी लड़का और एंडेदाह का और एक लड़का। रामलाल और हाजरा कभी-कभी आ-जा रहे हैं।

निरंजन का वह सम्बन्धी छोकरा ठाकुर के सामने ध्यान कर रहा है— ठाकुर ने उनको ध्यान करने के लिए कहा है।

मास्टर प्रणाम करके बैठ गए। कुछ देर बाद निरंजन के सम्बन्धी ने प्रणाम कर के विदा ली। एंडेदाह का दूसरा लड़का भी प्रणाम कर के खड़ा हो गया— उसी के संग जाएँगे।

श्रीरामकृष्ण *(निरंजन के आत्मीय के प्रति)*— तुम कब आओगे?

भक्त— जी, सोमवार को— शायद।

श्रीरामकृष्ण *(आग्रह सहित)*— लालटेन चाहिए? साथ ले जाओ!

भक्त— जी नहीं, इसी बाग के पास ही है, प्रयोजन नहीं है।

श्रीरामकृष्ण *(एंडेदाह के छोकरे के प्रति)*— तू भी चल दिया?

छोकरा— जी, सर्दी—

श्रीरामकृष्ण— अच्छा, बल्कि सिर पर कपड़ा ढक कर जाइयो। लड़के दोनों फिर दोबारा प्रणाम कर के चले गए।

द्वितीय परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर में श्री कालीपूजा-महानिशा में श्रीरामकृष्ण भजनानन्द में)

गम्भीर अमावस्या की रात। और फिर जगत की माँ की पूजा! श्रीरामकृष्ण छोटी खाट पर तकिए की ठेस लगाए हुए हैं। किन्तु अन्तर्मुख हैं, बीच-बीच में भक्तों के संग एक-दो बातें करते हैं।

हठात् मास्टर और भक्तों की ओर ताकते हुए कहते हैं—

आहा लड़के का कैसा ध्यान! *(हरिपद के प्रति)*— कैसा रे? क्या ध्यान!

हरिपद— जी हाँ, ठीक काष्ठवत्!

श्रीरामकृष्ण *(किशोरी के प्रति)*— उस लड़के को जानते हो? निरंजन का किस रिश्ते से भाई होता है?

अब फिर सब निःशब्द। हरिपद ठाकुर की पदसेवा कर रहे हैं। ठाकुर ने शाम को चण्डी का गाना सुना था। वही गाना फूट पड़ रहा है। धीरे-धीरे गा रहे हैं—

के जाने काली केमन, षड्दर्शन ना पाय दरशन।
मूलाधारे सहस्रारे सदा योगी करे मनन।
काली पद्मवने हंससने हंसीरूपे करे रमण॥

आत्मारामे आत्माकाली, प्रमाण प्रणवेर यतन।
तिनि घटे-घटे विराज करेन इच्छामयीर इच्छा जेमन॥

मायेर उदरे ब्रह्माण्ड भाण्ड प्रकाण्ड ता जानो केमन।
महाकाल जेनेछेन कालीर मर्म अन्य केबा जाने तेमन॥

प्रसाद भासे लोके हासे सन्तरण सिन्धु तरण।
आमार मन बुझेछे प्राण बुझे ना, धरबे शशी होये वामन॥

[भावार्थ— कौन जानता है कि काली कैसी हैं, उनका दर्शन तो षड्दर्शन भी नहीं कर पाते। योगी सदा मूलाधार से सहस्रार में मनन करता है। काली पद्मवन में हंस के साथ हंसिनी रूप में रमण करती है। प्रणव (ॐ) के प्रमाण की भाँति आत्माकाली आत्माराम में रहती हैं। वे इच्छामयी हैं और अपनी इच्छानुसार घट-घट में विराजमान रहती हैं। माँ के पेट में प्रकाण्ड ब्रह्माण्ड-बर्तन है; उसे कैसे जान सकता है? प्रसाद तैर रहा है और लोग उसके भवसागर के तरणे को देख कर हँसते हैं। मेरा मन तो समझ गया है किन्तु प्राणों ने नहीं समझा है— वह वामन होकर शशि पकड़ना चाहता है।]

ठाकुर उठकर बैठ गए। आज माँ की पूजा है— माँ का नाम करेंगे! फिर उत्साह के साथ गाते हैं—

ए सब क्षेपा मायेर खेला।
(जार मायाय त्रिभुवन विभोला)(मागीर आप्तभावे गुप्तलीला)
से जे आपनि क्षेपा, कर्त्ता क्षेपा, क्षेपा दुटा चेला॥

कि रूप कि गुण भंगी, कि भाव किछुइ जाय न बोला।
जार नाम जपिये कपाल पोड़े कण्ठे विषेर ज्वाला॥

सगुणे निर्गुणे बांधिए विवाद, ढयाला दिये भाँगछे ढयाला।
मागी सकल विषये समान राजी नाराज केवल काजेर वेला॥
प्रसाद बोले थाको बोसे भवार्णवे भासिये भेला।
जखन आसबे जोयार उजिये जाबे, भाँटिये जाबे भाँटार बेला॥

[भावार्थ— यह सम्पूर्ण पगली माँ का खेल है। (जिस की माया में त्रिभुवन भूला हुआ है), (स्त्री की अभ्रान्त गुप्त लीला है, यह सब।) वह स्वयं पगली है, मालिक पगला है और उसके दोनों चेले पागल हैं। क्या रूप, क्या गुण और क्या रंग-ढंग हैं, क्या भाव है, कुछ भी नहीं कहा जाता। जिनका नाम जपने से शिवजी का कपाल जल रहा है और कण्ठ में विष की ज्वाला है, सगुण और निर्गुण में विवाद लगा कर जो ढेले से ढेला तोड़ती है, यह स्त्री सब विषयों में प्रसन्न रहती है परन्तु केवल काम के समय नाराज हो जाती है। प्रसाद कहते हैं भाव-समुद्र में जीवनतरी को तैरा कर बैठे रहो। जब ज्वार आएगी तो यह ऊपर चली जाएगी और भाटे के समय नीचे चली आएगी।]

ठाकुर गाना गाते-गाते मतवाले हो रहे हैं। कहते हैं, ये सब गाने पागल के भाव में हैं। यह कह कर गाने लगे—

(1) एबार काली तोमाय खाबो।
(अब की बार काली, तुम्हें मैं खा लूँगा।)

(2) ताइ तोमाके सुधाई काली।
(इसीलिए हे काली, तुमसे पूछता हूँ।)

(3) सदानन्दमयी काली महाकालेर मनोमोहिनी।
तुमि आपनि नाचो, आपनि गाओ, आपनि दाओ मा करतालि॥
आदिभूता सनातनी, शून्यरूपा शशीभाली।
ब्रह्माण्ड छिलो ना जखन, मुण्डमाला कोथाय पेलि॥
सबे मात्र तुमि यन्त्री, आमरा तोमार तन्त्रे चलि।
जेमन राखो तेमनि थाकि मा, जेमन बोलाओ तेमनि बोलि॥
अशान्त कमलाकान्त दिये बोले गालागालि।
एबार सर्वनाशी धरे असि, धर्माधर्म दुटो खेलि॥

[भावार्थ— हे सदानन्दमयी काली, महाकाल की मनमोहिनी, तुम स्वयं नाचती हो, स्वयं ही गाती हो और स्वयं ही ताली बजाती हो। तुम आदिभूता सनातनी हो, शून्य-रूपा हो,

तुम्हारे मस्तक पर चन्द्रमा सुशोभित है। जब ब्रह्माण्ड नहीं था तब तुम ने यह मुण्डमाला कहाँ से ली थी? सब लोग तो तुम्हारे केवल यन्त्र हैं, मैं तुम्हारे शासन में चलता हूँ। जैसे रखती हो, वैसे रहता हूँ; जैसे बुलवाती हो, वैसे बोलता हूँ। अशान्त कमलाकान्त अब गाली देकर कहता है कि अब की बार तो उस सर्वनाशिनी ने तलवार पकड़ ली है और धर्म-अधर्म दोनों खा लिए हैं।]

(4) जय काली जय काली बोले यदि आमार प्राण जाय।
शिवत्व होइबो प्राप्त, काज कि वाराणसी ताय॥
अनन्तरूपिणी काली, कालीर अन्त केबा पाय?
किंचित् माहात्म्य जेने शिव पड़ेछेन रांगा पाय॥

[भावार्थ— जय काली, जय काली बोलते हुए यदि मेरा प्राण जाता है तो मैं शिवत्व प्राप्त कर ही लूँगा, वाराणसी जाने का क्या काम? यह काली तो अनन्तरूपिणी है। इस काली का अन्त कौन पाता है? ज़रा-सा ही माहात्म्य जान कर शिव इसके रक्त चरणों में लेटे हुए हैं।]

गाना समाप्त हो गया, तब राजनारायण के दो लड़कों ने आकर प्रणाम किया। नाटमन्दिर में शाम को राजनारायण ने चण्डी का गाना गाया था, दोनों लड़कों ने भी संग-संग गाया था। ठाकुर दोनों लड़कों के साथ फिर दोबारा गाते हैं—

'ए सब क्षेपा मेयेर खेला।'
(यह सब कुछ उस पागल लड़की का खेल है।)

छोटा लड़का ठाकुर से कह रहा है— वही गाना यदि एक बार गाएँ— 'परम दयाल हे प्रभु—'

ठाकुर ने कहा, ''गौर निताई तोमरा दुभाई?'' यही कहकर वही गाना गा रहे हैं—

''गौर निताइ तोमरा दु'भाई परम दयाल हे प्रभु।''*
(हे प्रभु! गौर और नित्यानन्द तुम दोनों भाई बड़े ही दयालु हो।)

गाना समाप्त हो गया। रामलाल घर में आ गए हैं। ठाकुर कहते हैं, 'कुछ

---

* सम्पूर्ण गान तथा भावार्थ के लिए इसी ग्रन्थ का पृष्ठ 146-147 देखिए।

थोड़ा-सा गा, आज पूजा है।' रामलाल गाते हैं—

(1) समर आलो करे कार कामिनी!
सजल जलद जिनिया काय, दशने प्रकाशे दामिनी॥

एलाय चाँचर चिकुर-पाश, सुरासुर माझे ना करे त्रास,
अट्टहासे दानव नाशे, रण प्रकाशे रंगिणी॥

किबा शोभा करे श्रमज बिन्दु, घनतनु घेरि कुमुदबन्धु,
अमिय सिन्धु हेरिया इन्दु, मलिन ए कोन मोहिनी॥

ए कि असम्भव भव पराभव, पदतले शवसदृश नीरव,
कमलाकान्त करो अनुभव, के बोटे ओ गजगामिनी॥

[भावार्थ— किसकी कामिनी समर (आँगन) को आलोकित कर रही है?— जिसका शरीर सजल मेघ जैसा है और दान्तों में बिजली चमक रही है— जो अपने पास घुँघरू वाले केश बिखेर कर सुर-असुरों के मध्य भी तनिक-सा नहीं भयभीत होती। और अट्टहास करती हुई, दानवों का नाश करती हुई रण में यह रंगिणी प्रकाशित हो रही है। श्रम से निकले बिन्दु घन-शरीर रूपी कुमुदों को घेर कर कैसी शोभा दे रहे हैं! अमृत सागर-रूप चन्द्र देख कर यह कौन मोहिनी मलिन हो गई है? क्या यह असम्भव है कि इनके चरणों के नीचे शव की भाँति भव को पराभूत करने वाले शिव चुपचाप लेटे हुए हैं? कमलाकान्त सोचते हैं कि यह गजगामिनी फिर कौन है?]

(2) के रणे एसेछे बामा नीरदवरणी।
शोणित सायरे भासे जेनो नील नलिनी॥ इत्यादि—

[भावार्थ— रण में कौन नीरदवरणी स्त्री आई है। रुधिर-सागर में जैसे नील नलिनी तैर रही हो।]

(3) मजलो आमार मनभ्रमरा श्यामापद नीलकमले!*

गाना और नृत्य समाप्त हो गया। भक्तगण फिर दोबारा सबके सब धरती पर बैठ गए। ठाकुर भी छोटी खाट पर बैठ गए।

मास्टर से कहते हैं,— ''तुम नहीं आए, चण्डी का गाना कैसा सुन्दर हुआ!''

---

* सम्पूर्ण गान तथा भावार्थ के लिए इसी ग्रन्थ का पृष्ठ 36 देखिए।

तृतीय परिच्छेद

(कालीपूजा-रात्रि में समाधिस्थ— सांगोपांग के सम्बन्ध में दैववाणी)

भक्तों में से किसी-किसी ने दर्शन के लिए कालीमन्दिर में गमन किया। अथवा कोई दर्शन करके एकाकी गंगातीर पर पक्के घाट के ऊपर बैठ कर निर्जन में चुपचाप नाम-जप करते हैं। रात्रि प्राय: ग्यारह। महानिशा। अभी-अभी ज्वार आई है— भागीरथी उत्तर-वाहिनी। तीर के दीपों के प्रकाश में कभी-कभी काला जल दिखाई देता है।

रामलाल 'पूजापद्धति' नामक पोथी हाथ में लिए माँ के मन्दिर में एक बार आए। पुस्तक को मन्दिर में रखेंगे। मणि को माँ को सतृष्ण नयनों से दर्शन करते हुए देखकर बोले, 'भीतर आओगे क्या?' मणि ने अनुगृहीत होकर भीतर प्रवेश किया। देखा, माँ खूब सजी हुई हैं। कमरा आलोकाकीर्ण। माँ के सामने दो सेज हैं; ऊपर झाड़-फानूस झूल रहा है। मन्दिरतल नैवेद्य से परिपूर्ण। माँ के चरणों में जवा-विल्व। नानाविध पुष्पमालाओं से वेशकारी (श्रृंगार करने वाले) ने माँ को सजाया है। मणि ने देखा, सामने चंवर लटक रहा है। हठात् स्मरण हो आया, ठाकुर श्रीरामकृष्ण इसी चंवर को लेकर देवी को कितना व्यजन करते हैं। तब उन्होंने संकुचित भाव से रामलाल से कहा, 'इस चंवर को एक बार ले सकता हूँ?' रामलाल ने अनुमति प्रदान की; वे माँ पर चंवर डुलाने लगे। तब तक भी पूजा आरम्भ नहीं हुई थी।

जो सकल भक्तगण बाहिर गए हुए थे, वे सब लोग फिर ठाकुर श्रीरामकृष्ण के कमरे में इकट्ठे हो गए।

श्रीयुक्त वेणीपाल ने निमंत्रण दिया है। आगामी कल सींथी ब्राह्मसमाज में जाना होगा। ठाकुर को निमंत्रण है। किन्तु निमंत्रण-पत्र पर तारीख में भूल है।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— वेणीपाल ने निमंत्रण दिया है। फिर इस प्रकार क्यों लिखा, बताओ तो ज़रा, देखूँ?

मास्टर— जी, ठीक लिखा नहीं गया है। उसने अधिक सोच-विचार कर नहीं

लिखा है।

कमरे में ठाकुर खड़े हुए हैं, बाबूराम निकट खड़े हैं। ठाकुर वेणीपाल की चिट्ठी की बात कर रहे हैं। बाबूराम को स्पर्श करके खड़े हुए हैं। हठात् समाधिस्थ!

भक्तगण सब ही घेर कर खड़े हुए हैं। इस समाधिस्थ महापुरुष को अवाक् होकर देख रहे हैं। ठाकुर समाधिस्थ; बायाँ पाँव बढ़ाए हुए खड़े हैं— गर्दन का भाग थोड़ा-सा आगे झुका हुआ है। बाबूराम की गर्दन के पिछले भाग पर कान के निकट हाथ रखा हुआ है।

कुछ देर पश्चात् समाधि भंग हुई। तब भी खड़े हुए हैं। अब गाल पर हाथ रख कर मानो कितने चिन्तित हुए खड़े हुए हैं।

ईषत् हास्य कर के फिर भक्तों को सम्बोधन कर के कहते हैं—

श्रीरामकृष्ण— सब देख लिया है, कौन कितनी दूर बढ़ गया है। राखाल, ये *(मणि)*, सुरेन्द्र, बाबूराम, अनेकों को देखा!

हाजरा— यहाँ के?

श्रीरामकृष्ण— हाँ।

हाजरा— अधिक क्या बन्धन?

श्रीरामकृष्ण— ना।

हाजरा— नरेन्द्र को देखा?

श्रीरामकृष्ण— देखा नहीं, किन्तु अब भी कह सकता हूँ— तनिक-सा फँस गया है; किन्तु सब का हो जाएगा, देखा है।

(मणि की ओर ताकते हुए)— समस्त देखे, घात लगाए बैठे हैं।

भक्तगण अवाक्, दैववाणी की न्यायीं अद्‌भुत संवाद सुन रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु इसको (बाबूराम को) छूने से ऐसा हुआ!

हाजरा— फर्स्ट कौन?

ठाकुर श्रीरामकृष्ण चुप किए रहे। कुछ देर बाद कहते हैं—

'नित्यगोपाल की तरह थोड़े होते हैं!''

'फिर और सोच रहे हैं। अब भी उसी भाव में खड़े हुए हैं।

फिर और कह रहे हैं—

"अधर सेन का— यदि कर्मकाज कम हो— किन्तु भय होता है— साहेब फिर और भी फटकारेगा। यदि कहे, 'यह क्या है'!" *(सब का हास्य)*।

ठाकुर फिर दोबारा अपने आसन पर जा कर बैठ गए। भक्तगण फरश पर बैठ गए। बाबूराम और किशोरी पदसेवा करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(किशोरी की ओर देखकर)*— आज तो खूब सेवा!

रामलाल ने आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया; और अतिशय भक्तिभाव से पदधूलि ग्रहण की। माँ की पूजा करने जा रहे हैं।

रामलाल *(ठाकुर के प्रति)*— तो फिर मैं जाता हूँ।

श्रीरामकृष्ण— ॐ काली, ॐ काली। सावधानी से पूजा करो। और फिर मेढ़ाबलि देना होगा।

महानिशा। पूजा आरम्भ हो गई। ठाकुर श्रीरामकृष्ण पूजा देखने के लिए आए हैं। माँ के निकट जाकर दर्शन करते हैं। अब बलि होगी— लोग कतार बाँध कर खड़े हैं। वध्य पशु का उत्सर्ग हो गया। पशु को बलिदान के लिए ले जाने का उद्योग हो रहा है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण मन्दिर-त्याग करके अपने कमरे में लौट आए।

ठाकुर की वह अवस्था नहीं है; पशुवध नहीं देख सकेंगे।

रात दो बजे तक कोई-कोई भक्त माँ काली के मन्दिर में बैठे रहे थे। हरिपद ने काली-घर से आ कर कहा, 'चलें, वे बुला रहे हैं, आहार सब तैयार है।' भक्तों ने देवी का प्रसाद पाया और जिसे जहाँ स्थान मिला, थोड़ा लेट गए।

भोर हो गया; माँ की मंगल-आरती हो गई है। माँ के सामने नाटमन्दिर है। नाटमन्दिर में यात्रा (नाट्य-गीति) हो रही है, माँ यात्रा सुन रही हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण कालीबाड़ी के बड़े पक्के आँगन से यात्रा सुनने के लिए आ रहे हैं। मणि संग-संग आ रहे हैं— ठाकुर से विदा लेंगे।

श्रीरामकृष्ण— क्यों? तुम अब जाओगे!

मणि— आज आप शाम को सींथी जाएँगे, मेरी भी जाने की इच्छा है,

इसीलिए एक बार घर जा रहा हूँ।

बातें करते-करते माँ काली के मन्दिर के निकट आकर उपस्थित हो गए। अदूर ही नाटमन्दिर है, यात्रा (गीति-नाटक) हो रही है। मणि भूमिष्ठ होकर ठाकुर की चरण-वन्दना करते हैं।

ठाकुर बोले, "अच्छा, अब चलो। और नित्य-व्यवहार वाली नहाने की दो धोतियाँ मेरे लिए लाना।"

एकविंश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण मारवाड़ी-भक्तमन्दिर में भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण बड़े बाजार में मारवाड़ी-भक्तमन्दिर में)

आज ठाकुर ने 12 नम्बर मल्लिक स्ट्रीट, बड़े बाजार में शुभागमन किया है। मारवाड़ी भक्तों ने अन्नकूट किया है— ठाकुर निमन्त्रित हैं। दो दिन हुए, श्यामा-पूजा (दीपावली-पूजा) थी। उस दिन ठाकुर ने दक्षिणेश्वर में भक्तों के संग में आनन्द मनाया था। उसके दूसरे दिन फिर भक्तों के संग सींथी-ब्राह्मसमाज के उत्सव में गए थे। आज सोमवार, 20 अक्तूबर, 1884 ईसवी, कार्त्तिक की शुक्ला प्रतिपदा— द्वितीया तिथि, बड़े बाजार में अब दीपावली का आमोद चल रहा है।

लगभग तीन बजे मास्टर छोटे गोपाल के साथ बड़े बाजार में आ गए। ठाकुर ने तेल धोतियाँ (साधारण धोतियाँ) खरीदने की आज्ञा दी थी— वे खरीदीं। कागज का पूड़ा; एक हाथ में है। मल्लिक स्ट्रीट में दोनों ने पहुँच कर देखा, लोगों की बड़ी भीड़ है— बैलगाड़ियाँ, घोड़ा-गाड़ियाँ जमा हो गई हैं। 12 नम्बर के निकट होकर देखा, ठाकुर गाड़ी में बैठे हुए हैं, गाड़ी आ नहीं पा रही है; अन्दर बाबूराम और राय चैटर्जी हैं। गोपाल और मास्टर को देखकर ठाकुर हँस रहे हैं।

ठाकुर गाड़ी से उतर गए। संग में बाबूराम, आगे-आगे मास्टर पथ दिखाते हुए ले जा रहे हैं। मारवाड़ियों के मकान पर पहुँच कर देखते हैं कि नीचे केवल कपड़े की गाँठें ही गाँठें आँगन में पड़ी हुई हैं। बीच-बीच में बैलगाड़ी पर माल लद रहा है। ठाकुर भक्तों के साथ ऊपर की मंजिल पर गए। मारवाड़ियों ने भी आकर उनको तीन तल के एक कमरे में बिठाया। उस कमरे में माँ काली की छवि है— ठाकुर ने देख कर नमस्कार किया, ठाकुर ने आसन ग्रहण किया और सहास्य भक्तों के साथ बातें करने लगे।

कोई मारवाड़ी आकर ठाकुर की पदसेवा करने लगा। ठाकुर ने कहा, रहने दो, रहने दो। और फिर क्या सोच कर बोले, अच्छा, थोड़ी-सी कर। प्रत्येक बात ही करुणापूर्ण है।

मास्टर से बोले, स्कूल का क्या—

मास्टर— जी, छुट्टी।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— फिर कल तो अधर के घर पर चण्डी का गाना है।

मारवाड़ी भक्त गृहस्वामी ने पण्डित जी को ठाकुर के पास भेज दिया। पण्डित जी ने आकर ठाकुर को प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। पण्डित जी के साथ अनेक ईश्वरीय कथा होती है।

(श्रीरामकृष्ण की कामना— भक्तिकामना— भाव, भक्ति, प्रेम का अर्थ)

अवतार-विषयक बातें होने लगीं।

श्रीरामकृष्ण— भक्त के लिए अवतार हैं, ज्ञानी के लिए नहीं।

पण्डित जी— परित्राणाय साधूनाम् विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥ (गीता 4:8)

[भावार्थ— अवतार प्रथम, भक्तों के आनन्द के लिए होते हैं; और दूसरे, दुष्टों के दमन के लिए। किन्तु ज्ञानी कामनाशून्य होता है।]

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— किन्तु मेरी कामनाएँ नहीं गईं। मेरी भक्ति-कामना है।

इस समय पण्डितजी के पुत्र ने आकर ठाकुर की चरण-वन्दना कर के आसन ग्रहण किया।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा जी! भाव किसे कहते हैं, और भक्ति किसे कहते हैं?

पण्डित जी— ईश्वर का चिन्तन करके मनोवृत्ति कोमल हो जाती है, उसका नाम भाव है, जैसे सूर्य के निकल जाने पर बरफ गल जाती है।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा जी! प्रेम किसे कहते हैं?

पण्डित जी हिन्दी में बातें कर रहे हैं। ठाकुर भी उनके साथ अति मधुर हिन्दी में बातें कर रहे हैं। पण्डित जी ने ठाकुर के प्रश्न के उत्तर में प्रेम का अर्थ एक प्रकार से समझाया।

श्रीरामकृष्ण *(पण्डित जी के प्रति)*— ना, प्रेम के माने वह नहीं। प्रेम माने ईश्वर पर ऐसा प्यार कि जगत भूल जाए, और यहाँ तक कि अपनी देह जो इतनी प्रिय है, वह भी भूल जाए। चैतन्यदेव का हुआ था।

पण्डित जी— जी हाँ, जैसे पागल हो जाने पर होता है।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा जी, किसी की भक्ति होती है, किसी की नहीं, इसके क्या माने?

पण्डित जी— ईश्वर में वैषम्य नहीं है। वे कल्पतरु हैं, जो जन जो कुछ भी माँगता है वह वही पाता है। तो भी कल्पतरु के पास जा कर माँगना चाहिए।

पण्डित जी ये समस्त बातें हिन्दी में बोल रहे हैं। ठाकुर मास्टर की ओर मुड़ कर सब बातों का अर्थ बंगाली में बता रहे हैं।

(समाधितत्त्व)

श्रीरामकृष्ण— अच्छा जी, समाधि कैसी होती है, बतलाओ तो ज़रा।

पण्डित जी— समाधि दो प्रकार की है— सविकल्प और निर्विकल्प। निर्विकल्प समाधि में फिर विकल्प नहीं।

श्रीरामकृष्ण— हाँ 'तदाकारकारित'। ध्याता-ध्येय भेद नहीं रहता। और हैं चेतन समाधि और जड़ समाधि। नारद, शुकदेव, इनकी है

चेतन समाधि। क्यों जी?

पण्डित जी— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— और जी, उन्मना समाधि— और स्थित समाधि, क्यों जी?

पण्डित जी चुप रहे; कोई बात भी नहीं बोली।

श्रीरामकृष्ण— अच्छा जी, जप-तप करने पर सिद्धाई हो सकती है— जैसे गंगा के ऊपर से पैदल चले जाना?

पण्डित जी— जी, वह होती तो है, किन्तु भक्त वह नहीं माँगता।

और कुछ कथावार्ता के पश्चात् पण्डित जी बोले, एकादशी के दिन दक्षिणेश्वर आप के दर्शन करने आऊँगा।

श्रीरामकृष्ण— आहा, तुम्हारा लड़का तो बड़ा अच्छा है!

पण्डित जी— और महाराज! नदी की एक लहर जाती है और एक आती है। सब ही अनित्य।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारे भीतर सार है।

पण्डित जी ने कुछ देर पश्चात् प्रणाम किया; बोले, ''पूजा करनी है, तो अब चलूँ?''

श्रीरामकृष्ण— अरे बैठो, बैठो!

पण्डित जी फिर बैठ गए।

ठाकुर ने हठयोग की बात उठाई। पण्डित जी हिन्दी में ठाकुर के साथ उस सम्बन्ध में आलाप करते हैं। ठाकुर ने कहा, ''हाँ, वह चाहे एक प्रकार की तपस्या तो है, किन्तु हठयोगी है देहाभिमानी साधु— केवल देह की ही ओर मन।''

पण्डित जी ने फिर विदा ली। पूजा करने जाएँगे।

ठाकुर पण्डित जी के पुत्र के साथ बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— कुछ न्याय, वेदान्त और दर्शन पढ़ लेने पर श्रीमद्भागवत अच्छा समझ में आ जाता है। क्यों?

पुत्र—हाँ, महाराज। सांख्यदर्शन पढ़ना बड़ा आवश्यक है।

इसी प्रकार बीच-बीच में बातें होने लगीं।

ठाकुर तकिए पर थोड़ा-सा सहारा देकर लेटे हुए हैं। पण्डित जी के पुत्र और कई भक्त फरश पर बैठे हैं। ठाकुर ने लेटे-लेटे गाना पकड़ लिया—

हरि से लगे रहो रे भाई, तेरी बनत-बनत बनी जाई,
तेरी बिगड़ी बात बनी जाई।
अंका तारे बंका तारे, तारे सुजन कसाई,
शुक पढ़ाय के गणिका तारी, तारी मीरा बाई॥

द्वितीय परिच्छेद

(अवतार क्या अब नहीं हैं ?)

गृहस्वामी ने आकर प्रणाम किया। ये मारवाड़ी भक्त हैं, ठाकुर की बड़ी भक्ति करते हैं। पण्डित जी का लड़का बैठा है। ठाकुर ने पूछा, ''पाणिनी व्याकरण क्या इस देश में पढ़ा जाता है ?''

मास्टर— जी, पाणिनी ?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, और न्याय, वेदान्त इत्यादि पढ़ा जाता है ?

गृहस्वामी ने इन बातों का उत्तर बिना दिए पूछा।

गृहस्वामी— महाराज, उपाय क्या है ?

श्रीरामकृष्ण— उनका नामगुणकीर्त्तन। साधुसंग। व्याकुल होकर उनके निकट प्रार्थना।

गृहस्वामी— जी, यह आशीर्वाद करें, जिससे संसार में मन कम जाए।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— कितना है ? आठ आना ? *(सहास्य)*।

गृहस्वामी— जी, यह तो आप ही जानते हैं। महात्मा की दया बिना हुए कुछ भी नहीं होगा।

श्रीरामकृष्ण— उनको सन्तुष्ट रखने पर सब ही सन्तुष्ट होंगे। महात्मा के हृदय में वे ही तो हैं।

गृहस्वामी— उनको पा लेने पर तो बात ही नहीं रहती। उनको यदि कोई पा

लेता है, तो फिर सब छोड़ देता है। रुपया पा लेने पर पैसे का आनन्द छोड़ देता है।

श्रीरामकृष्ण— कुछ साधन प्रयोजनीय है। साधन करते-करते क्रमश: आनन्द मिलता है। जमीन में बहुत नीचे यदि कलसी-भरा धन हो, और यदि कोई उस धन को चाहता है, तो फिर परिश्रम कर के खोदना पड़ता है। सिर से पसीना टपकता है। किन्तु बहुत खोदने पर कलसी के शरीर पर जब फावड़ा लग कर ठन कर उठता है, तब ही आनन्द होता है। जितना ही ठन-ठन करेगा, उतना ही आनन्द होगा। राम को पुकारे जाओ, उनका चिन्तन करो। राम ही सब व्यवस्था कर देंगे।

गृहस्वामी— महाराज, आप ही राम हैं।

श्रीरामकृष्ण— यह कैसी बात? नदी की ही तरंग है, क्या तरंग की नदी है?

गृहस्वामी— महात्माओं के भीतर ही राम हैं। राम तो दिखाई नहीं देता। और अब अवतार नहीं हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— कैसे जाना कि अवतार नहीं हैं?

गृहस्वामी चुप रहे।

श्रीरामकृष्ण— अवतार को सब ही नहीं पहचान सकते। नारद जब रामचन्द्र के दर्शन करने गए थे तो राम ने उठ कर, खड़े होकर साष्टांग प्रणाम किया और बोले, हम संसारी जीव हैं, आप-जैसे साधु न आएँ तो हम किस प्रकार पवित्र होंगे? और फिर जब सत्यपालन के लिए वन में गए, तब देखा, राम का वनवास सुनने के बाद से अनेक ऋषि ही आहार छोड़ कर पड़े हुए हैं। उनमें से बहुत से नहीं जानते कि राम साक्षात् परब्रह्म हैं।

गृहस्वामी— आप भी तो वही राम हैं।

श्रीरामकृष्ण— राम! राम! ऐसी बात नहीं कहते।

यह कह कर ठाकुर ने हाथ जोड़ कर प्रणाम किया और कहा—

"वही राम घट-घट में लेटा, वही राम जगत पसेरा! मैं तुम्हारा दास हूँ। वही राम ही यह समस्त मनुष्य, जीव, जन्तु हुए हैं।"

गृहस्वामी— महाराज, हम तो यह नहीं जानते—

श्रीरामकृष्ण— तुम जानो चाहे न जानो, तुम राम हो!

गृहस्वामी— आप को रागद्वेष नहीं है।

श्रीरामकृष्ण— क्यों? जिस गाड़ी वाले के साथ कलकत्ता आने की बात थी, वह तीन आने ले गया, और फिर नहीं आया, उसके ऊपर तो मैं खूब गुस्से हो गया था। किन्तु वह बड़ा बुरा आदमी था। देखो ना, कितना कष्ट दिया।

तृतीय परिच्छेद

(बड़े बाजार में अन्नकूट-महोत्सव में श्री मयूरमुकुटधारी की पूजा)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण कुछ देर विश्राम कर रहे हैं। इधर मारवाड़ी भक्तों ने बाहिर छत के ऊपर भजन-गान आरम्भ किया। श्री श्री मयूरमुकुटधारी का आज महोत्सव है। भोग का समस्त आयोजन हुआ है। देवदर्शन करने के लिए वे लोग श्रीरामकृष्णदेव को बुला कर ले गए। मोरमुकुटधारी के दर्शन कर के ठाकुर ने प्रणाम किया और निर्माल्य धारण किया।

विग्रह-दर्शन कर के ठाकुर भाव में मुग्ध हो गए। हाथ जोड़ कर कह रहे हैं—

''प्राण हे, गोविन्द मम जीवन! जय गोविन्द, गोविन्द, वासुदेव, सच्चिदानन्द-विग्रह! हा कृष्ण, हे कृष्ण, ज्ञान कृष्ण, मन कृष्ण, प्राण कृष्ण, आत्मा कृष्ण, देह कृष्ण, जात कृष्ण, कुल कृष्ण, प्राण हे, गोविन्द मम जीवन!''

ये बातें बोलते-बोलते ठाकुर खड़े-खड़े समाधिस्थ हो गए। श्रीयुक्त राय चैटर्जी ठाकुर को पकड़े रहे।

अनेक क्षण पश्चात् समाधि भंग हुई।

इधर मारवाड़ी भक्त सिंहासनस्थ मोरमुकुटधारी-विग्रह को बाहिर ले जाने के लिए आ गए। बाहिर भोग का आयोजन हुआ है।

श्रीरामकृष्ण की समाधि भंग हो गई। महानन्द में मारवाड़ी भक्तगण सिंहासनस्थ विग्रह को घर के बाहिर ले जा रहे हैं। ठाकुर भी संग-संग जा रहे हैं।

भोग लगा। भोग के समय मारवाड़ी भक्तों ने कपड़े की ओट की। भोगान्ते आरती और गाना होने लगा। श्रीरामकृष्ण विग्रह को चंवर डुला रहे हैं।

अब ब्राह्मण-भोजन हो रहा है। उसी छत पर ही ठाकुर के सम्मुख ही वह सब कार्य निष्पन्न होने लगा। ठाकुर श्रीरामकृष्ण को मारवाड़ियों ने खाने के लिए अनुरोध किया। ठाकुर बैठ गए, भक्तों ने भी प्रसाद पाया।

(बड़े बाजार से राजपथ पर— 'दीवाली' दृश्यों के बीच से)

ठाकुर ने विदा ग्रहण की। सन्ध्या हो गई है। रास्ते में फिर भी बड़ी भीड़ है। ठाकुर बोले, "चलो हम तो गाड़ी से उतर जाएँ, गाड़ी पीछे से घूम कर आ जाए।" रास्ते में थोड़ा-सा ही जाने पर ठाकुर ने देखा, पानवाला गड्ढे की न्यायीं एक घर के सामने दुकान खोले बैठा हुआ है। उस जगह प्रवेश करने के लिए सिर झुका कर प्रवेश करना पड़ता है। ठाकुर कहते हैं, कैसा कष्ट है, ज़रा-से स्थान के भीतर बद्ध हुआ रहता है। गृहस्थियों का कैसा स्वभाव! उसमें ही हैं फिर आनन्दमय!

गाड़ी घूम कर निकट आ गई। ठाकुर फिर दोबारा गाड़ी में चढ़ गए। अन्दर ठाकुर के संग बाबूराम, मास्टर और चैटर्जी हैं। छोटे गोपाल गाड़ी की छत पर बैठ गए।

किसी भिखारिणी ने, गोद में लड़का, गाड़ी के सम्मुख आ कर भिक्षा माँगी। ठाकुर ने देख कर मास्टर से कहा, क्यों भई, पैसा है? गोपाल ने पैसा दे दिया।

बड़े बाजार से गाड़ी जा रही है। दीवाली की बड़ी धूम है। अन्धेरी रात है किन्तु दीपों से आलोकित है। बड़े बाजार की गली से होकर गाड़ी चित्पुर रोड पर आ गई। वह स्थान भी दीपों के प्रकाश से और कीड़ियों की भाँति लोगों से भरा है। लोग उत्सुक होकर दोनों ओर की सजी दुकानों का दर्शन कर रहे हैं। कहीं-कहीं पर मिठाई की दुकानें हैं, परातों आदि में नानाविध मिठाइयाँ सजी हुई हैं। कहीं पर नानाविध सुन्दर चित्रों से सुशोभित गुलाब के इतर की दुकानें हैं। दुकानदार मनोहर वेश धारण कर के, गुलाबपाश हाथ में लेकर दर्शकों पर गुलाबजल बरसा रहा है। गाड़ी एक इतर वाले की दुकान के सामने आ गई। ठाकुर पाँच वर्ष के

बालक की न्यायीं छवि और रोशनी देखकर आह्लाद प्रकट कर रहे हैं। चारों ओर कोलाहल है। ठाकुर उच्चस्वर से कहते हैं— और बढ़कर देखो, और आगे! और बोलते-बोलते हँस रहे हैं। बाबूराम को उच्चहास्य से कहते हैं, "ओ रे आगे बढ़ ना, क्या कर रहा है?"

('आगे बढ़ो'— श्रीरामकृष्ण के द्वारा संचय तो होना ही नहीं है)

भक्तगण हँसने लगे; समझ गए, ठाकुर कह रहे हैं, ईश्वर की ओर आगे बढ़ो, अपनी वर्तमान अवस्था से सन्तुष्ट मत रहो। लकड़हारे से ब्रह्मचारी ने कहा था—

"और आगे बढ़ो।" लकड़हारा आगे जा कर क्रमशः देखता है, चन्दन-वृक्षों का वन, और फिर कुछ दिन बाद आगे जाकर देखता है, चाँदी की खान; और फिर आगे जाकर देखा, सोने की खान; अन्त में देखता है हीरे माणिक! तभी ठाकुर बार-बार कहते हैं, "आगे बढ़ो, आगे बढ़ो।"

गाड़ी चलती है। मास्टर ने धोतियाँ खरीदी हैं, ठाकुर ने देख लिया है। दो छोटी धोती और दो धुली हुई। किन्तु ठाकुर ने तो केवल छोटी धोती ही खरीदने के लिए कहा था। ठाकुर बोले— 'तेल धुति' साथ रख दो, वे धोतियाँ तो चाहे तुम अब ले जाओ, अपने पास रख लो। चाहे एक दे दो।

मास्टर— अच्छा, एक वापिस ले जाऊँगा?

श्रीरामकृष्ण— नहीं, अभी रहने दो, दोनों ही ले जाओ।

मास्टर— जो आज्ञा।

श्रीरामकृष्ण— और फिर जब दरकार होगी तब ला देना। देखो ना, कल वेणीपाल रामलाल के लिए गाड़ी में खाना रखने के लिए आया था। मैंने कह दिया, मेरे साथ कोई भी वस्तु मत देना। संचय जो नहीं करना है।

मास्टर— जी हाँ, उसका फिर क्या है? ये सफेद दोनों अब लौटा ले जाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण *(सस्नेह)*— मेरे मन में ज़रा-सा भी कुछ होना तुम लोगों के लिए अच्छा नहीं है। यहाँ तो अपनी ही बात है, जब दरकार होगी, कह दूँगा।

मास्टर *(विनीत भाव से)*— जो आज्ञा।

गाड़ी एक दुकान के सामने आ गई, वहाँ पर चिलमें बिक रही हैं।

श्रीरामकृष्ण ने राय चैटर्जी से कहा, ''राय, एक पैसे की चिलम खरीद लो ना!''

ठाकुर किसी भक्त की बात करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— मैंने उसे कहा, कल बड़े बाजार जाऊँगा, तू आएगा? तो क्या बोला, जानते हो? 'और फिर ट्राम में चार पैसे भाड़ा लगेगा; कौन जाए।' वेणीपाल के बागान में कल गया था, वहाँ पर आचार्यगिरी की। किसी ने कहा भी नहीं था। अपने-आप गाने लगा ताकि लोग जानें, 'मैं ब्रह्मज्ञानियों में से एक व्यक्ति हूँ।'

(मास्टर के प्रति)— हाँ जी, यह क्या है, बताओ तो सही। कहता है, फिर एक आना खर्च होगा!

मारवाड़ी भक्तों के अन्नकूट की बातें फिर उठीं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— यहाँ जो देखा है, वृन्दावन में भी वही है। राखाल आदि वृन्दावन में ऐसा ही सब देख रहे हैं। तो भी वहाँ पर अन्नकूट और भी ऊँचा है, लोग भी बहुत, गोवर्धन पर्वत है, यही सब प्रभेद है।

(हिन्दु धर्म सनातन धर्म)

''किन्तु हिन्दुस्तानियों (उत्तर के लोगों) की कैसी भक्ति है, देखा! यथार्थ ही हिन्दु भाव है। यही सनातन धर्म है। देवमूर्त्ति को ले जाते समय कितना आनन्द देखा था। आनन्द यह सोच कर कि हम लोग भगवान का सिंहासन वहन कर के ले जा रहे हैं।

''हिन्दु धर्म ही सनातन धर्म है! अब जो समस्त धर्म देख रहे हो, ये सब उनकी इच्छा से होंगे, जाएँगे— ठहरेंगे नहीं! जभी तो मैं कहा करता हूँ, अबके जो सब भक्त हैं, उनके भी चरणेभ्यो नमः। हिन्दु धर्म सर्वदा है और सर्वदा रहेगा।''

मास्टर घर लौटेंगे। ठाकुर की चरण-वन्दना कर के शोभाबाज़ार के निकट उतर गए। ठाकुर आनन्द मनाते-मनाते बाड़ी पर जा रहे हैं।

द्वाविंश खण्ड

दक्षिणेश्वर में पंचवटीतले भक्तों के संग श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(दक्षिणेश्वर में ठाकुर श्रीरामकृष्ण और 'देवी चौधुराणी'-पाठ)

आज शनिवार, 27 दिसम्बर, 1884 ईसवी, पौष शुक्ला सप्तमी तिथि। यीशु क्राईस्ट के जन्म के उपलक्ष्य में भक्तों को अवसर है। अनेक जन ठाकुर श्रीरामकृष्ण को देखने आए हैं। सुबह ही अनेक जन आ गए हैं। मास्टर और प्रसन्न ने आकर देखा, ठाकुर अपने कमरे के दक्षिण वाले दालान में हैं। उन्होंने आकर उनकी चरण-वन्दना की।

श्रीयुक्त सारदा प्रसन्न ने ठाकुर श्रीरामकृष्ण के यहीं प्रथम दर्शन किए हैं।

ठाकुर ने मास्टर से कहा, ''कहाँ, बंकिम को नहीं लाए?''

बंकिम स्कूल का एक छात्र है। ठाकुर ने बागबाजार में उनको देखा था। दूर से देखते ही बोले थे, ''लड़का तो अच्छा है।''

अनेक भक्त आए हुए हैं। केदार, राम, नित्यगोपाल, तारक, सुरेश (मित्र) प्रभृति और छोकरे भक्त भी अनेक उपस्थित हैं।

कुछ देर बाद ठाकुर भक्तों के संग में पंचवटी-तल में जाकर बैठ

गए। भक्तगण चारों ओर से घेरे हुए हैं। कोई बैठा है, कोई खड़ा है। ठाकुर पंचवटी-तले ईंटों वाले चबूतरे के ऊपर बैठे हुए हैं। दक्षिण-पश्चिम की ओर मुख किए हुए हैं। सहास्य मास्टर से कहा—

''क्या पुस्तक लाए हो?''

मास्टर— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— थोड़ी-थोड़ी पढ़कर सुनाओ, देखूँ।

(श्रीरामकृष्ण और राजा का कर्त्तव्य)

भक्तगण आग्रह के साथ देखते हैं, क्या पुस्तक है। पुस्तक का नाम 'देवी चौधुराणी' है। ठाकुर ने सुना है, 'देवी चौधुराणी' में निष्काम कर्म की बातें हैं। लेखक श्रीयुक्त बंकिम का नाम भी सुना है। पुस्तक में उन्होंने क्या लिखा है, वह सुनकर उनके मन की अवस्था समझ सकेंगे। मास्टर ने कहा—

''लड़की डाकुओं के हाथ में पड़ गई थी। उसका नाम प्रफुल्ल था, फिर 'देवी चौधुराणी' हो गया था। जिस डाकू के हाथ में लड़की पड़ी थी, उसका नाम था भवानी पाठक। वह डाकू बड़ा भला था। उसने प्रफुल्ल से अनेक साधन-भजन करवाया था। और किस प्रकार निष्काम कर्म करना चाहिए, यह भी सिखाया था। डाकू दुष्ट लोगों के पास से रुपया-पैसा छीन कर गरीब दुखियों को खिलाता— उन को दान देता। प्रफुल्ल से कहा था, 'मैं दुष्टों का दमन और शिष्टों का पालन करता हूँ।' ''

श्रीरामकृष्ण— वह तो राजा का कर्त्तव्य है।

मास्टर— और एक स्थान पर भक्ति की बात है। भवानी ठाकुर (पाठक) ने प्रफुल्ल के साथ रहने के लिए एक लड़की भेज दी थी। उसका नाम निशि था। वह बड़ी भक्तिमती लड़की थी। वह कहा करती श्री कृष्ण मेरा पति है। प्रफुल्ल का विवाह हो गया था। उसका बाप नहीं था, माँ थी। झूठा दोष लगाकर मुहल्ले के लोगों ने उसे बहिष्कृत कर दिया था। जभी प्रफुल्ल का श्वसुर उसे अपने घर नहीं ले गया। उसने अपने बेटे के और भी दो विवाह कर दिए थे। प्रफुल्ल को अपने पति पर बहुत प्रीति थी।

यहाँ से सुनने पर समझ में अच्छा आ जाएगा—

निशि— मैं उनकी [भवानी ठाकुर (पाठक) की] कन्या हूँ, वे मेरे पिता हैं। उन्होंने भी मुझे एक प्रकार से सम्प्रदान कर दिया है।

प्रफुल्ल— एक प्रकार से क्या?

निशि— सर्वस्व श्रीकृष्ण में।

प्रफुल्ल— वह कैसे?

निशि— रूप, यौवन, प्राण।

प्रफुल्ल— वे ही तुम्हारे पति हैं?

निशि— हाँ, क्यों नहीं, जिनका सम्पूर्ण रूप से मुझ पर अधिकार है, वे ही मेरे स्वामी हैं।

प्रफुल्ल दीर्घ निश्वास त्याग करके बोली—

''बता नहीं सकती। तुमने कभी भी पति देखा नहीं, तभी तो कह रही हो— पति देख लेने पर कभी भी श्रीकृष्ण में मन नहीं जाता।''

मूर्ख ब्रजेश्वर (प्रफुल्ल का पति) इतना नहीं जानता था (कि उसकी स्त्री उससे इतना प्रेम करती है)!

वयस्या (निशि) ने कहा—

''श्रीकृष्ण पर सब लड़कियों का ही मन खिंच सकता है; क्योंकि, उनका रूप अनन्त, यौवन अनन्त, ऐश्वर्य अनन्त और गुण अनन्त हैं।

यह युवती भवानी ठाकुर की बेटी थी, किन्तु प्रफुल्ल निरक्षर थी— इस बात का उत्तर नहीं दे सकी। हिन्दु धर्म के प्रणेतागण उत्तर जानते हैं।

''ईश्वर अनन्त हैं, जानती हूँ। किन्तु अनन्त को क्षुद्र हृदयपिंजर में भर नहीं सकते, किन्तु सान्त को कर सकते हैं। जभी अनन्त जगदीश्वर हिन्दु के हृदयपिंजर में सान्त श्रीकृष्ण हैं। पति और भी स्पष्ट रूप से सान्त है। इसीलिए पवित्र प्रेम होने पर पति ईश्वर पर आरोहण करने का प्रथम सोपान है। जभी हिन्दु नारी का पति ही देवता है। अन्य सब समाज, हिन्दु समाज के पास इस अंश में निकृष्ट हैं।''

प्रफुल्ल मूर्ख लड़की, कुछ समझ नहीं सकी। बोली—

''बई, मैं इतनी बातें नहीं समझ सकती। तुम्हारा नाम क्या है, अभी तक

बताया ही नहीं ?''

वयस्या (सहेली) बोली—

''भवानी ठाकुर ने निशि नाम रखा है। मैं दिवा की बहिन निशि हूँ। दिवा को एक दिन मिलाने ले आऊँगी। किन्तु जो कह रही थी, सुनो। ईश्वर ही परम पति हैं। स्त्रियों का पति ही देवता है। श्रीकृष्ण सबके देवता हैं। अजी, दो देवता क्यों? दो ईश्वर? इस क्षुद्र प्राण की क्षुद्र भक्ति के दो भाग करने से कितना बचेगा?

प्रफुल्ल— हूँ, हट परे! स्त्री की भक्ति का क्या अन्त है?

निशि— नारी के प्यार का अन्त नहीं है। भक्ति एक है, प्यार और है।

(आगे ईश्वर-साधन— या आगे लिखना-पढ़ना)

मास्टर— भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल का साधन आरम्भ करवा दिया।

''प्रथम वर्ष भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल के घर में किसी पुरुष को जाने नहीं दिया था। उसको घर के बाहिर किसी पुरुष के साथ बातचीत करने नहीं दी। दूसरे वर्ष आलाप करने का निषेध नहीं रहा। किन्तु उसके घर में किसी पुरुष को जाने नहीं दिया। फिर तीसरे वर्ष जब प्रफुल्ल ने सिर मुण्डा लिया तब भवानी ठाकुर चुने हुए शिष्यों को संग लेकर प्रफुल्ल के निकट जाते— प्रफुल्ल मुण्डे सिर से मुख नीचा किए हुए उनके संग शास्त्रीय आलाप करती।

''उसके पश्चात् प्रफुल्ल की विद्या-शिक्षा आरम्भ हुई। व्याकरण, रघु[1], कुमार[2], नैषध[3], शकुन्तला[4] पढ़ा गया। और थोड़ा-सा सांख्य, थोड़ा-सा वेदान्त, थोड़ा न्याय।''

श्रीरामकृष्ण— इसका मतलब क्या है, जानते हो? बिना पढ़े-सुने ज्ञान नहीं

1 'रघुवंश'

2 'कुमार सम्भव'

3 'नैषध चरित'

4 'अभिज्ञान शाकुन्तल'

होता। जिसने लिखा है, ऐसे लोगों का यही मत है। ये समझते हैं, पहले लिखना-पढ़ना है, उसके बाद ईश्वर है— ईश्वर को जानने के लिए लिखाई-पढ़ाई चाहिए। किन्तु यदुमल्लिक के संग बातचीत करनी हो तो उसके कितने घर, कितना रुपया, कितने कम्पनी के कागज हैं— इन सब बातों की खबर का मुझे क्या काम है? जिस तरह भी हो— स्तव करके ही हो, द्वारपालों का धक्का खा कर ही हो, किसी तरह घर के अन्दर घुसकर यदुमल्लिक के साथ बातचीत करनी चाहिए। और यदि घर-द्वार, रुपये-पैसे का पता करने की इच्छा हो, तब यदुमल्लिक से पूछने पर ही वह पता लग जाएगा! खूब सहज में पता लग जाएगा। आगे राम फिर पीछे राम का ऐश्वर्य— जगत। तभी तो वाल्मीकि ने 'मरा' मन्त्र जप किया था। 'म' अर्थात् ईश्वर, फिर 'रा' अर्थात् जगत— उसका ऐश्वर्य!

भक्तगण अवाक् होकर ठाकुर का कथामृत-पान करते हैं।

द्वितीय परिच्छेद

(निष्काम कर्म और श्रीरामकृष्ण— फल समर्पण और भक्ति)

मास्टर— अध्ययन शेष हो जाने पर और काफी दिन साधन के पश्चात् भवानी ठाकुर प्रफुल्ल के संग फिर मिलने आए। अब निष्काम कर्म का उपदेश देंगे। गीता से श्लोक बोले— तस्मादसक्त: सततं कार्यं कर्म समाचर।

असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुष:॥ (3:19)

(अतएव अनासक्त होकर सर्वदा कर्म करो। कारण, अनासक्त होकर कार्य करने से पुरुष वही श्रेष्ठ भगवत्-पद प्राप्त करता है।)

अनासक्ति के तीन लक्षण बताए— (1) इन्द्रियसंयम। (2) निरहंकार। (3) श्रीकृष्ण में फल-समर्पण। निरहंकार बिना धर्म-आचरण नहीं होता। गीता से फिर और उच्चारण करने लगे—

प्रकृते: क्रियमाणानि गुणै: कर्माणि सर्वश:।

अहंकार विमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते॥ (3:27)

(सारे कर्म ही प्रकृति के गुणों द्वारा किए जा रहे हैं। किन्तु अहंकार-विमुग्ध व्यक्ति अपने को कर्त्ता समझता रहता है।)

उसके पश्चात् सर्व कर्मफल श्रीकृष्ण में समर्पण करने को कहा। गीता से कहने लगे— यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत् कुरुष्व मदर्पणम्॥ (9:27)
(जो कुछ करो, जो कुछ खाओ, जो होम करो, जो दान करो, जो तपस्या करो, वह सब ही मुझ में समर्पण करो।)

निष्काम कर्म के ये तीन लक्षण बताये।

श्रीरामकृष्ण— यह सुन्दर है— गीता की वाणी। कटने वाली जो नहीं। फिर भी एक बात और है। श्रीकृष्ण फल समर्पण करने के लिए कहते हैं; श्रीकृष्ण ने भक्ति के लिए नहीं कहा।

मास्टर—यहाँ पर यह बात विशेष रूप से नहीं कही।

(हिसाबी बुद्धि से नहीं होता— एकदम छलाँग)

फिर धन का कैसे व्यवहार करना होगा, वे बातें हुईं। प्रफुल्ल ने कहा, यह समस्त धन श्रीकृष्ण के अर्पण कर दिया।

प्रफुल्ल— जब मैंने अपना सब कर्म श्री कृष्ण में अर्पण कर दिया है, तब मैंने अपना यह धन भी श्रीकृष्ण में अर्पण किया।

भवानी—सब ?

प्रफुल्ल— सब !

भवानी— ठीक वैसा होने पर कर्म अनासक्त नहीं होगा। अपने आहार के लिए यदि तुम्हें चेष्टा करनी पड़ेगी, तब तो आसक्ति जन्मेगी। अतएव तुम्हें या तो भिक्षावृत्त होना होगा, नहीं तो इस धन से देहरक्षा करनी होगी। भिक्षा में भी आसक्ति है। अतएव इस धन से अपनी देहरक्षा करोगी।

मास्टर *(श्रीरामकृष्ण के प्रति सहास्य)*— इतना-सा ही पटवारीपन।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, यही है पटवारीपन, इतनी-सी हिसाबी बुद्धि। जो भगवान को चाहता है, वह एकदम छलाँग मारता है। देहरक्षा के लिए इतना रहे, ऐसा हिसाब नहीं आता।

मास्टर— उसके पश्चात् है:

भवानी ने पूछा, "धन को श्रीकृष्ण को कैसे अर्पण करोगी?"

प्रफुल्ल बोली, श्रीकृष्ण सर्वभूतों में हैं। अतएव सर्वभूतों में धन वितरण करूँगी।

भवानी बोले, अच्छा है, अच्छा है।

गीता से और श्लोक उच्चारण करने लगे—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि स योगी मयि वर्त्तते॥

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुखं स योगी परमो मतः॥

(6:30—32)

(जो व्यक्ति सर्वत्र मुझ को देखता है एवं सकल वस्तुओं को मुझ में देखता है, उसके पास से मैं कभी अदृष्ट नहीं रहता, वह भी कभी मेरी दृष्टि से दूर नहीं रहता। जो व्यक्ति जीव और ब्रह्म अभेददर्शी होकर सर्वभूतस्थित मुझे भजता है, किसी भी अवस्था में भी रहे, वह योगी मुझ में ही अवस्थान करता है। हे अर्जुन, सुख ही हो या दु:ख ही हो, जो अपने ही सदृश सर्वत्र ही समदर्शन करता है, वह योगी ही मेरे मत में सर्वश्रेष्ठ है।)

श्रीरामकृष्ण— ये उत्तम भक्त के लक्षण हैं।

[विषयी लोग और उनकी भाषा— आकर (आधार) का आकर्षण]

मास्टर पढ़ने लगे :

"सर्वभूतों में दान के लिए बहुत परिश्रम चाहिए। कुछ वेशविन्यास, कुछ

भोगविलास के ठाट का प्रयोजन है। भवानी ने तभी कहा, कभी-कभी कुछ 'दुकानदारी' चाहिए।

श्रीरामकृष्ण *(विरक्तभाव में)*— 'दुकानदारी' चाहिए! जैसा आकर (आधार) होता है, वाणी भी वैसी ही निकलती है। रात-दिन विषय-चिन्ता, लोगों के संग में कपट— यह सब करते-करते वाणी भी उसी तरह की हो जाती है। मूली खाने पर मूली की डकार निकलती है। 'दुकानदारी' की बात न कहकर उसको ही भली प्रकार कह सकता था, 'अपने को अकर्त्ता मान कर कर्त्ता की न्यायीं कार्य करना।' उस दिन कोई गाना गा रहा था। उस गाने में 'लाभ', 'नुकसान' ऐसी ही बहुत-सी बातें थीं। वह गाना गा रहा था, मैंने मना कर दिया। जिसकी रात-दिन भावना करता है, वही वाणी में फूट पड़ता है!

तृतीय परिच्छेद

(ईश्वरदर्शन के उपाय— श्रीमुख कथित चरितामृत)

पाठ चलने लगा। अब ईश्वर-दर्शन की बात चली। प्रफुल्ल अब देवी चौधुराणी हो गई है। वैशाखी शुक्ला सप्तमी तिथि। देवी बजरे के ऊपर बैठी हुई दिवा के साथ बातें कर रही हैं। चाँद निकल आया है। गंगावक्ष पर बजरे में लंगर पड़ा हुआ है। बजरे की छत पर देवी और दोनों सखियाँ हैं। ईश्वर क्या दिखाई देते हैं, यही बातें हो रही हैं। देवी बोली—

जैसे फूल की गन्ध घ्राण को प्रत्यक्ष होती है उसी प्रकार ईश्वर मन के प्रत्यक्ष होते हैं। "ईश्वर मानस प्रत्यक्ष के विषय हैं।"

श्रीरामकृष्ण—मन के प्रत्यक्ष। इस मन के नहीं, शुद्ध मन के। तब यह मन नहीं रहता। विषयासक्ति ज़रा-सी भी रहने से नहीं होता। मन जब शुद्ध हो जाता है तब शुद्ध मन भी कह सकते हो, शुद्ध आत्मा भी कह सकते हो।

(योग दूरबीन— पातिव्रत्य धर्म और श्रीरामकृष्ण)

मास्टर—मन के द्वारा सहज में प्रत्यक्ष नहीं होते, यह बात थोड़ा पीछे है। (आगे देवी) कहती है, प्रत्यक्ष करने के लिए दूरबीन चाहिए। इस दूरबीन का नाम योग है। फिर जैसे गीता में है, कहती है, योग तीन प्रकार का है— ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग। इसी योगदूरबीन द्वारा ईश्वर को देखा जाता है।

श्रीरामकृष्ण—यह खूब अच्छी बात है। गीता की बात।

मास्टर— अन्त में देवी चौधुराणी का पति के संग मिलन हुआ। स्वामी के ऊपर खूब भक्ति। स्वामी से कहा, 'तुम मेरे देवता हो। मैं अन्य देवता की अर्चना करना सीख रही थी, सीख नहीं सकी। तुमने सब देवताओं के स्थान पर अधिकार कर लिया है।'

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— 'सीख नहीं सकी!' इसका नाम है पतिव्रता का धर्म। यह भी है।

पाठ समाप्त हो गया। ठाकुर हँस रहे हैं। भक्तगण उत्सुक हैं कि ठाकुर अब और क्या कहते हैं?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य, केदार और अन्यान्य भक्तों के प्रति)*— यह एक तरह से बुरा नहीं है, पतिव्रता-धर्म। प्रतिमा में ईश्वर की पूजा होती है फिर जीवन्त मनुष्य में क्या नहीं होती? वे ही मनुष्य होकर लीला कर रहे हैं।

(पूर्वकथा— ठाकुर के ब्रह्मज्ञान की अवस्था और सर्वभूतों में ईश्वर-दर्शन)

कैसी अवस्था गई है! हरगौरी-भाव में कितने दिन था! और फिर कितने दिन राधाकृष्ण-भाव में! कभी सीताराम के भाव में! राधा के भाव में कृष्ण-कृष्ण करता रहता; सीता के भाव में राम-राम करता रहता।

"तो भी लीला का शेष नहीं है! इन समस्त भावों के पश्चात् कहा, माँ, इन सबमें विच्छेद है। जिसका विच्छेद नहीं है, ऐसी अवस्था कर दो। इसीलिए कितने ही दिन अखण्ड सच्चिदानन्द के भाव में रहा। देवताओं के चित्र कमरे से निकाल दिए।

"उनका सर्वभूतों में दर्शन करने लगा! पूजा हट गई! यह बेल वृक्ष! बेल-पत्ते तोड़ने आया करता था। एक दिन पत्ता तोड़ने लगा तो तनिक-सी छाल उखड़ गई। देखा, वृक्ष चैतन्यमय! मन में कष्ट हुआ। दूर्वा तोड़ते समय देखा, पहले की तरह तोड़ नहीं सका। तब जोर करके तोड़ने गया।

"मैं नींबू काट नहीं सकता। उसी दिन बड़े कष्ट से 'जय काली' बोल कर उनके सामने बलि-मत करके तब काट सका था। एक दिन फूल तोड़ने के समय दिखा दिया— वृक्ष पर फूल खिले हुए हैं, जैसे सम्मुख विराट हैं— पूजा हो चुकी है— विराट के मस्तक पर फूलों के स्तबक (गुलदस्ते) हैं! फिर फूल तोड़ना नहीं हुआ।

"वे मनुष्य बन कर भी लीला कर रहे हैं। मैं देखता हूँ, साक्षात् नारायण। काठ घिसते-घिसते जैसे अग्नि निकलती है, भक्ति का जोर रहने पर मनुष्य में ही ईश्वर-दर्शन होता है। बढ़िया चारा हो तो बड़ी रोहू, कातला गप्-गप् खाती हैं।

"प्रेमोन्माद होने पर सर्वभूतों में साक्षात्कार होता है। गोपियों ने सर्वभूतों में श्रीकृष्ण-दर्शन किया था। कृष्णमय देखा था। कहती थीं, 'मैं ही कृष्ण हूँ!' तब थी उन्माद-अवस्था! वृक्ष देखकर कहतीं, 'ये तपस्वीं हैं, श्रीकृष्ण का ध्यान कर रहे हैं।' तृण देख कर कहतीं, 'यह देखो, श्रीकृष्ण का स्पर्श करके पृथिवी को रोमांच हो आया है।'

"पतिव्रता-धर्म— पति देवता है। वह होगा क्यों नहीं? प्रतिमा में पूजा होती है, फिर जीवन्त मनुष्य में नहीं होती?"

**(प्रतिमा में आविर्भाव— मनुष्य में ईश्वर-दर्शन कब ?
नित्यसिद्ध और संसार)**

"प्रतिमा में आविर्भाव होने के लिए तीन बातों का प्रयोजन है—
प्रथम, पुजारी की भक्ति;
दूसरे, प्रतिमा सुन्दर होनी चाहिए;
तीसरे, गृहस्वामी की भक्ति।

वैष्णवचरण ने कहा था, अन्त में नरलीला में ही मन सिमट आता है।

''फिर भी एक बात तो है ही— उनका साक्षात् बिना किए इस प्रकार दर्शन नहीं होता। साक्षात्कार का लक्षण क्या है, जानते हो? बालक-स्वभाव हो जाता है। क्यों बालक-स्वभाव हो जाता है? ईश्वर निज बालक-स्वभाव हैं कि ना! तभी जो उनका दर्शन करता है, उसका भी बालक-स्वभाव हो जाता है।''

(ईश्वर-दर्शन के उपाय— तीव्र वैराग्य और वे अपने पिता हैं, यह बोध)

''ऐसा दर्शन होना चाहिए! अब उनका साक्षात्कार कैसे हो? तीव्र वैराग्य। ऐसा हो जाना चाहिए कि कहे, 'क्या! जगत्पिता? मैं क्या जगत में नहीं हूँ? मुझ पर तुम दया नहीं करोगे? साले!'

''जो जिसका चिन्तन करता है, वह उसी की सत्ता पाता है। शिवपूजा करके शिव की सत्ता पाता है। कोई राम का भक्त रात-दिन हनुमान की चिन्ता किया करता। मन में सोचता, मैं हनुमान हो गया हूँ। अन्त में उसका ध्रुव विश्वास हो जाता है कि उसके तनिक-सी पूँछ भी निकल आई है।

''शिव-अंश में ज्ञान होता है, विष्णु-अंश में भक्ति होती है। जिनका शिव-अंश, उनका ज्ञानी का स्वभाव; जिनका विष्णु-अंश, उनका भक्त का स्वभाव।''

(चैतन्यदेव अवतार— सामान्य जीव दुर्बल)

मास्टर— चैतन्यदेव? उनके लिए तो आपने कहा था कि ज्ञान और भक्ति दोनों थे।

श्रीरामकृष्ण *(विरक्त होकर)*— उनकी बात अलग है। वे हैं— ईश्वर के अवतार। उनके संग जीव का बहुत अन्तर है। उनका ऐसा वैराग्य था कि सार्वभौम ने जब जीभ पर चीनी रखी तो चीनी हवा में फर-फर करके उड़ गई, भीगी नहीं। सर्वदा ही समाधिस्थ! कितना बड़ा कामजयी! जीव के साथ उनकी तुलना! सिंह बारह वर्ष में एक बार रमण करता है, किन्तु मांस

खाता है; चिड़िया कंकर खाती है, किन्तु रात-दिन ही रमण करती है। वैसे ही अवतार और जीव। जीव ने काम-त्याग किया, फिर शायद किसी दिन रमण हो गया; सम्भाल नहीं सकता।

(मास्टर के प्रति) लज्जा क्यों? जिसका होता है, वह लोकपोक देखता है! 'लज्जा-घृणा-भय, तिन थाकते नय।' ये सब पाश हैं। 'अष्ट पाश' हैं ना?

''जो नित्यसिद्ध हैं, उन्हें संसार में क्या भय? यह शतरंज का खेल है; इसमें दोबारा पासा फेंकने से क्या होगा, यह भय नहीं रहता।

''जो नित्यसिद्ध है, वह इच्छा करने पर संसार में भी रह सकता है। कोई-कोई तो दो तलवारों से भी खेल सकता है। वह ऐसा खिलाड़ी हो जाता है कि पत्थर उसकी तलवार से लगकर छिटक कर दूर जा पड़ता है।''

(दर्शन का उपाय—योग, योगी का लक्षण)

भक्त— महाशय, कैसी अवस्था में ईश्वर का दर्शन मिलता है?

श्रीरामकृष्ण— समस्त मन को समेट लाए बिना क्या होता है? भागवत में शुकदेव की बात है, मार्ग में जाते हैं जैसे संगीन चढ़ी हुई। किसी ओर भी दृष्टि नहीं है। एक लक्ष्य— केवल भगवान की ओर दृष्टि। इसका नाम है योग।

''चातक केवल वर्षा का जल पीता है। गंगा, यमुना, गोदावरी— ये सब नदियाँ जल से परिपूर्ण होती हैं, सात समुद्र भरपूर हैं, तब भी वह जल नहीं पिएगा। मेघ (स्वाति नक्षत्र) का जल पड़ेगा तो पिएगा।

''जिसका ऐसा योग हो गया है, उसका ईश्वर-दर्शन हो सकता है। थियेटर में जाकर जब तक पर्दा नहीं हटता तब तक लोग बैठे-बैठे बातें करते रहते हैं— घर की बातें, ऑफिस की बातें, स्कूल की बातें इत्यादि। ज्योंहि पर्दा उठता है, झट कथा-वार्ता बन्द हो जाती है। जो नाटक हो रहा है, उसे ही एक दृष्टि से देखता रहता है। बहुत देर बाद यदि एक-आध बात करता भी है तो वह उसी नाटक की ही बात करता है।

''मतवाला मद खाने के बाद केवल आनन्द की बातें करता है।''

चतुर्थ परिच्छेद

(पंचवटीतले श्रीरामकृष्ण— अवतार का 'अपराध' नहीं)

नित्य गोपाल सामने बैठे हैं— सर्वदा भावस्थ, मुख में वाणी नहीं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— गोपाल! तू केवल चुप रहता है!

नित्य *(बालक की न्यायीं)*— मैं-नहीं-जानता।

श्रीरामकृष्ण— समझा, कुछ क्यों नहीं बोलता! अपराध?

"निश्चय, निश्चय। जय-विजय नारायण के द्वारी थे। सनक-सनातन आदि ऋषियों को भीतर जाने से मना कर दिया था। उसी अपराध से इस संसार में तीन बार जन्म लेना पड़ा था।

"श्रीदाम गोलोक में विरजा के द्वारी थे। श्रीमती राधा कृष्ण को विरजा के मन्दिर में पकड़ने के लिए उनके द्वार पर गई थीं, और भीतर प्रवेश करना चाहा था— श्रीदाम ने घुसने नहीं दिया था। तभी श्रीमती ने श्राप दिया था, जा तू मर्त्यलोक में असुर पैदा होगा। श्रीदाम ने भी श्राप दे दिया था! *(सब का ईषत् हास्य)*।

"किन्तु एक बात है, लड़का यदि बाप का हाथ पकड़े तो फिर गढ़े में गिर सकता है, किन्तु बाप जिसका हाथ पकड़े रहता है, उसको भय क्या?

"श्रीदाम की बात ब्रह्मवैवर्त्त पुराण में है।"

केदार *(चैटर्जी)* अब ढाका में रहते हैं, वे सरकारी कर्म करते हैं। पहले कर्मस्थल कलकत्ता था, अब ढाका में है। वे ठाकुर के परम भक्त हैं। ढाका में बहुत से भक्तों का संग हुआ है। वे सब भक्त सर्वदा उनके पास आते हैं और उपदेश ग्रहण करते हैं। भक्त खाली हाथ दर्शन के लिए नहीं आते। काफी मिठाई आदि लाते हैं और केदार को निवेदन करते हैं।

(सब तरह के लोगों के लिए श्रीरामकृष्ण के नाना प्रकार के 'भाव और अवस्थाएँ')

केदार *(अति विनीत भाव से)*— उनकी वस्तु खा लूँ?

श्रीरामकृष्ण— यदि ईश्वर पर भक्ति करके देता है, तो दोष नहीं। कामना करके देने से वह वस्तु ठीक नहीं।

केदार— मैंने उनसे कह दिया है, मैं निश्चिन्त हूँ। मैंने कह दिया है, जिन्होंने मुझ पर कृपा की है, वे सब जानते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— वह तो सत्य है। यहाँ पर सब प्रकार के लोग आते हैं, तभी सब प्रकार के भाव दिखाई देते हैं।

केदार— मुझे नाना विषय जानने का प्रयोजन नहीं है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— नहीं जी, सब थोड़ा-थोड़ा-सा चाहिए। यदि कोई मोदी की दुकान करे तो सब तरह का रखना चाहिए— कुछ मसूर की दाल भी चाहिए, थोड़ी-सी इमली होगी— यह सब रखना चाहिए।

"बाजा बजाने वाला उस्ताद कुछ-कुछ सब प्रकार का बाजा बजा सकता है।"

ठाकुर झाउतले पर बाह्य गए— एक भक्त जाकर वहाँ पर लोटा रख आए।

भक्तगण इधर-उधर टहलते हैं— किसी-किसी ने ठाकुर के कमरे की ओर गमन किया, कोई-कोई पंचवटी में लौट रहे हैं। ठाकुर ने वहाँ पर आकर कहा— "दो-तीन बार बाह्य गया। मल्लिक के घर का खाना; घोर विषयी। पेट गरम हो गया है।"

[समाधिस्थ पुरुष (श्रीरामकृष्ण) को पान का डिब्बा स्मरण]

ठाकुर का पान का डिब्बा पंचवटी के चबूतरे पर अब भी पड़ा हुआ है। और भी दो-एक चीजें हैं।

श्रीरामकृष्ण ने मास्टर से कहा, "वह डिब्बा और भी जो-जो है, कमरे में ले आओ।" यह कहकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण अपने कमरे की

ओर दक्षिणास्य होकर जाने लगे। भक्तगण साथ-साथ पीछे-पीछे आ रहे हैं। किसी के हाथ में पान का डिब्बा है, किसी के हाथ में गाड़ू इत्यादि है।

ठाकुर ने मध्याह्न में कुछ विश्राम किया। दो-चार भक्त आकर बैठ गए। ठाकुर छोटी खाट पर एक छोटे तकिए का सहारा लगाकर बैठे हैं। किसी भक्त ने पूछा—

(ज्ञानी और भक्त का भाव क्या एक आधार में होता है ? साधना चाहिए)

''महाशय, ज्ञान में क्या ईश्वर के attributes— गुण जाने जाते हैं ?''

ठाकुर ने कहा—

वह इस ज्ञान में नहीं। ऐसे क्या उन्हें जाना जाता है ? साधना करनी चाहिए। और, कोई एक भाव आश्रय करना चाहिए। दासभाव। ऋषियों का शान्तभाव था। ज्ञानियों का क्या भाव है, जानते हो ? स्वस्वरूप का चिन्तन करना।

(किसी भक्त के प्रति, सहास्य)— तुम्हारा क्या है ?

भक्त चुप रहे।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तुम्हारे दोनों भाव हैं— स्वस्वरूप का चिन्तन करना भी चाहे है, और फिर सेव्य-सेवक का भाव भी निश्चय है। क्यों, ठीक है कि नहीं ?

भक्त *(सहास्य और कुण्ठित भाव से)*— जी, हाँ।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— जभी हाजरा कहता है, तुम मन की सब बातें समझ सकते हो। बहुत आगे बढ़ जाने पर ऐसा होता है। प्रह्लाद का हुआ था।

''किन्तु उस प्रकार का साधन करने के लिए कर्म चाहिए।

''कोई जन बेर के वृक्ष का काँटा दबाए हुए है, हाथ से धड़-धड़ खून बह रहा है, किन्तु कहता है, मुझे कुछ भी नहीं हुआ, लगा तो नहीं! पूछने पर कहता है— ठीक है, ठीक है। यह बात केवल मुख से बोलने पर क्या होगा ? भाव की साधना करनी चाहिए।''

भक्तगण ठाकुर का कथामृत-पान कर रहे हैं।

त्रयोविंश खण्ड

दक्षिणेश्वर में दोलयात्रा-दिवस पर श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(दोलयात्रा-दिवस, श्रीरामकृष्ण और भक्ति-योग)

आज दोलयात्रा, होली, श्री श्री महाप्रभु का जन्मदिन, 19 फाल्गुन, पूर्णिमा, रविवार, पहली मार्च, 1885 ईसवी। श्रीरामकृष्ण कमरे में छोटी खाट पर बैठे हैं, समाधिस्थ। भक्तगण फरश पर बैठे हैं, एकदृष्टि से उन्हें देख रहे हैं। महिमाचरण, राम (दत्त), मनोमोहन, नबाई चैतन्य, नरेन्द्र, मास्टर आदि अनेक जन बैठे हैं।

भक्तगण एक नजर से देख रहे हैं। समाधि भंग हो गई। तब भी भाव की पूर्णमात्रा है। ठाकुर महिमाचरण से कह रहे हैं— "बाबू, हरिभक्ति की कोई कथा—" महिमा बोले—

आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥

अन्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्।
नान्तर्बहिर्यदि हरिस्तपसा ततः किम्॥

विरम विरम ब्रह्मन् किं तपस्यासु वत्स।
व्रज व्रज द्विज शीघ्रं शंकरं ज्ञानसिन्धुम्॥

लभ लभ हरिभक्तिं वैष्णवोक्तां सुपक्वाम्।
भवनिगड़निबन्धच्छेदनीं कर्त्तरीञ्च ॥

('नारदपंचरात्र' में है। नारद तपस्या कर रहे थे, तब दैववाणी हुई— हरि की यदि आराधना की जाए, तो फिर तपस्या का क्या प्रयोजन? और हरि की यदि आराधना न की जाए, तो भी फिर तपस्या का क्या प्रयोजन? हरि यदि अन्तर-बाहिर रहते ही हैं, तो फिर तपस्या का क्या प्रयोजन? और यदि अन्तर-बाहिर नहीं रहते तो भी फिर तपस्या का क्या प्रयोजन? अतएव हे ब्रह्मन्, निवृत्त हो जाओ। वत्स, तपस्या का क्या प्रयोजन है? ज्ञान-सिन्धु शंकर के निकट गमन करो। वैष्णवगण जो हरिभक्ति की बात कह गए हैं, वही सुपक्वा भक्ति प्राप्त करो, प्राप्त करो। इसी भक्ति की कटारी द्वारा भव-बन्धन कट जाएँगे।)

(ईश्वर कोटि— शुकदेव की समाधिभंग— हनुमान, प्रह्लाद)

श्रीरामकृष्ण—जीवकोटि और ईश्वरकोटि। जीवकोटि की भक्ति वैधी भक्ति है। इतने उपचार से पूजा करनी होगी, इतना जप करना होगा, इतना पुरश्चरण करना होगा। इस वैधी के पश्चात् ज्ञान होता है। फिर लय। इस लय के बाद फिर लौटता नहीं।

"ईश्वरकोटि की बात अलग है, जैसे अनुलोम-विलोम। 'नेति-नेति' करके छत पर जब पहुँच जाता है, तब देखता है कि छत जिस वस्तु से तैयार हुई है,— ईंट, चूना, सुरखी से— सीढ़ियाँ भी उसी से बनी हैं। तब कभी छत पर भी रह सकता है, और फिर चढ़-उतर भी सकता है।

"शुकदेव समाधिस्थ थे। निर्विकल्प समाधि— जड़ समाधि। भगवान ने नारद को भेज दिया— परीक्षित को भागवत सुनानी होगी। नारद ने देखा जड़ की न्यायीं शुकदेव बाह्यशून्य बैठे हुए हैं। तब वीणा के साथ हरि के रूप के चार श्लोक वर्णन करने लगे। प्रथम श्लोक बोलते-बोलते शुकदेव को रोमांच हुआ। क्रमशः अश्रु; अन्तर में, हृदय के मध्य, चिन्मयरूप-दर्शन करने लगे। जड़ समाधि के पश्चात् फिर दोबारा रूप-दर्शन हुआ। शुकदेव ईश्वर-कोटि।

"हनुमान साकार-निराकार-साक्षात्कार करके राममूर्ति पर निष्ठा करके

रहे। चिद्घन आनन्द की मूर्ति— वही राममूर्ति।

"प्रह्लाद कभी देखते सोऽहम्; और फिर कभी दासभाव में रहते। भक्ति बिना फिर क्या लेकर रहें? जभी सेव्य-सेवकभाव आश्रय करना चाहिए— तुम प्रभु, मैं दास; हरिरस-आस्वादन करने के लिए। रसरसिक का भाव— हे ईश्वर, तुम रस* हो, मैं रसिक हूँ।

"भक्ति का मैं, विद्या का मैं, बालक का मैं— इस में दोष नहीं। शंकराचार्य ने 'विद्या का मैं' रखा था, लोकशिक्षा देने के लिए। बालक के मैं में आसक्ति नहीं होती। बालक गुणातीत होता है— किसी गुण के वश नहीं। अभी क्रोध किया, और फिर कहीं कुछ नहीं। अभी घर बनाया, और फिर भूल गया; अभी साथियों के साथ प्यार कर रहा है, और फिर कुछ दिन उन्हें बिना देखे भूल गया। बालक सत्त्व, रज, तम— किसी भी गुण के वश नहीं।

"तुम भगवान, मैं भक्त— यह भक्त का भाव है— यह मैं 'भक्ति का मैं' है। भक्ति का मैं क्यों रखता है? इसका अर्थ है। 'मैं' तो जाने वाला नहीं है। तो फिर रहे साला 'दास मैं', 'भक्त का मैं' बन कर।

"हजार विचार करो, 'मैं' नहीं जाता। 'मैं'-रूप कुम्भ है। ब्रह्म जैसे समुद्र है— जल ही जल। कुम्भ के भीतर-बाहिर जल। जल ही जल। फिर भी कुम्भ तो है ही। वही है भक्त के मैं का स्वरूप। जब तक कुम्भ है, 'मैं-तुम' है; तुम भगवान, मैं भक्त; तुम प्रभु, मैं दास— यह भी है। हजार विचार करो, यह छूटने वाला नहीं। कुम्भ न रहे तब वह और एक बात है।"

द्वितीय परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण व उनका नरेन्द्र को संन्यास का उपदेश)

नरेन्द्र आकर प्रणाम करके बैठ गए। श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र के साथ बातें

---

* रसो वै सः। रसः ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति। कोऽवान्यात् कः प्राण्यात्। यदेव आकाश आनन्दो न स्यात्। — तैत्तिरीयोपनिषत्।

करते हैं। बातें करते-करते जमीन पर आकर बैठ गए। फरश पर मादुर (बारीक चटाई) बिछी हुई है। इतने में कमरा लोगों से परिपूर्ण हो गया। भक्तगण भी हैं, बाहिर के लोग भी हैं।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— अच्छा तो है? तू क्या गिरीश घोष के घर प्राय: ही जाता है?

नरेन्द्र— जी हाँ, कभी-कभी जाता हूँ।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पास गिरीश ने कई महीनों से ही नूतन आना-जाना आरम्भ किया है। ठाकुर कहते हैं, गिरीश का विश्वास पकड़ाई में नहीं आता। जैसा विश्वास है, वैसा ही अनुराग भी। घर में ठाकुर के चिन्तन में सर्वदा मतवाले हुए रहते हैं। नरेन्द्र प्राय: जाते हैं। हरिपद, देवेन्द्र तथा और भी अनेक भक्त उनके घर प्राय: जाते हैं। गिरीश उनके साथ केवल ठाकुर की ही बातें करते हैं। गिरीश गृहस्थ में रहते हैं, किन्तु ठाकुर देखते हैं, नरेन्द्र संसार में नहीं रहेंगे— कामिनी-कांचन-त्याग करेंगे। ठाकुर नरेन्द्र के साथ बातें करते हैं—

श्रीरामकृष्ण— तू गिरीश घोष के वहाँ पर अधिक जाता है?

(संन्यास का अधिकारी— कौमार वैराग्य— गिरीश की कौन-सी श्रेणी— रावण और असुरों की प्रकृति में योग और भोग)

"किन्तु लहसुन की बाटी को जितना भी क्यों न धो लो, गन्ध थोड़ी-सी रहेगी ही। लड़कों का शुद्ध आधार है, कामिनी-कांचन स्पर्श नहीं किया। बहुत दिनों तक कामिनी-कांचन (रूपी लहसुन) से रगड़े जाने पर लहसुन की गन्ध हो जाती है।

"जैसे कव्वे द्वारा चोंच मारा हुआ आम। भगवान पर नहीं चढ़ाया जाता, स्वयं के लिए भी सन्देह रहता है। नई हण्डी और दही जमाई हुई हण्डी। दही वाली हण्डी में दूध रखने पर भय होता है। प्राय: दूध नष्ट हो जाता है।

"उनकी (गिरीश जैसों की) क्लास अलग है। उनका योग भी है,

भोग भी है। जैसे रावण का भाव— नागकन्या, देवकन्या भी लेगा और राम को भी प्राप्त करेगा।

"असुर नाना भोग भी करते हैं, और फिर नारायण को भी प्राप्त करते हैं।"

नरेन्द्र— गिरीश घोष ने पहले वाला संग छोड़ दिया है।

श्रीरामकृष्ण— बड़ी उमर में दामड़ा (षण्ड) बना है, मैंने वर्धमान में देखा था। एक षण्ड को गाय के निकट जाते देखकर मैंने पूछा, यह कैसे हुआ? यह तो षण्ड है। तब गाड़ीवान् ने बताया— महाशय, यह बड़ी आयु में षण्ड बना था। तभी पहले का संस्कार है।

"एक जगह पर संन्यासी बैठे थे— एक स्त्री वहाँ से जा रही थी। सब ईश्वरचिन्तन कर रहे थे, कोई-एक आड़ी आँख से देखने लगा। वह तीन लड़के हो जाने पर संन्यासी हुआ था।

"एक बाटी में यदि लहसुन का बघार दिया जाए, तो उसमें से क्या लहसुन की गंध जाती है? बबूल के पेड़ पर क्या आम होते हैं? वैसे, सिद्धि हो, तो हो भी सकते हैं; बबूल के पेड़ पर भी आम हो जाते हैं। वैसी सिद्धि क्या सब के पास होती है?

"संसारी मनुष्य को अवसर कहाँ? किसी को भागवत का पण्डित चाहिए था। उसके मित्र ने कहा— एक उत्तम भागवत-पण्डित है, किन्तु उसकी कुछ गड़बड़ है। उसे अपना बहुत-सा खेत आदि का काम देखना पड़ता है। चार हल, आठ हल वाले बैल हैं। सर्वदा देखरेख करनी पड़ती है; अवसर नहीं है। जिसे पण्डित का प्रयोजन था, वह बोला, मुझे ऐसे भागवती पण्डित का प्रयोजन नहीं, जिसे अवसर नहीं है। हलों-बैलों वाला भागवत-पण्डित तो मैं नहीं खोज रहा। मैं तो ऐसा भागवत-पण्डित चाहता हूँ जो मुझे भागवत सुना सके।

"एक राजा नित्य भागवत सुना करता था। पण्डित पाठ के अन्त में राजा से कहा करता था— राजा, समझे? राजा भी रोज कह देता— पहले तुम समझो! पण्डित घर जाकर नित्य सोचा करता— राजा ऐसा क्यों कहता है कि

तुम पहले समझो ? वह व्यक्ति साधन-भजन किया करता था— क्रमश: उसे चैतन्य हुआ। तब उसने देखा कि हरिपादपद्म ही सार है और सब मिथ्या। संसार से विरक्त होकर निकल गया। बस किसी जन द्वारा राजा को इतना भर कहलवा दिया— राजा, अब मैं समझ गया हूँ।

''तो फिर क्या इनसे घृणा करता हूँ ? नहीं, तब ब्रह्मज्ञान लाता हूँ कि वे ही सब कुछ बने हुए हैं— सब ही नारायण हैं। सर्वयोनि ही मातृयोनि है, तब वेश्या और सतीलक्ष्मी में कोई प्रभेद नहीं देखता।''

(सब उड़द की दाल के खरीदार हैं— रूप और ऐश्वर्य के वश)

''क्या कहूँ, देख रहा हूँ, सब उड़द की दाल के ही खरीदार हैं। कामिनी-कांचन छोड़ना नहीं चाहते। लोग स्त्री के रूप पर भूल जाते हैं; रुपया-ऐश्वर्य देख लें तो भूल जाते हैं; किन्तु ईश्वर का रूपदर्शन कर लेने पर ब्रह्मपद भी तुच्छ हो जाता है।

''रावण को किसी ने कहा था, तुम हर रूप धर कर सीता के निकट जाते हो, रामरूप धरकर क्यों नहीं जाते ? रावण बोला, रामरूप हृदय में एक बार देख लेने पर रम्भा, तिलोत्तमा भी चिता की भस्म जैसी लगती हैं। ब्रह्मपद तुच्छ हो जाता है, परस्त्री की बात तो दूर की है।

''सब उड़द की दाल के खरीदार हैं। शुद्ध आधार बिना हुए ईश्वर में शुद्धा भक्ति नहीं होती— एक लक्ष्य नहीं होता, नाना दिशाओं में मन रहता है।''

(नेपाली लड़की, ईश्वर की दासी— संसारी का दासत्व)

(मनोमोहन के प्रति)— ''तुम गुस्सा करो या कुछ भी करो— राखाल से कहा था, ईश्वर के लिए गंगा में छलाँग लगाकर मर गया है, यह बात चाहे सुन लूँगा; किन्तु किसी का दासत्व कर रहा है, चाकरी कर रहा है, यह कथा जैसे न सुनूँ।

''नेपाल की एक लड़की आई थी। सुन्दर इसराज बजाकर गाना

किया था। हरिनाम गाया। किसी ने पूछा, 'तुम्हारा विवाह हुआ है?' वह बोली, 'और अब फिर किसकी दासी बनूँ? एक भगवान की दासी हूँ मैं।'

''कामिनी-कांचन के भीतर से कैसे होगा? अनासक्त होना बड़ा कठिन है। एक ओर स्त्री का दास, एक ओर पैसे का दास और एक तरफ मालिक का दास, उनकी नौकरी करनी पड़ती है।

''एक फकीर वन में कुटिया बनाकर रहता था। तब अकबर देहली का बादशाह था। उस फकीर के पास बहुत से लोग आते थे। अतिथि-सत्कार करने की उसकी इच्छा हुई। एक दिन उसने सोचा कि बिना रुपए-पैसे के कैसे अतिथि-सत्कार होगा? तो एक बार बादशाह अकबर के पास जाऊँ। उसका तो साधु-फकीरों के लिए द्वार खुला है। अकबर बादशाह तब नमाज पढ़ रहे थे, फकीर नमाज-घर में बैठ गया। उसने देखा अकबर बादशाह ने नमाज के अन्त में कहा, 'हे अल्लाह, धन दो, दौलत दो, और कितना-कुछ दो।' उसी समय फकीर उठकर नमाज-घर से जाने का प्रयत्न करने लगे। अकबर बादशाह ने इशारे से रुकने को कहा। नमाज समाप्त होने पर बादशाह ने पूछा— आप आकर बैठ गए, और फिर जाने लगे? फकीर ने कहा— वह आप के सुनने की बात नहीं है, मैं तो अब चलता हूँ। बादशाह के बहुत जिद्द करने पर फकीर बोले, मेरे पास वहाँ पर बहुत लोग आते हैं। तभी कुछ रुपए की प्रार्थना करने आया था। अकबर ने पूछा, तो फिर चले क्यों जा रहे थे? फकीर बोले, जब देखा कि तुम भी धन-दौलत के भिखारी हो, तब मन में सोचा कि भिखारी से माँग कर क्या होगा? माँगना ही होगा तो अल्लाह के पास से ही माँगूँगा।''

(पूर्वकथा— हृदय मुखर्जी की चीख-पुकार, ठाकुर की सत्त्वगुण की अवस्था)

नरेन्द्र— गिरीश घोष अब केवल यही सब चिन्तन करता है।

श्रीरामकृष्ण— यह बहुत अच्छा है। तब भी इतनी गाली-गलौच से मुख क्यों खराब करता है? मेरी वैसी अवस्था नहीं है। वज्र पड़ने पर घर का मोटा

सामान इतना नहीं हिलता, किन्तु शीशे खडर-खडर (घट्-घट्) करते हैं। मेरी वैसी अवस्था नहीं है। सत्त्वगुण की अवस्था में शोरगुल सहन नहीं होता। हृदय तभी चला गया; माँ ने नहीं रखा। अन्त के दिनों में बहुत बढ़ गया था। मुझे गालियाँ देता था। चीख-पुकार किया करता था।

(नरेन्द्र क्या अवतार कहता है ? नरेन्द्र, त्यागी की क्लास— नरेन्द्र का पितृ-वियोग)

''गिरीश घोष जो कहता है, तेरे साथ क्या मिलता है ?

नरेन्द्र— ''मैंने कुछ नहीं कहा, वे ही कहते हैं, उनका अवतार पर विश्वास है। मैंने और कुछ नहीं कहा।

श्रीरामकृष्ण— किन्तु खूब विश्वास है! देखा तूने ?

भक्तगण एकदृष्टि से देख रहे हैं। ठाकुर नीचे ही चटाई पर बैठे हुए हैं। निकट मास्टर, सम्मुख नरेन्द्र, चारों ओर भक्तगण।

ठाकुर चुपचाप नरेन्द्र को सस्नेह देख रहे हैं।

कुछ क्षण पश्चात् नरेन्द्र से बोले—

''बेटा, कामिनी-कांचन-त्याग बिना हुए नहीं होगा।''

कहते-कहते भावपूर्ण हो गए हैं। वही करुणापूर्ण सस्नेह दृष्टि है, उसके संग भावोन्मत्त होकर गाना गाने लगे—

कथा बोलते डराई, ना बोलले ओ डराई।
मने सन्ध होय पाछे तोमाधने हाराई हाराई।
आमरा जानि जे मन तोर, दिबो तोके, सेइ मन तोर,
एखन मन तोर; आमरा जे मंत्रे विपदेते तरि तराई॥

[भावार्थ— बात कहते भी डरता हूँ, न कहने से भी डरता हूँ। मन में भय हो रहा है कि कहीं पीछे तुम्हारे-जैसे धन को खो न बैठूँ। मैं जानता हूँ कि तुम्हारा जो मन्त्र है, वही तुम्हें दूँगा; हम ने तो जिस मन्त्र से विपद में नाव पार की है, वही मन्त्र तुम्हारा हुआ।]

श्रीरामकृष्ण को मानो भय है, शायद नरेन्द्र और किसी के हो गए हैं, मेरे

तो शायद नहीं हुए। नरेन्द्र अश्रुपूर्ण लोचनों से देख रहे हैं।

बाहिर के एक भक्त ठाकुर के दर्शनों को आए थे। वे भी निकट बैठे हुए समस्त देख-सुन रहे थे।

भक्त— महाशय, कामिनी-कांचन यदि त्याग करना होगा, तब तो फिर गृहस्थ क्या करेगा ?

श्रीरामकृष्ण— वह तुम करो ना! हमारी अपनी एक ऐसी ही बात हो गई।

(गृहस्थ भक्त के प्रति अभयदान और उत्तेजना)

महिमाचरण चुप करके बैठे हैं, मुख में कोई वाणी नहीं।

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— आगे बढ़ो! और आगे जाओ, चन्दनकाठ मिलेगी; और आगे जाओ, चाँदी की खान मिलेगी; और आगे बढ़ो, सोने की खान पाओगे; और आगे जाओ, हीरे-माणिक मिलेंगे। आगे बढ़ो!

महिमा— जी, खींचे रखता है— आगे बढ़ने नहीं देता!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— क्यों, लगाम काट डालो, उनके नाम के प्रभाव से काट डालो। काली के नाम से कालपाश कट जाते हैं।

नरेन्द्र को पितृवियोग के बाद गृहस्थ का बड़ा कष्ट मिल रहा है। उनके ऊपर बहुत मुसीबतें आ रही हैं। ठाकुर बीच-बीच में नरेन्द्र को देख रहे हैं। ठाकुर कहते हैं, तू क्या चिकित्सक बन गया है ?

''शतमारी भवेद्वैद्यः। सहस्रमारी चिकित्सकः।'' *(सब का हास्य)*।

ठाकुर क्या कह रहे हैं, नरेन्द्र का इसी वयस में बहुत अनुभव हो गया है— सुख-दु:ख के संग काफी परिचय हो गया है।

नरेन्द्र ईषत् हँसकर चुप किए रहे।

तृतीय परिच्छेद

(श्री श्री दोलयात्रा— श्रीरामकृष्ण का श्री राधाकान्त और माँ काली के तथा भक्तों के शरीरों पर अबीर देना)

नबाई चैतन्य गाना गा रहे हैं। भक्त सब बैठे हुए हैं। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हुए थे, हठात् उठ गए। घर के बाहिर गए। भक्त सब बैठे रहे, गाना चलने लगा।

मास्टर ठाकुर के साथ-साथ गए। ठाकुर पक्के आँगन में से काली-घर की ओर जा रहे हैं। पहले श्री राधाकान्त के मन्दिर में प्रवेश किया। भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। उनको प्रणाम करते देखकर मास्टर ने भी प्रणाम किया। देवता के सम्मुख थाल में अबीर था। आज श्री श्री दोलयात्रा (होली) है— ठाकुर श्रीरामकृष्ण उसे भूले नहीं। थाल से फाग लेकर श्री श्री राधाश्याम को दिया। और फिर दोबारा प्रणाम किया।

अब काली-मन्दिर में जा रहे हैं। प्रथम सात सीढ़ियाँ छोड़कर चौंतरे पर खड़े हो गए, माँ का दर्शन करके भीतर प्रवेश किया। माँ को अबीर दिया। प्रणाम करके काली-मन्दिर से लौट रहे हैं। काली-मन्दिर के चबूतरे पर खड़े होकर मास्टर से कह रहे हैं— बाबूराम को क्यों नहीं लाए?

ठाकुर फिर दोबारा पक्के आँगन से जा रहे हैं। संग में मास्टर और एकजन अबीर का थाल हाथ में लेकर आ रहे हैं। कमरे में प्रवेश करके सब छवियों को फाग दिया— दो-एक छवि छोड़— अपनी फोटोग्राफ और यीशुक्राइस्ट की छवि। अब बरामदे में आए। नरेन्द्र कमरे के प्रवेश-द्वार पर ही बरामदे में बैठे हैं। किसी-किसी भक्त के साथ बातें कर रहे हैं। ठाकुर ने नरेन्द्र के शरीर पर फाग दिया। घर में प्रवेश कर रहे हैं, मास्टर संग आ रहे हैं, उन्होंने भी अबीर-प्रसाद पाया।

कमरे में प्रवेश किया। जितने भक्त हैं, सब की देह पर अबीर दिया। सब ही प्रणाम करने लगे।

अपराह्ण हो गया है। भक्तगण इधर-उधर टहलने लगे। ठाकुर मास्टर के संग धीरे-धीरे बातें करते हैं। निकट कोई नहीं है। छोकरे भक्तों की बातें

कह रहे हैं। कहते हैं—

''अच्छा, सब ही कहते हैं, खूब ध्यान होता है, फिर पलटू का ध्यान क्यों नहीं होता ?''

''नरेन्द्र के विषय में तुम्हारी क्या राय है ? खूब सरल; तो भी संसार का बहुत धक्का पड़ा है, जभी कुछ दब गया है; वह नहीं रहेगा।''

ठाकुर बीच-बीच में बरामदे में उठ कर जाते हैं। नरेन्द्र किसी वेदान्तवादी के साथ विचार कर रहे हैं।

क्रमश: भक्तगण फिर दोबारा कमरे में एकत्रित हो रहे हैं। महिमा-चरण से स्तवपाठ करने को कहा। वे महानिर्वाण तन्त्र, तृतीय उल्लास से स्तव करते हैं— हृदयकमलमध्ये निर्विशेषं निरीहं,

हरिहरविधिवेद्यं योगिभिर्ध्यानगम्यम्।
जननमरण भीतिभ्रंशि सच्चित्स्वरूपम्,
सकलभुवनबीजं ब्रह्मचैतन्यमीड़े॥

[भावार्थ— हम निर्गुण, निरीह, ब्रह्मा, विष्णु, महेश के भी पूज्य, योगियों के लिए केवल ध्यान द्वारा गम्य, जन्म-मृत्यु-भय के नाशक, सत्-चित्-स्वरूप और समस्त ब्रह्माण्ड के बीज-स्वरूप ब्रह्मचैतन्य की हृदय-कमल में पूजा करते हैं।]

(गृहस्थ के प्रति अभय)

और भी दो-एक स्तवों के पश्चात् महिमाचरण शंकराचार्य का स्तव करते हैं, उसमें संसार-कूप की, गहन संसार की बातें हैं। महिमाचरण संसारी भक्त हैं।

हे चन्द्रचूड़ मदनान्तक शूलपाणे, स्थाणो गिरीश गिरिजेश महेश शम्भो।
भूतेश भीतिभयसूदन मामनाथं, संसारदु:खगहनाज्जगदीश रक्ष॥
हे पार्वती-हृदयवल्लभ चन्द्रमौले, भूताधिप प्रमथनाथ गिरीशजाप।
हे वामदेव भव रुद्र पिनाकपाणे, संसार-दु:ख-गहनाज्जगदीश रक्ष॥

—इत्यादि

[भावार्थ— चन्द्र से सुशोभित मस्तक वाले, कामदेव का भी अन्त कर डालने वाले तथा त्रिशूल धारण करने वाले, अचल, पर्वतराज हिमालय के भी ईश शम्भु, सभी प्राणियों के

स्वामी, आर्त्तों का भय नष्ट करने वाले मामनाथ, हे जगदीश, संसार के गहन दु:खों से हमारी रक्षा करो। हे पार्वती के हृदयवल्लभ चन्द्रमौलि, भूतेश, प्रमथनाथ, पार्वती के स्वामी, हे वामदेव, हे पिनाकपाणि जगदीश, संसार के गहन दु:खों से हमारी रक्षा करो।]

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— संसार कूप है, संसार गहन है, ऐसा क्यों कहते हो? वैसा प्रथम-प्रथम कहना चाहिए। उनको पकड़ लेने पर फिर भय क्या? तब— एइ संसार मजारकुटि।
आमि खाइ दाइ और मजा लुटि।
जनक राजा महातेजा तार किसे छिलो त्रुटि!
से जे एदिक ओदिक दुदिक रेखे खेये छिलो दुधेर बाटि!

(यह संसार मजे की कुटी है। मैं खाता-पीता हूँ और आनन्द लूटता हूँ। राजा जनक महातेजस्वी थे, उनसे कोई गलती नहीं हुई। वे इधर-उधर दोनों ओर की रक्षा करके दूध के कटोरे पिया करते थे।)

''भय क्या? उनको पकड़ लो। काँटावन ही चाहे हो। जूता पैर में पहन कर काँटावन में चले जाओ। किसका भय? जो धाई को छू लेता है, वह क्या फिर चोर बनता है?

''राजा जनक दो तलवारें चलाते थे। एक ज्ञान की, एक कर्म की। पक्के खिलाड़ी को कोई भय नहीं।''

इसी प्रकार ईश्वरीय बातें चलती हैं। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हुए हैं। खाट के निकट मास्टर बैठे हुए हैं।

ठाकुर *(मास्टर से)*— उसने जो कहा था, वही तो खींचे हुए है!

ठाकुर महिमाचरण की बातें करते हैं और उनके कहे हुए ब्रह्मज्ञान विषयक श्लोकों की बातें। नबाई चैतन्य और अन्य भक्त फिर दोबारा गाते हैं। अब की बार ठाकुर ने भी योगदान किया, और भाव में मग्न होकर संकीर्त्तन के मध्य नृत्य करने लगे।

कीर्त्तन के अन्त में ठाकुर कह रहे हैं—

''यही कार्य हुआ, और सब मिथ्या। प्रेम, भक्ति— 'वस्तु' और सब— 'अवस्तु'।''

चतुर्थ परिच्छेद

(होली के दिन श्रीरामकृष्ण— गुह्यकथा)

सन्ध्या हो गई। ठाकुर पंचवटी में गए हैं। मास्टर से विनोद की बात पूछ रहे हैं। विनोद मास्टर के स्कूल में पढ़ते हैं। विनोद को ईश्वर-चिन्तन करके कभी-कभी भावावस्था हो जाती है। जभी ठाकुर श्रीरामकृष्ण उनको प्यार करते हैं।

अब ठाकुर मास्टर के साथ बातें करते हुए कमरे की ओर लौट रहे हैं। बकुलतला के घाट के पास आकर बोले—

"अच्छा, यही जो कोई-कोई अवतार कहते हैं, तुम्हें कैसा बोध होता है?"

बातें करते-करते कमरे में आ गए। स्लीपर उतार कर छोटी खाट पर बैठ गए। खाट के पूर्व की ओर निकट ही एक पायदान है। मास्टर उसके ऊपर बैठकर बातें कर रहे हैं। ठाकुर वही बात फिर पूछते हैं। अन्य भक्तगण थोड़ी दूर बैठे हैं। वे ये सब बातें कुछ भी समझ नहीं सके थे।

श्रीरामकृष्ण— तुम क्या कहते हो?

मास्टर— जी, मुझे भी वैसा ही लगता है। जैसे चैतन्यदेव थे।

श्रीरामकृष्ण— पूर्ण, या अंश, या कला?— वजन बताओ ना?

मास्टर— जी, वजन तो नहीं समझ सकता। फिर भी (आप में) उनकी शक्ति अवतीर्ण हुई है। (आप में) वे तो हैं ही।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, चैतन्यदेव ने शक्ति माँगी थी।

ठाकुर कुछ क्षण चुप रहे। फिर बोले—

किन्तु षड्भुज?

मास्टर सोच रहे हैं, चैतन्यदेव षड्भुज हुए थे— भक्तों ने देखा था। पर ठाकुर ने इस बात का उल्लेख क्यों किया?

(पूर्वकथा— ठाकुर का माँ के निकट क्रन्दन— तर्क, विचार अच्छा नहीं लगता)

भक्तगण अदूर कमरे में बैठे हुए हैं। नरेन्द्र विचार कर रहे हैं। राम (दत्त) बीमारी से उठे हैं, वे भी नरेन्द्र के संग घोरतर तर्क कर रहे हैं। ठाकुर देख रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— मुझे ऐसा विचार अच्छा नहीं लगता। *(राम के प्रति)* — थमो! तुम एक तो अस्वस्थ हो!— अच्छा, धीरे-धीरे। *(मास्टर के प्रति)*— मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता। मैं रोता था और कहा करता था, 'माँ, यह कहता है ऐसे-ऐसे; वह कहता है और एक तरह से। कौन सत्य है, तू ही मुझे बता दे!'

चतुर्विंश खण्ड

श्रीरामकृष्ण का कलकत्ता के भक्त-मन्दिर में आगमन— श्रीयुक्त गिरीश घोष की बाटी में उत्सव

प्रथम परिच्छेद

बलराम के घर में अन्तरंगों के संग में ठाकुर श्रीरामकृष्ण

(नरेन्द्र, मास्टर, योगीन, बाबूराम, राम, भवनाथ, बलराम, चुनि)

शुक्रवार, वैशाख की शुक्ला दशमी, 24 अप्रैल, 1885 ईसवी। ठाकुर श्रीरामकृष्ण आज कलकत्ता आए हैं। मास्टर लगभग एक बजे बलराम के बैठकखाने में जाकर देखते हैं, ठाकुर निद्रित हैं। निकट दो-एक भक्त विश्राम कर रहे हैं।

मास्टर एक तरफ बैठ कर यही सुप्त बालक-मूर्ति देखते हैं। सोच रहे हैं, कैसा आश्चर्य! ये महापुरुष हैं, ये भी प्राकृत व्यक्ति की न्यायीं निद्रा में अभिभूत हुए लेटे हुए हैं। इन्होंने भी जीव का धर्म स्वीकार किया है।

मास्टर एक पंखा लेकर आहिस्ते-आहिस्ते हवा करते हैं। कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर श्रीरामकृष्ण की निद्रा भंग हो गई। अव्यवस्थित-से उठकर बैठ गए। मास्टर ने भूमिष्ठ होकर उनको प्रणाम किया और उनकी पदधूलि ग्रहण की।

(श्रीरामकृष्ण में प्रथम असुख का संचार— अप्रैल, 1885)

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर से सस्नेह)*— अच्छे हो? क्या पता भैय्या! मेरे गले में गुठली हुई है। अन्तिम रात को बड़ा कष्ट होता है। कैसे ठीक हो, भैय्या? *(चिन्तित होकर)*— आम की चटनी बनाई थी, थोड़ी-थोड़ी-सी खा ली थी।

(मास्टर के प्रति)— तुम्हारी स्त्री कैसी है? उस दिन कुछ बीमार देखा था; थोड़ा-थोड़ा ठण्डा कुछ देना।

मास्टर— जी, डाब इत्यादि?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, मिश्री का शरबत पिलाना अच्छा है।

मास्टर— मैं रविवार को घर चला गया था।

श्रीरामकृष्ण— खूब अच्छा किया। घर में रहने से तुम्हें सुविधा है। पिता आदि सब ही तो हैं, तुम्हें गृहस्थी का इतना नहीं देखना पड़ेगा।

बातें करते-करते ठाकुर का मुख सूखने लगा। तब बालक की न्यायीं मास्टर से पूछने लगे—

''मेरा मुख सूख रहा है। क्या सब का ही मुख सूख रहा है?''

मास्टर—योगीन बाबू, क्या तुम्हारा मुख सूख रहा है?

योगीन्द्र— नहीं; लगता है, इनको गर्मी हुई है।

एंड़ेदा के योगीन ठाकुर के अन्तरंग त्यागी भक्त हैं।

ठाकुर अव्यवस्थित-से हुए बैठे हैं। भक्त कोई-कोई हँस रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— जैसे स्तनपान करवाने बैठा हूँ। *(सब का हास्य)*। अच्छा, मुख सूख रहा है, नाशपाती खाऊँ कि जामरूल*?

बाबूराम— तो फिर मैं जाकर लाता हूँ— जामरूल।

श्रीरामकृष्ण— तुझे अब धूप में जाने की जरूरत नहीं।

मास्टर पंखा कर रहे थे।

श्रीरामकृष्ण— रहने दो, तुम बहुत देर से—

मास्टर— जी, कष्ट तो नहीं हो रहा।

---

* जामरूल = सफेद जूसी फल; लौकाट जैसा— star-apple.

श्रीरामकृष्ण *(सस्नेह)*— नहीं हो रहा?

मास्टर निकटवर्ती एक स्कूल में पढ़ाते हैं। वे एक बजे पढ़ाने से किंचित् अवसर पाकर आ गए थे। अब स्कूल जाने के लिए उठे और ठाकुर की चरणवन्दना की।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— अभी जाओगे?

कोई भक्त— स्कूल में अभी छुट्टी नहीं हुई। ये बीच में एक बार आ गए थे।

श्रीरामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— जैसे गृहिणी— सात-आठ बच्चे हो गए हैं— गृहस्थी का रात-दिन कार्य है— फिर इसी बीच कभी-कभी आ-आकर पति की सेवा कर जाती है। *(सब का हास्य)*।

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीयुक्त बलराम के घर अन्तरंगों के संग में)

चार के बाद स्कूल की छुट्टी हुई। मास्टर बलराम बाबू के बाहिर वाले कमरे में आकर देखते हैं, ठाकुर सहास्यवदन बैठे हुए हैं। संवाद पाकर एक-एक करके भक्त जमा हो रहे हैं। छोटे नरेन और राम आए हैं। नरेन्द्र आए हैं। मास्टर ने प्रणाम करके आसन ग्रहण किया। घर में से बलराम ने थाल में ठाकुर के लिए मोहनभोग भेजा है, क्योंकि ठाकुर के गले में बीज-सा हो गया है।

श्रीरामकृष्ण *(मोहनभोग देखकर, नरेन्द्र के प्रति)*— अरे, माल आया है, माल! माल! खा! खा! *(सब का हास्य)*।

क्रमशः समय बढ़ने लगा। ठाकुर गिरीश के घर जाएँगे। वहाँ पर आज उत्सव है। ठाकुर को लेकर गिरीश उत्सव करेंगे। ठाकुर बलराम के दोतले के कमरे से उतर रहे हैं। संग में मास्टर तथा पीछे और भी दो-एक भक्त हैं। ड्योढ़ी के निकट आकर देखते हैं, एक हिन्दुस्तानी भिखारी गाना गा रहा है। रामनाम सुनकर ठाकुर खड़े हो गए— दक्षिणास्य। देखते-देखते मन अन्तर्मुख हो रहा है। इसी प्रकार भाव में कुछ क्षण खड़े

रहे; मास्टर से कहते हैं, "सुन्दर सुर है।" किसी भक्त ने भिक्षुक को चार पैसे दिए।

ठाकुर ने बोसपाड़े की गली में प्रवेश किया। हँसते-हँसते मास्टर से बोले—

"हाँ जी, क्या कहते हैं ? 'परमहंस की फौज आ रही है ?' साले क्या कहते हैं ?" *(सब का हास्य)*।

तृतीय परिच्छेद

(अवतार और सिद्ध पुरुष का प्रभेद— महिमा और गिरीश का विचार)

भक्तों के संग ठाकुर ने गिरीश के बाहिर वाले कमरे में प्रवेश किया। गिरीश ने बहुत-से भक्तों को निमंत्रण किया था। उनमें से बहुत-से समवेत हो गए हैं। ठाकुर आए हैं, सुनकर सब खड़े रहे। ठाकुर ने सहास्यवदन आसन ग्रहण किया। भक्तगण भी सब बैठ गए। गिरीश, महिमाचरण, राम, भवनाथ इत्यादि अनेक भक्त बैठे हैं। इनको छोड़ ठाकुर के संग भी अनेक आए हैं— बाबूराम, योगीन, दोनों नरेन्द्र, चुनि, बलराम इत्यादि।

श्रीरामकृष्ण *(महिमाचरण के प्रति)*— गिरीश घोष से कहा था, तुम्हारा परिचय देते हुए, 'एक व्यक्ति है— गम्भीर; तुम्हारा तो घुटने-घुटने जल है।' तो तुम अब, वह जो मैंने कहा था, मिलाकर दिखा दो ना! तुम दोनों जने विचार करो, किन्तु रफा (फैसला) न कर देना। *(सब का हास्य)*।

महिमाचरण और गिरीश का विचार होने लगा। थोड़ा-सा आरम्भ होते न होते राम बोले—

'यह सब रहने दो— कीर्त्तन हो।'

श्रीरामकृष्ण *(राम के प्रति)*— ना, ना, इसके भी अनेक माने हैं। ये इंग्लिशमैन हैं। देखूँ, यह क्या कहते हैं।

महिमाचरण का मत— सब ही श्रीकृष्ण हो सकते हैं, साधन कर सकने पर ही हो सकता है।

गिरीश का मत है— श्रीकृष्ण अवतार हैं, मनुष्य हजार साधन करे, अवतार के जैसा नहीं हो सकता।

महिमाचरण— किस प्रकार है, जानते हो? जैसे बेल का वृक्ष आम का वृक्ष हो सकता है यदि प्रतिबन्धक रास्ते से हट जाए। योग की प्रक्रिया द्वारा प्रतिबन्धक हट जाता है।

गिरीश— महाशय, आप जो कुछ भी कहें, योग की प्रक्रिया ही कहें और जो कुछ भी कहें, वैसा तो हो ही नहीं सकता। कृष्ण ही कृष्ण हो सकते हैं। यदि वे सब भाव मन में करके राधा का भाव भीतर में रहता है, तो वह व्यक्ति वह ही है; अर्थात् वह व्यक्ति राधा स्वयं है। श्रीकृष्ण का समस्त भाव यदि किसी के भीतर देखता हूँ, तब समझना होगा, मैं श्रीकृष्ण को ही देख रहा हूँ।

महिमाचरण विचार को अधिक दूर नहीं ले जा सके। अन्त में एक प्रकार से गिरीश की बात ही मान लेनी पड़ी।

महिमाचरण *(गिरीश के प्रति)*— हाँ, महाशय, दोनों ही सत्य हैं। ज्ञानपथ— वह भी उनकी इच्छा; और फिर प्रेम-भक्ति भी उनकी इच्छा। ये *(श्रीरामकृष्ण)* जैसे कहते हैं, भिन्न पथों द्वारा एक जगह पर ही पहुँचा जाता है।

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति, एकान्त में)*— क्यों, उसने ठीक कहा ना?

महिमा— जी, ये जो कहते हैं, ठीक है। दोनों ही सत्य हैं।

श्रीरामकृष्ण— आप ने देख लिया, उसका (गिरीश का) कैसा विश्वास है! जल पीना तक भी भूल गया। आप यदि न मानते तो यह आपका गला फाड़ कर खा जाता, जैसे कुत्ता मांस खाता है। यह अच्छा हुआ। दोनों जनों का परिचय हो गया, और मुझे भी बहुत-सा पता लग गया।

चतुर्थ परिच्छेद

(ठाकुर कीर्त्तनानन्द में)

कीर्त्तनिया दलबल सहित उपस्थित है। कमरे के बीच में बैठा है। ठाकुर का इंगित होते ही कीर्त्तन आरम्भ होगा। ठाकुर ने अनुमति दी।

राम *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— आप बतलाएँ, ये क्या गाएँ?

श्रीरामकृष्ण — मैं क्या बतलाऊँ?— *(तनिक सोच कर)* अच्छा, अनुराग।

कीर्त्तनिये पूर्वराग गाते हैं—

आरे मोर गोरा द्विजमणि।
राधा राधा बलि कान्दे, लोटाय धरणी॥

राधा नाम जपे गोरा परम यतने।
सुरधनी धारा बहे अरुण नयने॥

क्षणे क्षणे गोरा अंग भूमे गड़ि जाय।
राधानाम बोलि क्षणे क्षणे मूरछाय॥

पुलके पुरलो तनु गद गद बोल।
बासु कहे गोरा केनो अतो उतरोल॥

[भावार्थ— ओ मेरा गौर ब्राह्मण-श्रेष्ठ है। राधा-राधा कहकर क्रन्दन करता है और धरती पर लोट-पोट हो रहा है। गौरांग राधानाम परम प्यार से जप रहा है। अरुण नेत्रों से गंगा जी बह रही हैं। क्षण-क्षण पश्चात् गौरा अपने शरीर को भूमि में लोटा रहा है। क्षण-क्षण में राधानाम कहकर मूर्छित हो रहा है। शरीर उनका गद्‌गद् होकर बोलने के कारण रोमांच द्वारा भर गया है। वासुदेव कहते हैं, गौर क्यों इतने व्याकुल हैं?]

कीर्त्तन चलने लगा। यमुना के तट पर प्रथम कृष्णदर्शन होने के समय से श्रीमती की अवस्था सखियाँ कहती हैं—

घरेर बाहिरे दण्डे शतबार, तिले तिले आइसे जाय।
मन उचाटन निःश्वास सघन, कदम्ब कानने चाय॥

(राइ एमन केने वा होइलो)।
गुरु दुरु जन, भय नाहि मन, कोथा वा कि देबो पाइलो॥

सदाइ चंचल, बसन अंचल, सम्वरण नाहि करे।
बसि बसि थाकि, उठये चमकि, भूषण खसिया पड़े॥

वयसे किशोरी, राजार कुमारी, ताहे कुलवधु बाला।
किवा अभिलाषे, आछये लालसे, ना बुझि ताहार छला॥
ताहार चरिते, हेनो बुझि चिते, हात बाडाइलो चान्दे।
चण्डीदास कय, करि अनुनय, ठेकेछे कालिया फान्दे॥

[भावार्थ— घर के बाहिर सैंकड़ों बार खड़ी होती हैं, क्षण-क्षण में आती-जाती हैं। मन उचाट हो रहा है और गहरे श्वास-प्रश्वास लेती हुई कदम्ब-कानन की ओर देख रही हैं। (राधा ऐसी क्यों हो गईं हैं!) बड़ों का और दुष्टों का भी मन में भय नहीं है, या इन्हें कहीं से कोई देवता मिल गया है? सदा ही चंचल हैं, वस्त्र और आँचल को सम्भाल नहीं पा रहीं। बैठी-बैठी रहती हैं, और चौंक-चौंक कर उठती हैं, जेवर गिर पड़ता है। ये राजकुमारी आयु में किशोरी और फिर कुलवधु हैं। क्या अभिलाषा और लालसा है, उनकी छलना समझ में नहीं आ रही। ऐसा लगता है कि वे चाँद की ओर हाथ बढ़ा रही हैं। चण्डीदास अनुनय-विनय करके कहते हैं कि वे काले कन्हाई के फन्दे में आ गई हैं।]

कीर्त्तन चलने लगा। श्रीमती से सखियाँ कहती हैं—

कहो कहो सुबदनी राधे! कि तोर होइलो वियाधे॥
केनो तोरे आनमन देखि। काहे नखे क्षिति तले लिखि॥
हेमकान्ति झामर होइलो। रांगावास खसिया पड़िलो॥
आंखियुग अरुण होइलो। मुखपद्म शुकाइया गेलो॥
एमन होइलो कि लागिया। ना कहिले फाटि जाय हिया॥
एतो शुनि कहे धनि राइ। श्रीयदुनन्दन मुख चाइ॥

[भावार्थ— हे सुमुखी राधे, बताओ ना! तुम्हें क्या रोग हुआ है? तुम्हें मैं क्यों अनमना देख रही हूँ? क्यों तुम धरती पर पैर के नाखून से लिख रही हो? सुवर्ण कान्ति पीली पड़ गई है। श्रृंगार सब झड़ गया है। नेत्र दोनों लाल हो गए हैं। मुख-कमल सूख गया है। ऐसा, हे सखी! क्यों हुआ? तुम नहीं बताओगी तो हृदय फट जाएगा। इतना सुनकर राधा रानी बोली, श्रीयदुनन्दन का मुख देखना चाहती हूँ।]

कीर्त्तनिये ने फिर गाया— श्रीमती बंसीध्वनि सुनकर पागल की न्यायीं हो रही हैं। सखियों से श्रीमती की उक्ति—

कदम्बेर बने, थाके कोन् जने, केमने शबद् आसि।
एकि आचम्बिते, श्रवणेर पथे, मरमे रहलो पशि॥
सान्धाये मरमे, घुचाया धरमे, करिलो पागलि पारा।
चित्त स्थिर नहे, शोयास बारहे, नयने बहये धारा॥
कि जानि केमन, सेइ कोन जन, एमन शबद करे।
ना देखि ताहारे, हृदय बिदरे, रहिते ना पारि घरे॥
पराण ना धरे, कन कन करे, रहे दरशन आसे।
जबहुं देखिबे, पराण पाइबे, कहये उद्धव दासे॥

[भावार्थ— हे सखि! कदम्ब के वन में कौन रहता है, कैसा यह शब्द आ रहा है? यह कैसे एकाएक कानों के द्वारा मेरे हृदय में प्रवेश कर गया है? इसने हृदय में प्रवेश करके मेरे कर्त्तव्य को खत्म करके मुझे पागल-जैसा बना दिया है। चित्त अस्थिर हो गया है और श्वास निकल-सा रहा है, नयनों से अश्रुधारा बहती है। क्या पता वह कौन है जो ऐसा शब्द कर रहा है? उसको बिना देखे हृदय विदीर्ण हो रहा है और मैं घर में नहीं रह सकती। प्राण टिकता नहीं है, छटपट कर रहा है, यह उसके दर्शन की आस में है। दास उद्धव कहते हैं, जब उसे देख लूँगी तब जान में जान आएगी।]

गाना चलने लगा। श्रीमती का कृष्णदर्शन के लिए प्राण व्याकुल हो गया है। श्रीमती कहती हैं—

पहले शुनिनु, अपरूप ध्वनि, कदम्ब कानन हैइते।
तारपर दिने, भाटेर वर्णने, शुनि चमकित चिते।
आर एकदिन, मोर प्राण-सखी कहिले जाहार नाम,
(आहा सकल माधुर्यमय कृष्ण नाम।)
गुणिगण गाने, शुनिनु श्रवणे, ताहार ए गुणग्राम॥

सहजे अबला, ताहे कुलबाला, गुरुजन ज्वाला घरे।
से हेन नागरे, आरति बाढ़ये केमने प्राण धरे॥

भाबिया चिन्तिया, मने दढ़ाइनु, पराण रहिबार नय।
कहत उपाय कैछे मिलये, दास उद्धवे कय॥

[भावार्थ— पहले अपरूपध्वनि कदम्ब-कानन से आती हुई सुनी। उसके दूसरे दिन भाट का वर्णन सुनकर चित्त चौंक उठा और एक दिन ऐ मेरी प्राण-सखी! तुमने जिसका नाम कहा, आहा वह सब से माधुर्यमय कृष्ण नाम है। गुणियों के गानों में उनका गुणगान सुना। मैं तो साधारण अबला, उस पर कुलबाला, फिर घर में गुरुजनों की यन्त्रणा! वह ऐसा प्रेमी है कि उससे प्रेम बढ़ता ही है तो फिर प्राण कैसे रखा जाए? सोच-विचार करके मन में यही दृढ़ निश्चय हो रहा है कि प्राण अब नहीं रहेगा। दास उद्धव कहता है कि कोई उस प्रेमी को मिलने का उपाय बता दे।]

'आहा सकल माधुर्यमय कृष्णनाम!' यह बात सुनकर ठाकुर फिर बैठ नहीं सके। एकदम बेहोश हो गए— समाधिस्थ! दायीं ओर छोटे नरेन खड़े हैं। तनिक-सा प्रकृतिस्थ होने पर मधुर कण्ठ से 'कृष्ण-कृष्ण'— यही वाणी साश्रुनयनों से कह रहे हैं। धीरे-धीरे फिर आसन ग्रहण किया।

कीर्त्तनिये फिर गा रहे हैं। विशाखा ने दौड़ के लाकर एक चित्रपट

श्रीमती के सम्मुख रख दिया। चित्रपट में वही भुवनरंजन रूप है। श्रीमती पटदर्शन करके बोली, इस पट में जिनको देख रही हूँ, उनको यमुनातट पर देखने के समय से मेरी ऐसाी दशा हो रही है।

कीर्त्तन— श्रीमती की उक्ति

जे देखिछि यमुनातटे। सेइ देखि एइ चित्रपटे॥
जार नाम कहिलो विशाखा। सेइ एइ पटे आछे लेखा॥
जाहार मुरलीध्वनि। सेइ वटे एइ रसिकमणि॥
आधमुखे जार गुण गाँथा। दुतीमुखे शुनि जार कथा॥
एइ मोर हरियाछे प्राण। इहा बिने केहो नहे आन॥
एतो कहि मुरछि पड़ये। सखीगण धरिया तोलये॥
पुनः कहे पाइया चेतने। कि देखिनु देखाओ से जने॥
सखीगण करये आश्वास। भणे घनश्याम दास॥

[भावार्थ— जिसे यमुनातट पर देखा है, वही इस चित्रपट में भी देख रही हूँ। विशाखा ने जिसका नाम कहा है, वही इस पट पर लिखा हुआ है। जिसकी मुरली-ध्वनि होती है, यह निश्चय ही वही रसिकमणि है। आधे-आधे मुख से (प्रेमपूर्ण भाव से) जिसकी गुण-गाथा दूती के मुख से सुनी है, उसने ही मेरा प्राण हरण कर लिया है। उसके बिना अब मेरा कोई और नहीं है। इतना कहते ही मूर्छित होकर गिर गई। सखियों ने पकड़ कर उठाया। पुनः चेतना आने पर कहती हैं— जो देखा है, अभी उसी जन को दिखाओ। सखियाँ आश्वासन देती हैं।]

ठाकुर फिर दोबारा उठे, नरेन्द्रादि सांगोपांग को लेकर संकीर्त्तन करते हैं—

(1) जादेर हरि बोलते नयन झरे तारा तारा दुभाई एसेछे रे।
(जारा आपनि केंदे जगत काँदाय) (जारा मार खेये प्रेम याचे)
(जारा ब्रजेर कानाई बलाई) (जारा ब्रजेर माखन चोर)
(जारा जातिर विचार नाहिं करे) (जारा आपामरे कोल देय)
(जारा आपनि मेते जगत माताय) (जारा हरि होय हरि बोले)।
(जारा जगाई माधाई उद्धारिलो) (जारा आपन पर नाहि बाचे)।
जीव तराते तारा दुभाई एसेछे रे। (निताई गौर)।

[भावार्थ— जिनके हरि कहते-कहते दोनों नयन झरते हैं, वे दो भाई आए हैं। जो स्वयं रोकर जगत को रुलाते हैं, जो मार खाकर भी प्रेम माँगते हैं, जो ब्रज के कान्हाई-बलाई हैं, जो ब्रज के माखनचोर हैं, जो जाति का विचार नहीं करते, जो अधम तक को आलिंगन

करते हैं, जो स्वयं मतवाले होकर जगत को मतवाला बनाते हैं, जो स्वयं हरि होकर हरि बोलते हैं, जिन्होंने जगाई-मधाई का उद्धार किया है, जो अपना-पराया नहीं देखते, जीवों का उद्धार करने वे दो भाई आए हैं— निताई, गौर आए हैं।]

(2) नदे टलमल-टलमल करे, गौर प्रेमेर हिल्लोले रे।

[भावार्थ— गौर के प्रेम की हिल्लोल नें नदिया सारा डगमगा रहा है।]

ठाकुर फिर दोबारा समाधिस्थ!

भाव का उपशम होने पर फिर आसन ग्रहण किया।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— किस ओर मुख करके बैठा हुआ था, अब स्मरण नहीं है।

पंचम परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्र— हाजरा की बातें— छलरूपी नारायण)

ठाकुर भाव-उपशम हो जाने पर भक्तों के संग बातें कर रहे हैं।

नरेन्द्र *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— हाजरा अब अच्छा हो गया है।

श्रीरामकृष्ण— तू जानता नहीं, ऐसे लोग हैं, बगल में ईंट, मुख में राम-राम कहते हैं। (बगल में छुरी, मुँह में राम-राम)।

नरेन्द्र— जी नहीं, सब पूछा है मैंने, तो वह कहता है 'नहीं'।

श्रीरामकृष्ण— उसकी निष्ठा है, थोड़ा जप-टप करता है। किन्तु ऐसा है— गाड़ी वाले को भाड़ा नहीं देता!

नरेन्द्र— जी नहीं, वह कहता है कि 'दिया था'—

श्रीरामकृष्ण— कहाँ से देगा?

नरेन्द्र— रामलाल आदि से लेकर दिया था, शायद।

श्रीरामकृष्ण— तूने क्या सब बातें पूछी थीं?

"माँ से प्रार्थना की थी— माँ, हाजरा में यदि छल है तो यहाँ से हटा दो। उसको वही बात कह दी थी। वह कुछ दिन बाद आकर कहने लगा,

'देखा, मैं तो अभी भी यहाँ पर ही रह रहा हूँ।' *(ठाकुर और सब का हास्य)*। किन्तु उसके पश्चात् चला गया।

''हाजरा की माँ ने रामलाल द्वारा कहलवाया था, 'हाजरा को रामलाल के चाचा जी, एक बार जैसे भी हो, भेज दें। मैं रो-रो कर आँखों से देख भी नहीं पाती हूँ।' मैंने हाजरा को बहुत समझाया, 'बूढ़ी माँ है, एक बार जाकर मिल आ।' वह किसी तरह से भी नहीं गया। उसकी माँ अन्त में रो-रो कर मर गई।''

नरेन्द्र— अब की बार गाँव जाएगा।

श्रीरामकृष्ण— अब गाँव जाएगा, ढ़यामना शाला (नीच शाला)! दुर! दुर! तू समझता नहीं। गोपाल ने कहा था, सींथी में हाजरा कई दिन था, वे चावल-घी सब सामान देते। तब कहता, 'यह घी, यह चावल क्या मैं खाता हूँ?' भाटपाड़ा के ईशान के साथ गया था। ईशान को अपितु बाह्य के लिए जल लाने के लिए कहता था। इससे ब्राह्मण नाराज हो गए।

नरेन्द्र— पूछा था, तो वह बोला, ईशान बाबू स्वयं आगे बढ़े थे, लाने के लिए। और भाटपाड़ा के अनेक ब्राह्मणों के पास मान भी मिला था उसे।

श्रीरामकृष्ण *(हँसते-हँसते)*— बस, जप-तप का ही यह थोड़ा-सा फल है।

''और कैसा है, जानते हो? शरीर के अनेक लक्षण भी हैं। बौना, शरीर में जगह-जगह गड्ढ़े— अच्छे लक्षण नहीं हैं। ऐसों को बहुत देर में ज्ञान होता है।

भवनाथ— रहने दें, रहने दें महाराज, ऐसी बातें।

श्रीरामकृष्ण— ना, यह बात नहीं। *(नरेन्द्र के प्रति)* तू कहता है कि तू लोग पहचानता है, तभी तुझ से कहता हूँ। मैं हाजरा इत्यादि को कैसा समझता हूँ? मैं समझता हूँ, जैसे साधुरूपी नारायण हैं, वैसे ही छलरूपी नारायण हैं, लुच्चारूपी नारायण हैं! *(महिमाचरण के प्रति)*— क्यों जी, क्या कहते हो? सब ही नारायण?

महिमाचरण— जी, सब ही नारायण।

षष्ठ परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और गोपी-प्रेम)

गिरीश *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— महाशय, एकांगी प्रेम किसे कहते हैं ?

श्रीरामकृष्ण— एकांगी अर्थात्, एक ओर से प्यार। जैसे जल हंस को नहीं चाहता, किन्तु हंस जल को प्यार करता है। और फिर हैं, साधारणी, समंजसा और समर्था। साधारणी प्रेम— अपना सुख चाहता है, तुम सुखी हो चाहे न हो, जैसे चन्द्रावली का भाव।

"और फिर समंजसा— मेरा भी सुख हो, तेरा भी सुख हो। यह बड़ी अच्छी अवस्था है।

"सब से उच्च अवस्था है— समर्था। जैसे श्रीमती की। कृष्ण-सुख में सुखी— तुम सुख से रहो, मेरा जो भी हो।

"गोपियों का यह भाव बड़ा उच्च भाव है।

"गोपियाँ कौन हैं, जानते हो ? रामचन्द्र जब वन-वन-भ्रमण करते थे तब छह हजार ऋषि बैठे हुए थे और राम ने उनकी ओर एक बार सस्नेह देखा था। वे रामचन्द्र को देखने के लिए व्याकुल हो गए थे। किसी-किसी पुराण में है, वे ही गोपी हैं।"

कोई भक्त— महाशय! अन्तरंग किसे कहते हैं ?

श्रीरामकृष्ण— कैसे है, जानते हो ? जैसे नाटमन्दिर के भीतर के स्तम्भ और बाहिर के स्तम्भ। जो सर्वदा ही निकट रहते हैं, वे ही अन्तरंग हैं।

(ज्ञानयोग और भक्तियोग-समन्वय— भरद्वाजादि और राम— पूर्वकथा— अपूर्वदर्शन— साकार-त्याग— श्री श्री माँ दक्षिणेश्वर में)

श्रीरामकृष्ण *(महिमाचरण के प्रति)*— किन्तु, ज्ञानी रूप भी नहीं चाहता, अवतार भी नहीं चाहता। रामचन्द्र वन में जाते-जाते बहुत-से ऋषियों को मिले। उन्होंने राम को खूब आदर से आश्रम में बिठाया। वे ऋषि बोले—

राम, तुम्हें आज हमने देख लिया, हमारा सब सफल हो गया है। किन्तु हम तुम्हें दशरथ का बेटा मानते हैं। भरद्वाजादि तुम्हें अवतार कहते हैं, हम तो किन्तु वह नहीं कहते, हम तो उसी अखण्ड सच्चिदानन्द का चिन्तन करते हैं। राम प्रसन्न होकर हँसने लगे।

"ओह, मेरी कैसी अवस्था गई थी! मन अखण्ड में लीन हो जाता! ऐसे कितने ही दिन! सब भक्ति-भक्त त्याग कर दिए! जड़ हो गया! देखा— सिर निराकार, प्राण जाय-जाय! रामलाल की चाची को बुलाऊँ, सोचा।

"कमरे में जो छवि आदि थीं, सब हटाने के लिए कहा। और फिर जब होश आई, तब मन नीचे आने के समय प्राण छटपट करने लगा। अन्त में विचार किया, तो फिर क्या लेकर रहूँगा? तब भक्ति-भक्त के ऊपर मन आया।

"तब लोगों से पूछता फिरा कि यह मुझे क्या हो गया है? भोलानाथ[1] ने बताया कि महाभारत में है— समाधिस्थ व्यक्ति जब समाधि से लौटेगा, तब क्या लेकर रहेगा? इसलिए भक्ति-भक्त चाहिए ही। वैसा न हो तो मन कहाँ खड़ा होगा?"

सप्तम परिच्छेद

(समाधिस्थ क्या लौटता है?— श्रीमुख-कथित चरितामृत— कुँवर सिंह[2])

महिमाचरण *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— महाशय, समाधिस्थ क्या लौट सकता है?

श्रीरामकृष्ण *(महिमा के प्रति)*— तुम्हें अकेले में बताऊँगा; तुम ही यह बात

---

1 भोलानाथ मुखोपाध्याय तब रासमणि की ठाकुरबाड़ी के मुहर्रिर थे, बाद में खजांची हो गए थे।

2 कुँवर सिंह— सिपाहियों का हवलदार।

सुनने के उपयुक्त हो।

"कुँवर सिंह भी यही बात पूछता था। जीव और ईश्वर में बहुत अन्तर है। साधन-भजन करके जीव की समाधि तक हो सकती है। ईश्वर जब अवतीर्ण होते हैं, तब समाधिस्थ होकर भी लौट सकते हैं। जीव की श्रेणी तो है— मानो राजा के कर्मचारी। राजा के घर के बाहिर तक ही इनका यातायात होता है। राजा के महल के सात तल हैं, किन्तु राजा का लड़का सातों तलों पर आना-जाना कर सकता है, और फिर बाहिर भी आ सकता है। लौटता नहीं, लौटता नहीं, सब यही कहते हैं। तो फिर शंकराचार्य आदि— ये सब क्या हैं? इन्होंने 'विद्या का मैं' रखा हुआ था।"

महिमाचरण— तभी तो; वैसा न हो तो ग्रन्थ कैसे लिखे?

श्रीरामकृष्ण— और फिर देखो, प्रह्लाद, नारद, हनुमान— इन्होंने भी समाधि के पश्चात् भक्ति रखी थी।

महिमाचरण— जी, हाँ।

(केवल ज्ञान वा ज्ञानचर्चा— और समाधि के पश्चात् ज्ञान— 'विद्या का मैं')

श्रीरामकृष्ण—कोई-कोई ज्ञानचर्चा करते हुए सोचता है कि मैं न जाने क्या हो गया हूँ। शायद थोड़ा-सा वेदान्त पढ़ा है। किन्तु ठीक ज्ञान हो जाने पर अहंकार नहीं होता। अर्थात् यदि समाधि होती है, और मनुष्य उनके संग एक हो जाता है, तो फिर अहंकार नहीं रहता। समाधि बिना हुए ठीक ज्ञान नहीं होता। समाधि होने पर उनके संग एक हो जाता है। फिर अहं नहीं रहता।

"कैसा होता है, जानते हो? ठीक दोपहर के समय सूर्य ठीक सिर के ऊपर चढ़ जाता है। तब मनुष्य चारों ओर देखता है, फिर छाया नहीं होती। जभी तो ठीक ज्ञान हो जाने पर, समाधिस्थ हो जाने पर, अहंरूप छाया नहीं रहती।

"ठीक ज्ञान हो जाने पर यदि अहं रहता है, तब जानो, 'विद्या का मैं', 'भक्ति का मैं', 'दास-मैं' है। वह 'अविद्या का मैं' नहीं होता।

"और फिर ज्ञान-भक्ति दोनों ही पथ हैं— जिस पथ द्वारा भी जाओ,

उनको ही पाओगे। ज्ञानी एक भाव से उनको देखता है, भक्त और एक भाव से उनको देखता है। ज्ञानी का ईश्वर तेजोमय, भक्त का रसमय।''

(श्रीरामकृष्ण और मार्कण्डेय— चण्डीवर्णित असुरविनाश का अर्थ)

भवनाथ पास बैठे समस्त सुन रहे हैं। भवनाथ नरेन्द्र के अति अनुगत हैं और प्रथम-प्रथम ब्राह्मसमाज में सर्वदा जाया करते थे।

भवनाथ *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— मुझे एक बात पूछनी है। मुझे 'चण्डी' समझ में नहीं आती। 'चण्डी' में लिखा है कि वे सब को टक-टक मार रही हैं। इसका क्या अर्थ है?

श्रीरामकृष्ण— वह सब लीला है। मैं भी यही बात सोचा करता था। फिर देखा, सब ही माया है। उनकी सृष्टि भी माया है, उनका संहार भी माया है।

घर के पश्चिम की ओर की छत पर पत्तलें पड़ गई हैं। अब गिरीश ठाकुर को और भक्तों को बुला कर ले गए। वैशाख शुक्ला दशमी। जगत हँस रहा है। छत चन्द्रकिरणों से प्लावित है। इधर ठाकुर श्रीरामकृष्ण को सम्मुख रखकर भक्तगण प्रसाद पाने बैठे हैं। सब ही आनन्दपूर्ण हैं।

ठाकुर 'नरेन्द्र-नरेन्द्र' करते हुए पागल हैं। नरेन्द्र सम्मुख की पंक्ति में अन्यान्य भक्तों के संग बैठे हुए हैं। बीच-बीच में ठाकुर नरेन्द्र की खबर ले रहे हैं। अर्धेक खाना होने से पहले ही ठाकुर हठात् नरेन्द्र के निकट अपनी पत्तल में से दही और तरबूज का शरबत ले उपस्थित हुए। बोले,''नरेन्द्र तू इतना-सा खा ले।'' ठाकुर बालक की न्यायीं फिर दोबारा भोजन के आसन पर जाकर बैठ गए।

श्यामपुकुर का मकान

पंचविंश खण्ड

श्यामपुकुर में भक्तों के संग ठाकुर श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(डॉक्टर और मास्टर— सार क्या ?)

आज बृहस्पतिवार, आश्विन कृष्णा षष्ठी, 29 अक्तूबर, 1885 ईसवी। समय दस। ठाकुर पीड़ित। कलकत्ता के अन्तर्गत श्यामपुकुर में रह रहे हैं। डॉक्टर उनकी चिकित्सा कर रहे हैं। उनका घर शांखारिटोला में है। डॉक्टर के संग उनके यहाँ ठाकुर श्रीरामकृष्ण के एक सेवक बातें कर रहे हैं। ठाकुर नित्य कैसे रहते हैं, यह संवाद लेकर उन्हें प्रतिदिन आना होता है।

डॉक्टर— देखो, डॉक्टर बिहारी भादुड़ी की एक बात है। कहता है, Goethe's spirit (गेटे का सूक्ष्म शरीर) निकल गया, और फिर भी Goethe (गेटे) उसे देख रहा है! कैसी आश्चर्य की बात!

मास्टर— परमहंसदेव कहते हैं, ऐसी बातों से हमें क्या प्रयोजन ? हम पृथ्वी पर आए हैं, ताकि ईश्वर के पादपद्मों में भक्ति हो जाए। वे कहते हैं, कोई जन बाग में आम खाने गया था। वह एक कागज और पेंसिल लेकर कितने वृक्ष, कितनी डालियाँ, कितने पत्ते हैं— गिन-गिन कर लिखने लगा। बाग के किसी व्यक्ति के साथ उसकी भेंट हुई। उस आदमी ने पूछा— तुम क्या कर रहे हो ?— और यहाँ पर आए ही फिर क्यों हो ? तब वह व्यक्ति बोला कि

यहाँ पर कितने पेड़ हैं, कितनी डालें, कितने पत्ते— यही गिन रहा हूँ। यहाँ पर आम खाने आया हूँ। बाग वाले व्यक्ति ने कहा, आम खाने आए हो तो आम खाओ, तुम्हें इतने कुछ से— कितने पत्ते, कितनी डालें इत्यादि से क्या मतलब?

डॉक्टर— परमहंस ने सार ही लिया है, यही पता लगता है।

इसके बाद डॉक्टर ने अपने होमियोपैथिक हस्पताल के सम्बन्ध में अनेक बातें कीं— कितने रोगी नित्य आते हैं? उनकी तालिका भी दिखाई; बताया कि डॉक्टर सालजार तथा अन्य अनेक डॉक्टरों ने प्रथम उन्हें निरुत्साहित किया था। उन्होंने कई मासिक पत्रिकाओं में भी उनके विरुद्ध लिखा था,... इत्यादि।

डॉक्टर गाड़ी में बैठे, मास्टर भी संग में बैठ गए। डॉक्टर नाना रोगियों को देखते हुए चलने लगे। प्रथम चोरबागान, फिर माथाघसा गली, तब फिर पाथुरियाघाट। सब रोगियों को देखने पर ठाकुर श्रीरामकृष्ण को देखने जाएँगे। डॉक्टर पाथुरियाघाट के ठाकुरों (टैगोरों) के एक घर में गए। वहाँ पर कुछ विलम्ब हो गया। गाड़ी में लौट कर फिर दोबारा बातें करने लगे।

डॉक्टर— इस बाबू के साथ परमहंस की बात हुई। थियोसोफी की बात— कर्नल अलकट की बातें हुईं। परमहंस उस बाबू के ऊपर नाराज हैं। क्यों हैं, जानते हो? यह कहता है, मैं सब जानता हूँ।

मास्टर— नहीं, नाराज क्यों होंगे? फिर भी सुना है कि एक बार मिले थे। तब परमहंसदेव ईश्वर की बातें कह रहे थे। तब इन्होंने शायद कह दिया था, 'हाँ, वह सब जानता हूँ'।

डॉक्टर— इस बाबू ने साइन्स एसोसिएशन को 32,500 रुपया दिया है।

गाड़ी चलने लगी। बड़े बाजार से होकर लौट रही है। डॉक्टर ठाकुर की सेवा के सम्बन्ध में बातें करने लगे।

डॉक्टर— तुम लोगों की इच्छा क्या इन्हें दक्षिणेश्वर भेजने की है?

मास्टर— नहीं, उससे भक्तों को बड़ी असुविधा है। कलकत्ता में रहने से सर्वदा आना-जाना होता रहता है— देखा जा सकता है।

डॉक्टर— इसमें तो बड़ा खर्च होता है।

मास्टर— भक्तों को उसके लिए कोई कष्ट नहीं है। वे जैसे भी सेवा कर सकें; यही चेष्टा कर रहे हैं। खर्च तो यहाँ पर भी है, वहाँ पर भी है। वहाँ पर जाने से सर्वदा देखभाल नहीं कर सकेंगे, यही चिन्ता है।

द्वितीय परिच्छेद

डॉक्टर सरकार, भादुड़ी प्रभृति के संग में श्रीरामकृष्ण

(डॉक्टर सरकार, भादुड़ी, दोकड़ि, छोटे नरेन, मास्टर, श्यामबसु)

डॉक्टर और मास्टर श्यामपुकुर में आकर एक दोतले के घर में पहुँचे। उसी गृह के ऊपर बाहिर के बरामदे में दो बड़े कमरे हैं— एक पूर्व-पश्चिम में और दूसरा उत्तर-दक्षिण में। उसमें से पहले वाले कमरे में जाकर देखते हैं, ठाकुर श्रीरामकृष्ण बैठे हुए हैं। ठाकुर सहास्य हैं। निकट डॉक्टर भादुड़ी और कई भक्त हैं।

डॉक्टर ने हाथ देखा और पीड़ा की समस्त अवस्था को जाना। धीरे-धीरे ईश्वर-सम्बन्धी बातें होने लगीं।

भादुड़ी— बात क्या है, पता है ? सब स्वप्नवत् है।

डॉक्टर— सब ही डिल्युज़न (भ्रम) है ? फिर किसका डिल्युज़न, और क्यों डिल्युज़न ? और फिर सब जानते हुए भी कि डिल्युज़न है, तो भी बातें क्यों करते हैं ? I cannot believe that God is real and creation is unreal. (ईश्वर सत्य है, और उनकी सृष्टि मिथ्या है, मैं यह विश्वास नहीं कर सकता।)

(सोऽहम् और दास भाव— ज्ञान और भक्ति)

श्रीरामकृष्ण— यह सुन्दर भाव है— तुम प्रभु, मैं दास। जब तक देह सत्य है, यह बोध है, मैं-तुम है, तब तक सेव्य-सेवक भाव ही अच्छा है; मैं वही हूँ,

यह बुद्धि अच्छी नहीं।

"और क्या है, जानते हो? एक ओर से कमरे को देख लेना जैसा है, कमरे के मध्य से कमरे को देख लेना भी वैसा ही है।"

भादुड़ी *(डॉक्टर के प्रति)*— ये समस्त बातें जो कही हैं मैंने, वेदान्त में हैं। शास्त्र इत्यादि देखो, तभी तो पता चले।

डॉक्टर— क्यों, ये क्या शास्त्र देखकर विद्वान् बने हैं? और ये भी तो वैसी ही बातें करते हैं। शास्त्र बिना पढ़े क्या नहीं होगा?

श्रीरामकृष्ण— अरे भाई, मैंने सुना तो कितना है!

डॉक्टर— केवल सुन लेने पर तो कितनी भूल रह सकती है। तुमने केवल सुना ही नहीं।

अब फिर और बातें चल पड़ीं।

('ये पागल'— ठाकुर का पाँव की धूलि देना)

श्रीरामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— आपने शायद कहा था, 'ये पागल' हैं? जभी ये लोग *(मास्टर इत्यादि को दिखला कर)* तुम्हारे पास जाना नहीं चाहते।

डॉक्टर *(मास्टर की ओर देखते हुए)*— कहाँ? तो भी इनके अहंकार की बात कही थी। तुम लोगों को इनके पाँव की धूलि क्यों लेने देते हो?

मास्टर— वैसा न होने से लोग रोते हैं।

डॉक्टर— उनकी भूल उन्हें समझा देना उचित है।

मास्टर— क्यों, सर्वभूतों में क्या नारायण नहीं हैं?

डॉक्टर—उसमें मुझे आपत्ति नहीं है। सब के ही करो (सबके ही पैरों की धूलि लो)।

मास्टर— किसी-किसी मनुष्य में प्रकाश अधिक होता है। जल सब जगहों पर है। किन्तु तालाब, नदी, समुद्र में वह अधिक प्रकाशित है। आप Faraday (फैरेडे) को जितना मानेंगे, नूतन bechelor of science (साइन्स का नया बैचलर) क्या उतना मानेगा?

डॉक्टर— हाँ, वह मैं मानता हूँ। पर फिर गॉड् (भगवान) क्यों कहते हो?

मास्टर— हम लोग परस्पर नमस्कार क्यों करते हैं? सबके हृदय के बीच में नारायण हैं। आप ने उन समस्त विषयों को इतना देखा नहीं है, उन पर विचार नहीं किया है।

श्रीरामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— किसी-किसी वस्तु में अधिक प्रकाश है। आपको तो बताया है, सूर्य की किरणें मिट्टी पर एक तरह से पड़ती हैं, वृक्ष पर और एक तरह से पड़ती हैं और फिर दर्पण में और ही एक प्रकार से। दर्पण पर कुछ अधिक प्रकाश होता है। और यही देखो ना, प्रह्लाद आदि और ये लोग क्या समान हैं? प्रह्लाद के मन-प्राण, सब उनमें समर्पित हो गए थे।

डॉक्टर चुप रहे। सब चुप किए रहे।

श्रीरामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— देखो, तुम्हारा यहाँ पर *(स्वयं की ओर इंगित करके)* आकर्षण है। तुम ने मुझ से कहा था, 'तुम्हें प्यार करता हूँ'।

(श्रीरामकृष्ण और संसारी जीव— 'तुम लोभी, कामी, अहंकारी')

डॉक्टर— तुम child of nature, (तुम प्रकृति के बालक हो), तभी इतना कहता हूँ। लोग पाँव में हाथ लगाकर नमस्कार करते हैं, इससे मुझे कष्ट होता है। सोचता हूँ, इतना भला मनुष्य है, इसे खराब कर रहे हैं। केशवसेन को उसके चेले भी इसी प्रकार करते थे। तुम से कहता हूँ, सुनो—

श्रीरामकृष्ण—तुम्हारी बात क्या सुनूँ? तुम हो लोभी, कामी, अहंकारी।

भादुड़ी *(डॉक्टर के प्रति)*— अर्थात् तुम्हारा जीवत्व है। जीव का धर्म ही वही है— रुपया-पैसा, मान-मर्यादा का लोभ, काम और अहंकार। सकल जीवों का यही धर्म है।

डॉक्टर— ऐसा कहते हो तो फिर तुम्हारे गले का असुख ही देखकर चला जाऊँगा। और किसी बात से क्या मतलब? तर्क करना होता है तो सब ठीक-ठीक ही कहूँगा।

सब चुप रहे।

(अनुलोम और विलोम—Involution and Evolution— तीन भक्त)

कुछ देर बाद ठाकुर फिर दोबारा भादुड़ी के साथ बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण— जानते हो? ये (डॉक्टर) अब 'नेति-नेति' करके अनुलोम में जा रहे हैं। ईश्वर जीव नहीं, जगत नहीं, सृष्टि के बिना वे हैं— ऐसा विचार ये कर रहे हैं। जब विलोम में आएँगे तब मानेंगे।

"केले के पेड़ का खोल उतारते-उतारते फिर बीच मिलता है।

"खोल एक अलग वस्तु है, माझ (बीच) एक अलग वस्तु है। माझ खोल नहीं, खोल भी माझ नहीं। किन्तु अन्त में मनुष्य देखता है कि खोल का ही माझ है और माझ का ही खोल है। वे चौबीस तत्त्व बने हैं, वे ही मनुष्य बने हैं।

(डॉक्टर के प्रति)— भक्त तीन प्रकार के हैं— अधम भक्त, मध्यम भक्त, उत्तम भक्त।

अधम भक्त कहता है, वह ईश्वर है। वह कहता है सृष्टि अलग है, ईश्वर अलग है।

मध्यम भक्त कहता है, ईश्वर अन्तर्यामी हैं। वह हृदय में ईश्वर को देखता है। उत्तम भक्त देखता है, वे ही यह सब कुछ बने हुए हैं— वे ही चौबीस तत्त्व हुए हैं। वह देखता है ईश्वर हैं नीचे-ऊपर परिपूर्ण।

"तुम गीता, भागवत, वेदान्त— ये सब पढ़ो, तो फिर यह सब समझ सकोगे।

"ईश्वर क्या सृष्टि के बीच में नहीं हैं?"

डॉक्टर— नहीं, सब जगहों पर हैं और हैं, इसी कारण उन्हें खोजा नहीं जा सकता।

कुछ क्षण पश्चात् और बात उठ गई। ठाकुर श्रीरामकृष्ण को ईश्वरीय भाव सर्वदा होता है, उससे रोग बढ़ने की सम्भावना है।

डॉक्टर *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— भाव को दबाओ। मुझे भी खूब भाव होता है। तुम्हारी अपेक्षा अधिक नाच सकता हूँ।

छोटे नरेन *(सहास्य)*— भाव यदि और थोड़ा-सा बढ़े, तो क्या करेंगे?

डॉक्टर— controlling power (नियन्त्रण शक्ति, दबाने की ताकत) भी बढ़ेगी।

श्रीरामकृष्ण और मास्टर— यह आप कहते हैं।

मास्टर— भाव होने पर क्या होता है, आप बता सकते हैं?

कुछ क्षण पश्चात् रुपए-पैसे की बात उठी।

श्रीरामकृष्ण *(डॉक्टर के प्रति)*— मेरी उसमें इच्छा नहीं है, यह तो जानते ही हो। क्या ढोंग? नहीं!

डॉक्टर— मेरी भी उसमें इच्छा नहीं— और फिर तुम! खुले बक्स में रुपया पड़ा रहता है—

श्रीरामकृष्ण—यदु मल्लिक भी उसी प्रकार अन्यमनस्क है, जब खाने बैठता है, इतना अन्यमनस्क कि जो-सो बना हो, अच्छा-मन्दा खाए ही जाता है। कोई यदि कह भी दे कि यह मत खाओ, यह खराब बना है। तब कहता है— हैं, क्या इसका स्वाद खराब है? हाँ, ठीक ही तो! अरे!

ठाकुर क्या इशारे से कह रहे हैं, ईश्वरचिन्तन करके अन्यमनस्क, और विषय-चिन्ता करके अन्यमनस्क, दोनों में बड़ा प्रभेद है?

और फिर भक्तों की ओर दृष्टि डालकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण डॉक्टर को दिखला कर सहास्य कहते हैं—

''देखो, सिद्ध होने पर (पक जाने परे) वस्तु नरम हो जाती है। ये (डॉक्टर) खूब सख्त थे, अब भीतर से थोड़ा-थोड़ा नरम हो रहे हैं।''

डॉक्टर— सिद्ध होने पर ऊपर से भी नरम हो जाता है, किन्तु मेरा तो इस जीवन में ऐसा नहीं हुआ। *(सब का हास्य)*।

डॉक्टर विदा लेंगे, और फिर ठाकुर के साथ बातें करते हैं।

डॉक्टर— लोग पाँव की धूलि लेते हैं, मना नहीं कर सकते आप?

श्रीरामकृष्ण— सभी क्या अखण्ड सच्चिदानन्द को पकड़ सकते हैं?

डॉक्टर— तो फिर क्या जो ठीक है, उसे नहीं कहोगे?

श्रीरामकृष्ण— रुचि-भेद और अधिकारी-भेद है।

डॉक्टर— वह फिर और क्या है?

श्रीरामकृष्ण— रुचि-भेद, कैसा है जानते हो? कोई मछली का झोल खाता है, कोई तल कर खाता है, कोई मछली का खट्टा (अम्मल) खाता है, कोई मछली का पुलाव खाता है।

और अधिकारी-भेद भी है। मैं कहता हूँ पहले केलावृक्ष बींधना सीखो, उसके पश्चात् बत्ती (शलाका), उसके बाद पक्षी उड़ा जा रहा है, उस पर निशाना लगाओ।

(अखण्ड-दर्शन— डॉक्टर सरकार और हरिवल्लभ को दर्शन)

सन्ध्या हो गई। ठाकुर ईश्वरचिन्तन में मग्न हो गए। इतना असुख; किन्तु असुख मानो एक किनारे पड़ गया है। दो-चार अन्तरंग भक्त निकट बैठे हुए एकदृष्टि से देख रहे हैं। ठाकुर काफी देर इसी अवस्था में रहे।

ठाकुर प्रकृतिस्थ हो गए हैं। मणि पास बैठे हैं, उनको एकान्त में कह रहे हैं—

''देखो, अखण्ड में मन लीन हो गया था। फिर देखी थीं— वे बहुत-सी बातें हैं। डॉक्टर को देखा, उसका होगा— कुछ दिन पश्चात्; और अधिक उसे बतलाना-समझाना नहीं पड़ेगा। और एक को देखा। मन में उठा, 'उसको भी लो।' उसकी बात फिर तुम्हें बताऊँगा।''

(संसारी जीव को नाना उपदेश)

श्रीयुक्त श्यामबसु और दोकड़ि डॉक्टर तथा और भी दो-एक लोग आए हुए हैं। अब उनके साथ बातें कर रहे हैं।

श्यामबसु— आहा, उस दिन वह बात जो आपने बताई थी, कैसी अद्भुत थी!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— कौन-सी बात जी?

श्यामबसु— वही जो कही थी, ज्ञान-अज्ञान के पार चले जाने पर क्या रहता है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— विज्ञान। नाना ज्ञान का नाम है अज्ञान। सर्वभूत में ईश्वर हैं, इसका नाम है ज्ञान। विशेष रूप से जानने का नाम है विज्ञान। ईश्वर के साथ आलाप, उनमें आत्मीय बोध, इसका नाम है विज्ञान।

"लकड़ी में आग है, अग्नि तत्त्व है; इसका नाम ज्ञान है। उस काठ को जला कर भात पका कर खाना और खाकर हृष्ट-पुष्ट होने का नाम है विज्ञान।"

श्यामबसु *(सहास्य)*— और वही काँटे वाली बात!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— हाँ, जैसे पाँव में काँटा घुस जाने पर और काँटा खोजना पड़ता है; उसके बाद पाँव वाले काँटे को निकाल कर दोनों ही काँटे फेंक देते हैं। वैसे ही अज्ञान-काँटा निकालने के लिए ज्ञान-काँटे का प्रबन्ध करना पड़ता है। अज्ञान-नाश हो जाने पर ज्ञान, अज्ञान दोनों को ही फेंक देना चाहिए। तब— विज्ञान।

ठाकुर श्यामबसु के ऊपर प्रसन्न हुए हैं। श्यामबसु की वयस हो गई है, अब इच्छा है कि कुछ दिन ईश्वर-चिन्तन करें। परमहंसदेव का नाम सुनकर यहाँ पर आए हैं। इससे पहले और भी एक दिन आए थे।

श्रीरामकृष्ण *(श्यामबसु के प्रति)*— विषय की बातें एकदम ही छोड़ दो। ईश्वरीय बातों के अतिरिक्त अन्य कोई भी बात न बोलो। विषयी लोगों को देखकर धीरे-धीरे हट जाओ। इतने दिन संसार करके तो देख लिया है, सब फक्केबाजी (खोखला) है। ईश्वर ही वस्तु है और सब अवस्तु। ईश्वर ही सत्य और सब दो दिन के लिए। संसार ही क्या है? आमड़े का अम्बल; खाने की इच्छा तो होती है, किन्तु आमड़े में है ही क्या? गुठली और छिलका, खाने पर पेट में दर्द होता है।

श्यामबसु— जी हाँ; जो आप कह रहे हैं, सब ही सत्य है।

श्रीरामकृष्ण— बहुत दिनों तक बहुत-से विषय-कर्म कर लिए हैं। अब गोलमाल में ध्यान रहने पर ईश्वर-चिन्तन नहीं होगा। थोड़ा निर्जन आवश्यक है। निर्जन बिना हुए मन स्थिर नहीं होगा। तभी घर से कुछ थोड़े अन्तर पर ध्यान की जगह बनानी चाहिए।

श्यामबसु कुछ चुप रहे, मानो कुछ सोच रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— और देखो, दाँत भी सब गिर गए हैं, अब दुर्गापूजा क्यों? *(सब का हास्य)*। किसी ने कहा था, 'अब दुर्गापूजा क्यों नहीं करते?' उस व्यक्ति ने उत्तर दिया— 'अब दाँत नहीं हैं न, तभी। पाठा खाने

की शक्ति चली गई है।'

श्यामबसु— आहा, कैसी चीनी-घुली वाणी!

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— इस संसार में रेत और चीनी मिली हुई है। चींटी की भाँति रेत छोड़ कर चीनी-चीनी लेनी चाहिए। जो चीनी-चीनी ही ले सकता है, वही चतुर है। उनका चिन्तन करने के लिए थोड़ा निर्जन स्थान बना लो। ध्यान का स्थान। तुम एक बार करो न! मैं भी एक बार आऊँगा।

सब कुछ देर चुप रहे।

श्यामबसु— महाशय, जन्मान्तर क्या है? और फिर जन्म के अन्त में क्या होगा?

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर से कहो, आन्तरिक पुकारो; वे समझा देंगे, जरूर समझा देंगे। यदु मल्लिक के साथ आलाप करो, यदु मल्लिक ही बतला देगा, उसके कितने घर, कितने रुपये, कितने कम्पनी के कागज हैं। पहले यह सब जानने की चेष्टा करना ठीक नहीं है। पहले ईश्वर-लाभ करो, फिर जो इच्छा होगी, वे ही जनवा देंगे।

श्यामबसु— महाशय, मनुष्य संसार में रहकर कितना अन्याय करता है, पापकर्म करता है। यह मनुष्य क्या ईश्वर-लाभ कर सकता है?

श्रीरामकृष्ण— देह-त्याग से पहले यदि कोई ईश्वर का साधन करता है, और साधन करते-करते, ईश्वर को पुकारते-पुकारते, यदि देह-त्याग हो जाती है, उसको फिर पाप कभी भी स्पर्श नहीं करेगा। हाथी का स्वभाव चाहे है कि स्नान करवा देने के पश्चात् ही फिर दोबारा धूल मल लेता है; किन्तु महावत स्नान करवाते ही अस्तबल (पीलखाने) में उसे घुसा दे सके तो फिर वह धूल मल नहीं पाता।

ठाकुर को कठिन पीड़ा है! भक्तगण अवाक् हैं, अहेतुक कृपासिन्धु, दयालु ठाकुर श्रीरामकृष्ण जीव के दुःख से कातर हैं; रात-दिन जीव का मंगल-चिन्तन कर रहे हैं। श्यामबसु को साहस दे रहे हैं— अभय दे रहे हैं—

"ईश्वर को पुकारते-पुकारते यदि देह-त्याग होता है, तो फिर पाप स्पर्श नहीं करेगा।"

षड्विंश खण्ड

काशीपुर-बागान में भक्तों के संग ठाकुर श्रीरामकृष्ण

प्रथम परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण काशीपुर-बागान में— गिरीश और मास्टर)

काशीपुर-बागान के पूर्व-किनारे पर पुष्करिणी का घाट। चाँद निकला हुआ है। उद्यानपथ और उद्यान के वृक्ष चन्द्र-किरणों में स्नात हो रहे हैं। तालाब के पश्चिम की ओर दोतला गृह है। ऊपर के कमरे में प्रकाश जल रहा है, तालाब के घाट से होकर वह प्रकाश खिड़की के मध्य से आ रहा है; उससे दिखाई दे रहा है। कमरे के मध्य में ठाकुर श्रीरामकृष्ण शैय्या के ऊपर बैठे हुए हैं। एक-दो भक्त चुपचाप पास बैठे हैं या इस कमरे से उस कमरे में आ-जा रहे हैं। ठाकुर अस्वस्थ हैं, चिकित्सा के लिए बागान में आए हैं। भक्तगण सेवा के लिए साथ हैं। तालाब के घाट से नीचे के तीन प्रकाश दिखाई दे रहे हैं। एक कमरे में भक्त लोग रहते हैं, उसका प्रकाश दीख रहा है। वह कमरा दक्षिण की ओर का कमरा है। बीच का प्रकाश श्री श्री माता ठाकुराणी के कमरे से आ रहा है— माँ ठाकुर की सेवार्थ आई हुई हैं। तीसरा प्रकाश रसोई घर का है। वह कमरा गृह के उत्तर में है। उद्यान के मध्यस्थित इस दोतला गृह के दक्षिण-पूर्व कोण से एक पथ तालाब के घाट की ओर गया है। पूर्वास्य होकर उसी पथ द्वारा घाट पर जाया जाता है। पथ के दोनों किनारों पर,

विशेषत: दक्षिण की ओर, अनेक फल-फूलों के वृक्ष हैं।

चाँद निकला हुआ है। तालाब के घाट पर गिरीश, मास्टर, लाटु और भी दो-एक भक्त बैठे हुए हैं। ठाकुर की बातें हो रही हैं। आज शुक्रवार, 16 अप्रैल, 1886, चौथा वैशाख, 1293 (बं०) साल, चैत्र की शुक्ला त्रयोदशी।

कुछ क्षण पश्चात् गिरीश और मास्टर उसी पथ पर टहल रहे हैं और बीच-बीच में कथावार्ता कर रहे हैं।

मास्टर— कैसा सुन्दर चाँद का आलोक है! कितने काल से यही नियम चल रहा है!

गिरीश— कैसे जाना?

मास्टर— प्रकृति का नियम बदलता नहीं है। (uniformity of Nature) और विलायत के लोग नए-नए नक्षत्र टेलिस्कोप द्वारा देखते हैं। चाँद में पहाड़ हैं, देखा है।

गिरीश— वह कहना कठिन है, विश्वास नहीं होता।

मास्टर— क्यों, टेलिस्कोप द्वारा ठीक दिखाई देता है।

गिरीश— कैसे कहूँ कि उन्होंने ठीक देखा है! पृथिवी और चाँद के बीच में यदि कोई वस्तु है, उसके बीच से आलोक आते-आते सम्भवत: ऐसा दिखाई देता हो।

बागान में लड़के-भक्त ठाकुर की सेवा के लिए सर्वदा रहते हैं। नरेन्द्र, राखाल, निरंजन, शरत्, शशी, बाबूराम, काली, योगीन, लाटु इत्यादि; ये लोग रहते हैं। जिन भक्तों का गृहस्थ है, वे कोई-कोई प्रति दिन आते हैं और बीच-बीच में रात को भी रहते हैं। कोई अथवा बीच-बीच में आते हैं। आज नरेन्द्र, काली और तारक दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी के बागान में गए हैं। नरेन्द्र वहाँ पर पंचवटी-वृक्ष तले बैठकर ईश्वर-चिन्तन करेंगे, साधन करेंगे। जभी दो-एक गुरु भाई साथ में गए हैं।

द्वितीय परिच्छेद

ठाकुर गिरीशादि भक्तसंगे— भक्तों के प्रति ठाकुर का स्नेह

(गिरीश, लाटु, मास्टर, बाबूराम, निरंजन, राखाल)

गिरीश, लाटु, मास्टर ने ऊपर जाकर देखा, ठाकुर शैय्या पर बैठे हुए हैं। सेवार्थ शशी और अन्य दो-एक भक्त उसी कमरे में थे। क्रमश: बाबूराम, निरंजन, राखाल— ये लोग भी आ गए।

कमरा बड़ा है। ठाकुर के निकट औषधादि और नितान्त प्रयोजनीय वस्तुएँ आदि रखी हुई हैं। कमरे के उत्तर में एक द्वार है, सीढ़ियों से चढ़कर उसी द्वार से कमरे में प्रवेश किया जाता है। उसी द्वार के सामने कमरे के दक्षिण में और एक द्वार है। उस द्वार से दक्षिण की छोटी छत पर जाया जाता है। उस छत पर खड़े होने से बागान के वृक्ष, पौधे, चाँद का आलोक, अदूर का राजपथ इत्यादि दिखाई देते हैं।

भक्तों को रात्रि-जागरण करना पड़ता है। वे पारी-पारी से जागते हैं। मसहरी लगाकर ठाकुर को शयन करवा कर जो भक्त कमरे में रहते हैं, वे कमरे के पूर्व किनारे पर मादुर (बारीक चटाई) बिछा कर कभी बैठे, कभी लेटे रहते हैं। अस्वस्थता के कारण ठाकुर को प्राय: निद्रा नहीं होती। जभी जो रहते हैं, वे कई घण्टे प्राय: बैठकर ही काट देते हैं।

आज ठाकुर का रोग कुछ कम है। भक्तों ने आकर भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया एवं ठाकुर के सम्मुख फरश पर बैठ गए।

ठाकुर ने रोशनी निकट लाने के लिए मास्टर को आदेश दिया। ठाकुर गिरीश के साथ सस्नेह सम्भाषण करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— अच्छे तो हो? *(लाटु के प्रति)* इनको तम्बाकू पिला। और पान ला दे।

कुछ क्षण के पश्चात् बोले, "कुछ जलपान के लिए ला दे।"

लाटु— पान आदि दे दिया है। दुकान से जलपान लेने आदमी जा रहा है।

ठाकुर बैठे हुए हैं। एक भक्त ने फूलों की बहुत सारी मालाएँ लाकर दीं थीं।

ठाकुर ने एक-एक करके अपने गले में धारण कर ली हैं। ठाकुर के हृदय के बीच हरि हैं, लगता है उन्हीं की पूजा की है। भक्तगण अवाक् होकर देख रहे हैं। दो मालाएँ अपने गले से लेकर गिरीश को दे दीं।

ठाकुर बीच-बीच में पूछ रहे हैं, ''क्या जलपान आ गया?''

मणि ठाकुर को पंखा कर रहे हैं। ठाकुर के पास एक भक्त का दिया हुआ चन्दन का पंखा था। ठाकुर ने उसी पंखे को मणि के हाथ में दिया था। मणि उसी पंखे को लेकर हवा कर रहे हैं। मणि पंखा झल रहे हैं, ठाकुर ने दो मालाएँ अपने गले से लेकर उनको भी दे दीं।

लाटु ठाकुर को एक भक्त की बात बतला रहे हैं। उनकी एक सात-आठ वर्ष की सन्तान ने प्राय: डेढ़ वर्ष हुआ देहत्याग किया था। उस लड़के (सन्तान) ने ठाकुर का कई बार भक्तों के संग में कीर्त्तनानन्द में दर्शन किया था।

लाटु *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— ये उस लड़के की पुस्तक देखकर कल रात को बहुत रोए थे। स्त्री भी लड़के के शोक में पागल-जैसी हो गई है। अपने बच्चों को मारती है, पटक देती है। ये कभी-कभी यहाँ पर रहते हैं, इसीलिए बड़ा झगड़ा करती है।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण इस शोक की बात सुनकर चिन्तित होकर चुप हुए रहे।

गिरीश— अर्जुन इतनी गीता-शीता दत्तचित्त से श्रवण करके भी अभिमन्यु के शोक में एकदम मूर्छित हो गए थे। तो फिर इनका पुत्र के लिए शोक करना, कोई आश्चर्य नहीं।

(संसार में ईश्वर-लाभ किस प्रकार होता है ?)

गिरीश के लिए जलपान आ गया। फागू की दुकान की गरम कचौरियाँ, पूरियाँ और मिठाई। बराहनगर में है फागू की दुकान। ठाकुर ने उस समस्त खाने को अपने सम्मुख रखवा कर प्रसाद कर दिया। फिर अपने हाथ से आहार गिरीश के हाथ में दिया। बोले, बढ़िया है कचौरी।

गिरीश सामने बैठे हुए हैं। गिरीश को पीने के लिए जल देना होगा। ठाकुर की शैय्या के दक्षिण-पूर्व कोने में सुराही में जल है। ग्रीष्मकाल, वैशाख मास। ठाकुर बोले, "यहाँ पर सुन्दर जल है।"

ठाकुर अति अस्वस्थ हैं। खड़े होने की शक्ति नहीं।

भक्तगण अवाक् होकर क्या देख रहे हैं? देख रहे हैं— ठाकुर की कमर में कपड़ा-धोती नहीं है। दिगम्बर! बालक की न्यायीं शैय्या के पास से आगे बढ़ रहे हैं। अपने-आप जल डालकर देंगे। भक्तों का निश्वासवायु स्थिर हो गया है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण जल डालकर देंगे। गिलास से थोड़ा-सा जल हाथ में लेकर देख रहे हैं, ठण्डा है कि नहीं। देखा, जल उतना ठण्डा नहीं है। अन्त में यह सोचकर कि अच्छा जल नहीं मिलेगा, अनिच्छा से उसी जल को ही दे दिया।

गिरीश खाना खा रहे हैं। चारों ओर भक्त बैठे हैं। मणि ठाकुर को पंखा झल रहे हैं।

गिरीश *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— देवेन बाबू संसार त्याग करेंगे।

ठाकुर सर्वदा बातें नहीं कर पाते, बड़ा कष्ट होता है। अपने नीचे के होंठ पर उंगली द्वारा स्पर्श करके इंगित किया—

"परिवार वालों (स्त्री, पुत्रादि) का खाना-रहना किस प्रकार होगा— उनका कैसे चलेगा?"

गिरीश— वह क्या करेंगे, मुझे नहीं पता।

सब चुप रहे। गिरीश ने खाना खाते-खाते बातें आरम्भ कीं।

गिरीश— अच्छा, महाशय! कौन-सा कठिन है— कष्ट में संसार छोड़ना या संसार में रहकर उनको पुकारना?

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— गीता में देखा नहीं? अनासक्त होकर संसार में रहकर कर्म करने से, सब मिथ्या जानकर ज्ञान के पश्चात् संसार में रहने से ठीक ईश्वर-लाभ होता है।

"जो कष्ट में छोड़ते हैं, वे हीन श्रेणी के लोग हैं।

"संसारी ज्ञानी कैसा होता है, जानते हो? जैसे काँच के कमरे में कोई

हो तो वह भीतर-बाहिर दोनों ही देख लेता है।''

अब फिर सब चुप किए रहे।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— कचौरी गरम हैं और बड़ी अच्छी हैं।

मास्टर *(गिरीश के प्रति)*— फागू की दुकान की कचौरी है। विख्यात!

श्रीरामकृष्ण— विख्यात!

गिरीश *(खाते-खाते, सहास्य)*— बढ़िया कचौरी है!

श्रीरामकृष्ण— पूरी रहने दो, कचौरी खाओ। *(मास्टर से)* कचौरी हैं किन्तु रजोगुणी।

गिरीश ने खाते-खाते ही फिर और बातें उठाईं।

(संसारी के मन और ठीक-ठीक त्यागी के मन का प्रभेद)

गिरीश *(श्रीरामकृष्ण के प्रति)*— अच्छा, महाशय! मन अभी तो इतना ऊँचे पर होता है, और फिर झट नीचे क्यों हो जाता है?

श्रीरामकृष्ण— संसार में रहने से ऐसा ही होता है। कभी ऊँचे, कभी नीचे। कभी तो खूब शक्ति होती है, और फिर कम हो जाती है। कामिनी-कांचन लेकर रहना पड़ता है कि ना, तभी होता है। संसार में भक्त कभी ईश्वर-चिन्तन, हरिनाम करता है; कभी फिर कामिनी-कांचन में मन डाले रखता है। जैसे साधारण मक्खी— कभी सन्देश पर बैठती है, तो कभी सड़े-गले घाव अथवा विष्ठा पर भी बैठती है।

''त्यागियों की अलग बात है। वे कामिनी-कांचन से मन को निकाल कर केवल ईश्वर में दे सकते हैं; केवल हरिरस-पान कर सकते हैं। ठीक-ठीक त्यागी होने से ईश्वर के अतिरिक्त उसे और कुछ अच्छा नहीं लगता। विषय की बातें होने पर वह उठकर चला जाता है; ईश्वरीय कथा होने पर सुनता है।

ठीक-ठीक त्यागी हों तो वे अपने-आप ही ईश्वरवाणी के अतिरिक्त और बात बोलते ही नहीं।

''मधुमक्खी केवल फूल पर बैठती है— क्योंकि मधु खाएगी। अन्य कोई भी वस्तु मधुमक्खी को अच्छी नहीं लगती।''

गिरीश दक्षिण की छोटी छत पर हाथ धोने के लिए गए।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— ईश्वर का अनुग्रह चाहिए, जभी उन पर सम्पूर्ण मन होता है। बहुत-सी कचौरियाँ खा ली हैं, उसको कह आओ आज और कुछ न खाए।

तृतीय परिच्छेद

(अवतार, वेदविधि के पार— वैधीभक्ति और भक्ति-उन्माद)

गिरीश पुनः कमरे में आकर ठाकुर के सम्मुख बैठ गए और पान खा रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— राखाल आदि अब समझ गए हैं कि कौन-सा भला है और कौन-सा मन्दा है; कौन-सा सत्य है, कौन-सा मिथ्या है। वे जो संसार में जाकर रहते हैं, वह जान-बूझ कर है। स्त्री है, लड़का भी हुआ है— किन्तु समझ गया है सब मिथ्या है, अनित्य है। राखाल आदि— ये लोग संसार में लिप्त नहीं होंगे।

''जैसे पांकाल मछली। पंक (कीचड़) के भीतर वास है, किन्तु शरीर पर पंक का दाग तक भी नहीं!''

गिरीश— महाशय, मैं यह सब नहीं समझता। आप चाहें तो सब को ही निर्लिप्त और शुद्ध कर दे सकते हैं। क्या संसारी, क्या त्यागी, सब को ही भला कर दे सकते हैं। मलय पवन के बहने पर, मैं कहता हूँ, सब काठ चन्दन हो जाता है—

श्रीरामकृष्ण— सार न हो तो चन्दन नहीं बनता। शिमूल (सेमल) तथा और भी कई-एक वृक्ष चन्दन नहीं बनते।

गिरीश— वह तो नहीं सुना।

श्रीरामकृष्ण— कानून में इस प्रकार है।

गिरीश— आप का सब बे-कानून है!

भक्तगण अवाक् होकर सुन रहे हैं। मणि के हाथ में पंखा एक-एक बार स्थिर हो जाता है।

श्रीरामकृष्ण— हाँ, वैसा हो सकता है; भक्ति-नदी उथल पड़े तो मैदान में भी बाँस-बाँस जल हो जाता है।

''जब भक्ति-उन्माद हो जाता है, तब वेदविधि नहीं मानता। दूर्वा तोड़ता है; उसे बीनता नहीं। जो हाथ में आ जाता है, वही ले लेता है। तुलसी तोड़ता है, पट-पट करके डालियाँ तोड़ देता है! आहा, कैसी अवस्था ही चली गई है!''

(मास्टर के प्रति)— ''भक्ति हो जाने पर फिर कुछ भी नहीं चाहिए!''

मास्टर— जी हाँ।

(सीता और श्री राधा— रामावतार व कृष्णावतार का विभिन्न भाव)

श्रीरामकृष्ण— कोई एक ही भाव आश्रय करना चाहिए। रामावतार में शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य आदि था। कृष्णावतार में वे सब भी थे; और फिर मधुर भाव भी था।

''श्रीमती का मधुर भाव— छिनालपन है। सीता का शुद्ध सतीत्व, छिनालपन नहीं।

''उनकी ही लीला है। जब जैसा भाव हो।''

विजय के संग दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी में एक पगली-जैसी स्त्री ठाकुर को गाना सुनाने जाती थी— श्यामा विषयक गाना और ब्रह्म संगीत। सब उसे पगली कहते। वह काशीपुर के बागान में भी सर्वदा आती है और ठाकुर के निकट जाने के लिए बड़ा उपद्रव करती है। भक्तों को इसीलिए सर्वदा सावधान रहना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश आदि भक्तों के प्रति)*— पगली का मधुर भाव है।

दक्षिणेश्वर में एक दिन गई थी। हठात् क्रन्दन। मैंने पूछा, रोती क्यों है? वह बोली, सिर दुःख रहा है। *(सब का हास्य)*।

"और एक दिन गई थी। मैं खाने के लिए बैठा ही था। हठात् बोली, 'दया नहीं करोगे?' मैं उदार बुद्धि से खाता रहा। तब फिर वह बोली, 'मन से ढकेलते क्यों हैं?' पूछा, 'तेरा क्या भाव है?' वह बोली, 'मधुर भाव!' मैंने कहा, 'अरे, मेरी तो मातृयोनि है! मेरी तो सभी स्त्रियाँ माँ हैं।' तब वह बोली, 'वह मैं नहीं जानती।' तब रामलाल को पुकारा। कहा, 'अरे रामलाल, किस मन से 'ढकेलना' कह रही है, सुन तो ज़रा!'

"उसका अभी भी वही भाव है।"

गिरीश— वह पगली धन्य! पागल हो जाए या भक्तों से मार ही खाए, आप का अष्टप्रहर चिन्तन तो करती है! वह चाहे जिस किसी भाव से ही करे, उसका कभी बुरा नहीं होगा!

"महाशय, क्या कहूँ! आपकी चिन्ता करके मैं क्या था, क्या हो गया हूँ! पहले आलस्य था, अब वह आलस्य ईश्वर पर निर्भर होकर खड़ा हो गया है! पाप था, पर अब निरहंकार हो गया हूँ। और क्या कहूँ!"

भक्तगण चुप हैं। राखाल पगली की बात का उल्लेख करके दुःख कर रहे हैं। बोले, 'दुःख होता है, वह उपद्रव करती है और उसके लिए अनेक कष्ट भी पाती है।'

निरंजन *(राखाल के प्रति)*— तेरी औरत है न, तभी तेरा मन कैसे-कैसे करता है। हम तो उसको बलि चढ़ा सकते हैं।

राखाल *(विरक्त होकर)*— कैसी बहादुरी! इनके सामने ऐसी बातें!

(गिरीश को उपदेश— रुपए पर आसक्ति—
सद्व्यवहार— डॉक्टर, कविराज का द्रव्य)

श्रीरामकृष्ण *(गिरीश के प्रति)*— कामिनी-कांचन ही संसार है। बहुत लोग रुपए को शरीर का रक्त मानते हैं। किन्तु रुपए के लिए बहुत यत्न करने पर

भी शायद एक दिन सब निकल जाए।

''हमारे देश में मैदान में मेंड़ बाँधते हैं। मेंड़ जानते हो? जो खूब यत्न करके चारों ओर मेंड़ बनाते हैं, उनकी मेंड़ जल के जोर से टूट जाती है। जो एक ओर से उसे खोल कर उस पर घास को थपड़ा-थपड़ा कर जमाए रखते हैं, उनकी कैसी पलि* पड़ती है, कितना धान होता है!''

(रुपए का सद्व्यवहार)

''जो रुपए का सद्व्यवहार करते हैं— ठाकुर-सेवा, साधु-भक्त-सेवा करते हैं, दान करते हैं, उनका कार्य होता है। उनका ही सफल होता है।

''मैं डॉक्टर, कविराज की वस्तु खा नहीं सकता। जो लोगों के दुःख-कष्ट से रुपया कमाते हैं, उनका धन मानो रक्त, पीप (मवाद) है!''

यह कहकर ठाकुर ने दो चिकित्सकों के नाम लिए।

गिरीश— राजेन्द्र दत्त का खूब उदार व दानशील मन है; किसी से एक पैसा भी नहीं लेते। उसके लिए दान ही ध्यान है।

---

* पलि = बाढ़ के बाद खेतों में जमी हुई मिट्टी की परत।

सप्तविंश खण्ड

ठाकुर श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग में काशीपुर-बागान में

प्रथम परिच्छेद

(राखाल, शशी, मास्टर, नरेन्द्र, भवनाथ, सुरेन्द्र, राजेन्द्र, डॉक्टर सरकार)

काशीपुर का बाग। राखाल, शशी और मास्टर सन्ध्या के समय उद्यानपथ पर टहल रहे हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण पीड़ित हैं— बागान में चिकित्सा करवाने के लिए आए हुए हैं। वे ऊपर के द्वितल के कमरे में हैं, भक्त लोग उनकी सेवा कर रहे हैं। आज बृहस्पतिवार, 22 अप्रैल, 1886 ईसवी। गुड फ्राइडे का पूर्व दिन।

मास्टर— वे तो गुणातीत बालक हैं।

शशी और राखाल— ठाकुर ने बतलाया है, उनकी वही अवस्था है।

राखाल— जैसे एक टावर (मीनार, लाट) है। वहाँ पर बैठ कर सब खबरें मिल जाती हैं, दिखाई देता है, किन्तु कोई जा नहीं सकता, पहुँच नहीं होती।

मास्टर— इन्होंने कहा, इस अवस्था में सर्वदा ईश्वर-दर्शन हो सकता है। विषयरस नहीं होता, तभी सूखी लकड़ी शीघ्र पकड़ लेती है।

शशी— चारु से कहा था, बुद्धि कितने प्रकार की है। जिस बुद्धि से भगवान-लाभ होता है, वही ठीक बुद्धि है। जिस बुद्धि से रुपया मिलता है, घर होता

है, डिप्टी का कर्म मिलता है, वकील बनता है, वह बुद्धि 'चिड़ेभेजा बुद्धि' है। उस बुद्धि से जलीय दही की तरह चिड़वा ही मात्र भीगता है। वह गाढ़ी दही की भाँति ऊँचे दर की दही नहीं है। जिस बुद्धि से भगवान-लाभ होता है, वही बुद्धि ही गाढ़ी दहीवत् उत्कृष्ट दही (बुद्धि) है।

मास्टर— आहा! क्या बात!

शशी— काली तपस्वी ने ठाकुर से कहा था, 'क्या है आनन्द? भीलों का भी तो आनन्द है। असभ्य हो-हो करके नाचते-गाते हैं।'

राखाल— उन्होंने कहा, यह क्या! ब्रह्मानन्द और विषयानन्द क्या एक हैं? जीव विषयानन्द लेकर रहते हैं। विषयासक्ति सम्पूर्ण बिना गए ब्रह्मानन्द नहीं मिलता। एक ओर रुपए का आनन्द, इन्द्रियसुख का आनन्द, और एक ओर ईश्वर को पाकर आनन्द! ये दोनों क्या कभी समान हो सकते हैं? ऋषियों ने यह ब्रह्मानन्द भोग किया था।

मास्टर— काली अब बुद्धदेव का चिन्तन करते हैं न, तभी सर्व आनन्द के पार की बात कहते हैं।

राखाल— उनके पास भी बुद्धदेव की बात आई थी। परमहंस बोले, 'बुद्धदेव अवतार, उनके संग क्या तुलना? बड़े घर की बड़ी बात!' काली ने कहा था, 'उनकी शक्ति ही तो सब है। उसी शक्ति से ही ईश्वर का आनन्द है और उसी शक्ति से ही तो विषयानन्द होता है—'

मास्टर— इन्होंने *(ठाकुर ने)* क्या कहा?

राखाल— इन्होंने कहा, यह कैसी बात! सन्तानोत्पत्ति की शक्ति और ईश्वरलाभ की शक्ति क्या एक है?

(श्रीरामकृष्ण भक्तसंग में— 'कामिनी-कांचन बड़ा जंजाल')

बागान के उसी दोतल के 'हाल' कमरे में ठाकुर श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग में बैठे हुए हैं। शरीर उत्तरोत्तर अस्वस्थ हो रहा है, आज फिर डॉक्टर महेन्द्र सरकार और डॉक्टर राजेन्द्र दत देखने आए हैं— यदि चिकित्सा द्वारा कोई उपचार हो। कमरे में नरेन्द्र, राखाल, शशी, सुरेन्द्र, मास्टर,

भवनाथ और अन्य अनेक भक्त हैं।

यह बागान पाकपाड़ा के बाबुओं का है। भाड़ा प्राय: 60/65 रुपया देना पड़ता है। युवा लड़के भक्त प्राय: बागान में ही रहते हैं। वे ही रात-दिन ठाकुर की सेवा करते हैं। गृही भक्तगण सर्वदा आते हैं और बीच-बीच में रात को रहते हैं। उनकी भी रात-दिन ठाकुर की सेवा करने की इच्छा है। किन्तु सब ही कार्य में बद्ध हैं— कोई न कोई कार्य करना पड़ता है। सर्वदा वहाँ पर रहकर सेवा नहीं कर सकते। बागान का खर्च चलाने के लिए जिनकी जितनी भी शक्ति है, ठाकुर की सेवार्थ प्रदान करते हैं; अधिकांश खर्च सुरेन्द्र देते हैं! उनके ही नाम में बागान का किरायानामा लिखा गया है। एक रसोइया ब्राह्मण और एक दासी सर्वदा नियुक्त हैं।

श्रीरामकृष्ण *(डॉक्टर सरकार इत्यादि के प्रति)*— बड़ा खर्चा हो रहा है।

डॉक्टर *(भक्तों को दिखला कर)*— उसके लिए ये सब तैयार हैं। बागान का समस्त खर्च देने में इन्हें कोई कष्ट नहीं है।

(श्रीरामकृष्ण के प्रति)— अब देखो, कांचन चाहिए!

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— बोल ना?

ठाकुर ने नरेन्द्र को उत्तर देने का आदेश किया। नरेन्द्र चुप किए रहे। डॉक्टर फिर और बातें करते हैं।

डॉक्टर— कांचन चाहिए। और फिर कामिनी भी चाहिए।

राजेन्द्र डॉक्टर— इनकी स्त्री पका-खिला देती हैं।

डॉक्टर सरकार *(ठाकुर के प्रति)*— देख लिया?

श्रीरामकृष्ण *(ईषत् हास्य करके)*— बड़ा जंजाल है!

डॉक्टर सरकार— जंजाल न रहे तो सब ही परमहंस हैं।

श्रीरामकृष्ण— स्त्री शरीर को छू लेती है तो कष्ट होता है; जहाँ छू जाती है वह स्थान झन-झन करता है, जैसे सींगी मछली का काँटा चुभ गया हो।

डॉक्टर— वैसा विश्वास तो होता है, फिर भी बिना हुए चलता भी कहाँ है?

श्रीरामकृष्ण— रुपया हाथ में लेने पर हाथ मुड़ जाता है। साँस बन्द हो जाती है। रुपए से यदि कोई विद्या का संसार करे;— ईश्वर की सेवा— साधु-

भक्तों की सेवा करे— तो उसमें दोष नहीं।

"स्त्री लेकर माया का संसार करना! उसमें तो ईश्वर को भूल जाता है। जो जगत की माँ हैं, उन्होंने ही इस माया का रूप— स्त्री का रूप धरा है। यह बात ठीक से जान लेने पर फिर माया का संसार करने की इच्छा नहीं होती। सब स्त्रियों में माँ का ठीक-ठीक बोध होने पर ही तब विद्या का संसार करने की इच्छा होती है। ईश्वर-दर्शन बिना हुए स्त्री क्या वस्तु है, समझ में ही नहीं आता।"

होमियोपैथिक औषध खाकर ठाकुर कई दिन कुछ थोड़ा-सा ठीक रहे हैं।

राजेन्द्र— ठीक होकर तो आप को होमियोपैथिक मत से डॉक्टरी करनी होगी। और वह न हुआ तो आप के बचने का ही क्या फल? *(सब का हास्य)*।

नरेन्द्र— Nothing like leather. (जो मोची का काज करता है, वह कहता है, चमड़े जैसी उत्कृष्ट वस्तु और कुछ नहीं है।) *(सब का हास्य)*।

कुछ क्षण पश्चात् डॉक्टर चले गए।

द्वितीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण ने क्यों कामिनी-कांचन-त्याग किया है ?)

ठाकुर मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं। 'कामिनी' के सम्बन्ध में अपनी अवस्था बतला रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— ये लोग बोलते हैं कि 'कामिनी-कांचन' बिना चलता नहीं। मेरी जो क्या अवस्था है, ये जानते नहीं।

"लड़कियों के शरीर पर हाथ लगते ही हाथ टेढ़ा होकर झन्-झन् करने लगता है।

"यदि आत्मीयता से पास बैठकर बातें करने लगता हूँ तो बीच में एक ओट रहती है, उस ओट के उस तरफ जाना जो नहीं।

"कमरे में अकेला बैठा हूँ, तब कोई लड़की आ जाए, तो फिर एकदम बालक की अवस्था हो जाएगी; और उसी लड़की को माँ जानकर ज्ञान होगा।"

मास्टर अवाक् होकर ठाकुर के बिछौने के निकट बैठे हुए ये समस्त बातें सुन रहे हैं। बिछौने से तनिक दूर भवनाथ के साथ नरेन्द्र बातें कर रहे हैं। भवनाथ ने विवाह कर लिया है;— काज-कर्म की चेष्टा कर रहे हैं। काशीपुर के बागान में ठाकुर को देखने के लिए भी अधिक नहीं आ सकते। ठाकुर श्रीरामकृष्ण भवनाथ के लिए बड़े चिन्तित रहते हैं, क्योंकि भवनाथ संसार में पड़ गए हैं। भवनाथ की वयस 23/24 की होगी।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— उसको खूब साहस दे।

नरेन्द्र और भवनाथ ठाकुर की ओर देख कर थोड़ा-सा हँसने लगे। ठाकुर इशारा करके फिर दोबारा भवनाथ से कहते हैं—

"खूब वीर पुरुष होना। स्त्री के घूँघट में रोने पर अपने को मत भूलना। नाक फेंकते-फेंकते क्रन्दन! *(नरेन्द्र, भवनाथ और मास्टर का हास्य)*।

"भगवान में मन ठीक रखना; जो वीर पुरुष है, वह रमणी के संग रहकर, न करे रमण! स्त्री के साथ केवल ईश्वरीय बातें करियो।"

कुछ क्षण के पश्चात् ठाकुर फिर दोबारा इशारा करके भवनाथ से कह रहे हैं—

"आज यहाँ पर खा।"

भवनाथ— जो आज्ञा। मैं ठीक हूँ (आप मेरी चिन्ता न करें)।

सुरेन्द्र आकर बैठ गए। वैशाख मास। भक्तगण ठाकुर को सन्ध्या के बाद मालाएँ ला कर देते हैं। उन्हीं मालाओं को ठाकुर एक-एक करके गले में धारण कर लेते हैं। सुरेन्द्र चुपचाप बैठे हैं। ठाकुर ने प्रसन्न होकर उनको दो लड़ी माला दीं। सुरेन्द्र ने भी ठाकुर को प्रणाम करके वह माला मस्तक पर धारण करके गले में पहन ली।

सब ही चुप करके बैठे हुए हैं और ठाकुर को देख रहे हैं। अब सुरेन्द्र ठाकुर को प्रणाम करके खड़े हो गए; वे विदा ग्रहण करेंगे। जाते समय भवनाथ को पुकार कर बोले—

"खसखस का पर्दा टाँग दियो। बड़ी गर्मी पड़ रही है।"

ठाकुर के ऊपर के हॉल कमरे में दिन के समय बड़ी गर्मी होती है। जभी सुरेन्द्र खसखस की चिक बनवा कर लाए हैं।

तृतीय परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण हीरानन्द प्रभृति भक्तसंगे काशीपुर-बागान में)

(ठाकुर-उपदेश— जो कुछ है सो तू ही है— नरेन्द्र व हीरानन्द-चरित्र)

काशीपुर का बाग। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ऊपर के हॉल कमरे में बैठे हैं। सम्मुख हीरानन्द, मास्टर और भी दो-एक भक्त, और हीरानन्द के संग में दो बन्धु आए हैं। हीरानन्द सिन्धदेशवासी हैं। कलकत्ता के कॉलिज में पढ़-लिख कर देश में इतने दिनों तक थे। श्रीरामकृष्ण को रोग हुआ है, सुनकर उन्हें देखने के लिए आए हैं। सिन्ध प्रान्त* कलकत्ता से शायद ग्यारह-सौ कोस होगा। हीरानन्द को देखने के लिए ठाकुर बड़े ही बेचैन हो गए थे।

ठाकुर ने हीरानन्द की ओर उंगली से निर्देश करके मास्टर को इंगित किया— मानो कह रहे हैं, लड़का खूब अच्छा है।

श्रीरामकृष्ण— आलाप है ?

मास्टर— जी, है।

श्रीरामकृष्ण *(हीरानन्द और मास्टर के प्रति)*— तुम लोग कुछ बातें करो, मैं सुनूँ।

मास्टर चुप हैं, देखकर ठाकुर ने मास्टर से पूछा—

''नरेन्द्र है ? उस को बुला लाओ।''

नरेन्द्र ऊपर आ गए और ठाकुर के पास बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र और हीरानन्द से)*— थोड़ी-सी दोनों जने बातें करो।

---

* सिन्ध = अब पाकिस्तान का एक प्रान्त है।

हीरानन्द चुप हैं। अनेक टालमटोल करने पर उन्होंने बातें आरम्भ कीं।

हीरानन्द *(नरेन्द्र के प्रति)*— अच्छा, भक्त को दु:ख क्यों होता है ?

हीरानन्द की बातें मानो मधु की न्यायीं मीठी हैं। ये बातें जिन्होंने सुनी हैं, वे समझ गए हैं कि इनका हृदय प्रेमपूर्ण है।

नरेन्द्र— The scheme of the Universe is devilish! I could have created a better world! (इस जगत की व्यवस्था देखने से लगता है कि इसकी रचना शैतान ने की है, मैं इसकी अपेक्षा अच्छे जगत की सृष्टि कर सकता था।)

हीरानन्द— दु:ख के न रहने पर क्या सुख-बोध होता है ?

नरेन्द्र— I am giving no scheme of the Universe but simply my opinion of the present scheme. (जगत की किस उपादान से सृष्टि करनी होगी— मैं यह नहीं कह रहा। मैं कह रहा हूँ— जो व्यवस्था सामने देख रहा हूँ, वह अच्छी नहीं है।)

"फिर भी एक विश्वास कर लेने पर सब खत्म हो जाता है। Our only refuge is in Pantheism : सब ही ईश्वर है, यह विश्वास हो जाने पर सब खत्म हो जाता है! वे ही सब कर रहे हैं।"

हीरानन्द— ऐसी बात कहना सहज है।

नरेन्द्र 'निर्वाणाष्टकम्' सुर से बोल रहे हैं—

ॐ मनोबुद्ध्यहंकार-चित्तानि नाऽहं न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुश्चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
न च प्राणसंज्ञो न वै पंचवायुर्न वा सप्तधातुर्न वा पंचकोषा:।
न वाक्-पाणि-पादं न च उपस्थपायु: चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्यभाव:।
न धर्मो न चार्थो न कामो न मोक्ष: चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुखं न मंत्रो न तीर्थो न वेदा न यज्ञा:।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्॥
न मृत्युर्न शंका न मे जातिभेद: पिता नैव मे नैव माता न जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरु: नैव शिष्य: चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो विभूत्वाच्च सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम्।
न चासंगतं नैव मुक्तिर्नमेयः चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥*

हीरानन्द— सुन्दर!

ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने हीरानन्द को इशारा किया कि इसका जवाब दो।

हीरानन्द— एक कोने से कमरे को देखना जैसा है, कमरे के बीच में खड़े होकर कमरे को देखना भी वैसा ही है। हे ईश्वर! मैं तुम्हारा दास हूँ— इससे भी ईश्वरानुभव हो जाता है, और वही मैं हूँ, सोऽहं— उससे भी ईश्वरानुभव होता है। एक द्वार से भी घर में जाया जाता है, और नाना द्वारों से भी घर में जाया जाता है।

सब चुप हैं। हीरानन्द नरेन्द्र से कहते हैं, तनिक कोई गाना बोलिए।

नरेन्द्र सुर करके 'कौपीनपंचकम्' गाते हैं—

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो, भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः।
अशोकम् अन्तःकरणे चरन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥
मूलं तरोः केवलम् आश्रयन्तः, पाणिद्वयं भोक्तुम् आमंत्रयन्तः।
कन्थामिव श्रीमपि कुत्सयन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥

---

* निर्वाणाष्टकम्ः—

ॐ मैं मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त नहीं हूँ; न कान, न जीभ, न नाक, न नेत्र। आकाश, भूमि, तेज़, वायु मैं नहीं हूँ, मैं चिदानन्द रूप शिव हूँ।

मैं न तो प्राण, न पंच वायु अथवा सप्त धातु वा पंचकोष, न वाणी, न हाथ, न पाँव और न ही उपस्थ, न पायु हूँ। मैं तो चिदानन्दरूप शिव हूँ।

मुझ में द्वेष, राग, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य-भाव नहीं हैं; धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष भी नहीं हैं। मैं चिदानन्द रूप शिव हूँ।

मैं न तो पुण्य, न पाप, न सुख, न दुख, न मन्त्र, न तीर्थ, न वेद, न यज्ञ हूँ। मैं भोजन, भोज्य अथवा भोक्ता नहीं हूँ। मैं तो चिदानन्दरूप शिव हूँ।

मैं न तो मृत्यु हूँ, न शंका, न मेरा कोई जाति-भेद है। मैं पिता नहीं हूँ, न माता ही, न जन्म है मेरा। मैं न तो बन्धु, न मित्र, न ही गुरु और न ही शिष्य हूँ। मैं तो चिदानन्दरूप शिव हूँ।

मैं निर्विकल्प, निराकाररूप हूँ और मैं सर्व इन्द्रियों में विभु रूप में वर्तमान हूँ। न मेरा कोई संगी है और न ही मेरी मुक्ति है। मैं तो चिदानन्दरूप शिव हूँ।

स्वानन्दभावे परितुष्टिमन्तः सुखान्तसर्वेन्द्रियवृत्तिमन्तः ।
अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥

ठाकुर ने जैसे ही सुना— अहर्निशं ब्रह्मणि ये रमन्तः— धीरे-धीरे कहते हैं, आहा! और इशारा करके दिखा रहे हैं, 'यही तो है योगी का लक्षण।'

नरेन्द्र 'कौपीनपंचकम्' शेष करते हैं—

देहादिभावं परिवर्त्तयन्तः स्वात्मानम् आत्मन्यवलोकयन्तः ।
नान्तं न मध्यं न बहिः स्मरन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥
ब्रह्माक्षरं पावनम् उच्चरन्तो, ब्रह्माऽहमस्मीति विभावयन्तः ।
भिक्षाशिनो दिक्षु परिभ्रमन्तः, कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः ॥[1]

नरेन्द्र फिर और गा रहे हैं—

परिपूर्णमानन्दम्।
अंगविहीनं स्मर जगन्निधानम्।
श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह, वाचम्।
वागतीतं प्राणस्य प्राणं परं वरेण्यम्।[2]

श्रीरामकृष्ण *(नरेन्द्र के प्रति)*— और वही वाला 'जो कुछ है सो तू ही है।'

---

1 जो सदा वेदान्तवाणी में ही रमण करता है, भिक्षा के अन्न मात्र से सन्तुष्ट रहता है, जो शोकरहित अन्तःकरण से विचरण करता है, वह कौपीनधारी ही केवल भाग्यवान् है।

जो वृक्ष के तले ही आश्रय लेता है, दोनों हाथों को ही भोजन-पात्र बनाता है और गुदड़ी (कन्था) की भाँति धन को भी तुच्छ दृष्टि से देखता है, वही कौपीनधारी केवल भाग्यवान् है।

जो स्वानन्द भाव में परितुष्ट रहता है, जो सारी इन्द्रियों की वृत्तियों को शान्त कर लेता है, रात-दिन ब्रह्म में ही जो रमण करता है, वही कौपीनधारी केवल भाग्यवान् है।

जो देह आदि के भावों को बदल लेता है, स्व-आत्मा को आत्मा में देखने लग जाता है, जो न अन्त, न मध्य और न बाहिर की स्मृति करता है, वही कौपीनधारी केवल भाग्यवान् है।

जो पावन ब्रह्म अक्षर का उच्चारण करता है, और 'मैं ब्रह्म हूँ' यह भावना करता है, भिक्षा के अन्न को खाता हुआ सब तरफ जो विचरण करता है, वह कौपीनधारी ही केवल भाग्यवान् है।

2 अंग विहीन उस जगत के निधान को स्मरण कर। वे कर्ण के कर्ण हैं, मन के मन हैं और वाणी के वाणी हैं। वे वाणी से अतीत, प्राण के प्राण और परम वरण करने योग्य हैं।

नरेन्द्र उसी गाने को ही गा रहे हैं—

तुझ से हम ने दिल को लगाया, जो कुछ है सो तू ही है।
एक तुझ को अपना पाया, जो कुछ है सो तू ही है।
सब के मकान दिल को यकीन तू, कौन-सा दिल है जिसमें नहीं तू।
हरएक दिल में है तू समाया, जो कुछ है सो तू ही है।
क्या मलायक क्या इनसान, क्या हिन्दु क्या मुसलमान,
जैसे चाहे तूने बनाया, जो कुछ है सो तू ही है।
काबा में क्या और दयेर में क्या, तेरी परस्तिश होगी सब जां,
आगे तेरे सिर सबों ने झुकाया, जो कुछ है सो तू ही है।
अर्श से लेकर फरश ज़मीं तक, और ज़मीं से अर्श वरी तक,
जहाँ मैं देखा तू ही नज़र आया, जो कुछ है सो तू ही है।
सोचा समझा देखा भाला, तुझ जैसा न कोई ढूँढ निकाला,
अब यह समझ में ज़ाफर की आया, जो कुछ है सो तू ही है।

'हर एक दिल में'— यह वाणी सुनकर ठाकुर ने इशारा करके बतलाया कि वे प्रत्येक के हृदय में हैं, वे अन्तर्यामी हैं। 'जहाँ मैंने देखा तू ही नज़र आया, जो कुछ है सो तू ही है!' हीरानन्द यह सुनकर नरेन्द्र से कह रहे हैं,— सब तू ही है; अब तू-हूँ, तू-हूँ। मैं नहीं, तुम!

नरेन्द्र— Give me one and I will give you a million. मुझे एक दो तो फिर मैं अनायास ही दस लाख तुम्हें दे दूँगा अर्थात् '1' (एक) के बाद '0' (शून्य) लगा-लगाकर। तुम ही मैं, मैं ही तुम, मेरे अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

यह कहकर नरेन्द्र अष्टावक्र-संहिता से कुछ श्लोक-आवृत्ति करने लगे। और फिर सब चुप बैठ गए।

श्रीरामकृष्ण *(हीरानन्द के प्रति, नरेन्द्र को दिखला कर)*— "जैसे नंगी तलवार लिए फिर रहा है।"

(मास्टर के प्रति, हीरानन्द को दिखला कर)— कैसा शान्त! ओझे के पास जैसे किंग कोबरा *(फणिहर साँप)* फण लटका कर चुपचाप रहता है।

चतुर्थ परिच्छेद

(ठाकुर की आत्मपूजा— गुह्यकथा— मास्टर, हीरानन्दादि संगे)

ठाकुर श्रीरामकृष्ण अन्तर्मुख। पास हीरानन्द और मास्टर बैठे हैं। कमरा नि:स्तब्ध है। ठाकुर के शरीर में अश्रुतपूर्व यन्त्रणा; भक्तगण जब-जब देखते हैं, तब उनके हृदय विदीर्ण हो जाते हैं। ठाकुर ने किन्तु सब को ही भुला कर रखा हुआ है। वे सहास्य बदन बैठे हैं।

भक्तों ने फूल और मालाएँ ला कर दी हैं। ठाकुर के हृदय के मध्य में नारायण हैं; लगता है, उन्हीं की पूजा कर रहे हैं। अभी फूल लेकर मस्तक पर रख रहे हैं! फिर कण्ठ पर, हृदय पर, नाभि पर। एक बालक जैसे फूल लेकर खेल कर रहा है।

ठाकुर को जब ईश्वरीय भाव उपस्थित होता है, तब कहते हैं कि शरीर के मध्य महावायु ऊर्ध्वगामी हो रहा है। सर्वदा कहते हैं— महावायु चढ़ने पर ईश्वर की अनुभूति होती है। अब मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— वायु कब चढ़ गई, पता नहीं।

"अब बालकभाव है। तभी फूल लेकर इस प्रकार कर रहा हूँ। क्या देख रहा हूँ, जानते हो? शरीर है जैसे बाँस की खपचियों का बना हुआ और कपड़े से मढ़ा हुआ, वही हिलडुल रहा है। भीतर कोई है, इसी कारण हिलडुल रहा है।

"जैसे कद्दू से गूदा-बीज निकाल कर फैंक दिए हैं। भीतर काम आदि आसक्ति कुछ भी नहीं है। भीतर सब साफ है। और..."

ठाकुर को बोलने में कष्ट हो रहा है। बड़े दुर्बल हैं। ठाकुर क्या बोलना चाहते हैं, मास्टर झट से अन्दाजा करके कहते हैं—

"और अन्तर में आप भगवान देख रहे हैं।"

श्रीरामकृष्ण— अन्दर-बाहिर, दोनों जगह देख रहा हूँ— अखण्ड सच्चिदानन्द! सच्चिदानन्द ज़रा इस खोल (शरीर) का आश्रय करके इसके अन्दर-बाहिर रह रहे हैं! इसे ही तो देख रहा हूँ।

मास्टर और हीरानन्द यह ब्रह्मदर्शन-कथा सुन रहे हैं। कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर उनकी ओर दृष्टि करके बातें करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर और हीरानन्द के प्रति)*— तुम लोग सब 'आत्मीय' बोध होते हो। कोई पराया बोध नहीं होता।

(श्रीरामकृष्ण और योगावस्था— अखण्ड-दर्शन)

''देख रहा हूँ समस्त एक-एक गिलाफ में से सिर हिला रहे हैं।

''देख रहा हूँ, जब उनमें मन का योग हो जाता है, तब कष्ट एक तरफ पड़ा रहता है।*

''अब केवल देख रहा हूँ अखण्ड सच्चिदानन्द इस चमड़े (शरीर) से ढका हुआ है, और एक तरफ गले का यह घाव पड़ा हुआ है।''

ठाकुर फिर दोबारा चुप हो गए। कुछ क्षण पश्चात् फिर कह रहे हैं— जड़ की सत्ता चैतन्य ले लेता है, और चैतन्य की सत्ता जड़ ले लेता है। शरीर को रोग होने पर ऐसा बोध होने लगता है, मुझे रोग हुआ है।

हीरानन्द ने इसी बात को समझने का आग्रह प्रकाश किया। तभी मास्टर कहते हैं—

''गरम पानी में हाथ जल जाने पर कहता है, पानी से हाथ जल गया है। किन्तु यह बात नहीं है, हीट (heat)— गरमी से हाथ जला है।''

हीरानन्द *(ठाकुर के प्रति)*— आप बताएँ, भक्त क्यों कष्ट पाता है?

श्रीरामकृष्ण— देह का कष्ट।

ठाकुर फिर और क्या कहेंगे, दोनों ही प्रतीक्षा कर रहे हैं।

---

* यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥ (गीता 6 : 22)

[भावार्थ— जिस परमेश्वर-रूप लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता है और ईश्वर-प्राप्ति रूप जिस अवस्था में स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुःख से भी चलायमान नहीं होता है।]

ठाकुर कह रहे हैं—

"समझे?"

मास्टर आस्ते-आस्ते हीरानन्द से कहते हैं—

"लोकशिक्षा के लिए। दृष्टान्त। इतने देह के कष्ट में भी ईश्वर में मन का सोलह आना योग!

हीरानन्द— हाँ, जैसे Christ का crucifixion (क्राइस्ट का क्रॉस बलिदान)। तो भी यह mystery (रहस्य) ही है कि इन्हें यन्त्रणा क्यों है?

मास्टर— ठाकुर जैसे कहते हैं, माँ की इच्छा। यहाँ पर उनका इसी प्रकार का ही खेल है।

दोनों जन आस्ते-आस्ते बातें करते हैं। ठाकुर इशारे से हीरानन्द से पूछते हैं। हीरानन्द इशारा नहीं समझ सके तो ठाकुर दोबारा इशारा करके पूछते हैं—

'यह क्या कहता है?'

हीरानन्द— ये लोक-शिक्षा की बात कह रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण— यह बात तो केवल अनुमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। *(मास्टर और हीरानन्द के प्रति)*— अवस्था बदल रही है, मन में सोच रहा हूँ 'चैतन्य हो', यह बात सब को नहीं कहूँगा। कलि में पाप अधिक हैं, वे ही समस्त पाप आ पड़ते हैं।

मास्टर *(हीरानन्द के प्रति)*— समय बिना देखे नहीं कहेंगे। जिस-जिसका चैतन्य होने का समय होगा, उससे ही कहेंगे।

पंचम परिच्छेद

(प्रवृत्ति या निवृत्ति, हीरानन्द को उपदेश— निवृत्ति ही भली)

हीरानन्द ठाकुर के पाँव पर हाथ फेर रहे हैं। पास मास्टर बैठे हैं। लाटु और दो-एक भक्त बीच-बीच में कमरे में आ-जा रहे हैं। शुक्रवार,

23 अप्रैल, 1886 ईसवी। आज गुड फ्राइडे। समय प्राय: दोपहर का एक बजा है। हीरानन्द ने आज यहाँ पर ही अन्नप्रसाद पाया है। ठाकुर की एकान्त इच्छा हुई थी कि हीरानन्द यहाँ पर ठहरें।

हीरानन्द पाँव पर हाथ फेरते-फेरते ठाकुर के साथ बातें कर रहे हैं। वही मीठी-वाणी और मुख पर हँसी। जैसे बालक को समझा रहे हैं। ठाकुर अस्वस्थ हैं। डॉक्टर सर्वदा देख रहे हैं।

हीरानन्द— आप इतनी चिन्ता क्यों करते हैं? डॉक्टर पर विश्वास करने पर ही निश्चिन्ती। आप तो बालक हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— डॉक्टर पर विश्वास कहाँ? सरकार *(डॉक्टर)* ने कहा था, 'ठीक नहीं होगा।'

हीरानन्द— फिर इतना सोचना भी क्यों? जो होना होगा, हो जाएगा।

मास्टर *(हीरानन्द के प्रति, एक ओर को)*— ये अपने लिए नहीं सोचते। उनके शरीर की रक्षा भक्तों के *(कल्याण के)* लिए है।

बड़ी गर्मी है। और मध्याह्नकाल! खसखस की चिक टाँग दी गई है। हीरानन्द उठकर चिक को ठीक तरह से टाँग रहे हैं। ठाकुर देखते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(हीरानन्द के प्रति)*— तो फिर पाजामा भेज दिओ।

हीरानन्द ने कहा है कि उनके देश का पाजामा पहनने से ठाकुर आराम से रहेंगे। जभी ठाकुर स्मरण करवा रहे हैं ताकि वे पाजामा भेज दें।

हीरानन्द का खाना ठीक नहीं हुआ। भात थोड़ा खड़ा-खड़ा था। ठाकुर सुनकर बड़े दुखी हुए और बार-बार उनसे कह रहे हैं— जलपान करोगे? इतना असुख है, बात बोल नहीं सक रहे हैं; तथापि बार-बार पूछ रहे हैं।

और फिर लाटु से पूछ रहे हैं— तुझे भी वही भात खाना पड़ा था क्या?

ठाकुर कमर में धोती नहीं रख पा रहे हैं, प्राय: बालकवत् दिगम्बर हुए ही रहते हैं। हीरानन्द के संग में दो ब्राह्म भक्त आए हैं। तभी धोती को बार-बार कमर के पास खींचते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(हीरानन्द के प्रति)*— धोती खुल जाने पर क्या तुम लोग असभ्य कहते हो?

हीरानन्द— आपको उससे क्या? आप तो बालक हैं।

श्रीरामकृष्ण *(एक ब्राह्म भक्त प्रियनाथ की ओर उंगली दिखाकर)*— वे कहते हैं।

हीरानन्द अब विदा ग्रहण करेंगे। वे दो-एक दिन कलकत्ता में रहकर फिर दोबारा सिन्ध प्रान्त में जाएँगे। वहाँ पर उनका कार्य है। दो संवाद-पत्रों के वे सम्पादक हैं। 1884 ईसवी से चार वर्ष तक वह कार्य किया था। संवाद-पत्रों का नाम है— सिन्ध टाइम्स (Sind times) तथा सिंध सुधार (Sind Sudhar)। हीरानन्द ने 1883 ईसवी में बी०ए० की डिग्री ली थी। वे सिन्धवासी हैं। कलकत्ता में पढ़ाई की थी। वे श्रीयुक्त केशवसेन का सर्वदा दर्शन और उनके साथ सर्वदा आलाप किया करते थे; ठाकुर श्रीरामकृष्ण के पास कालीबाड़ी में कभी-कभी आते रहते थे।

(हीरानन्द की परीक्षा— प्रवृत्ति या निवृत्ति)

श्रीरामकृष्ण *(हीरानन्द से)*— चलो, वहाँ पर ना ही जाओ तो?

हीरानन्द *(सहास्य)*— वाह! वहाँ पर और कोई नहीं है ना! और फिर नौकरी जो करता हूँ।

श्रीरामकृष्ण— कितना महीना पाते हो?

हीरानन्द *(सहास्य)*— ऐसे कामों में वेतन कम होता है।

श्रीरामकृष्ण— कितना?

हीरानन्द हँसने लगे। ठाकुर फिर कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण— यहाँ पर ही रहो ना?

हीरानन्द चुप किए रहे।

श्रीरामकृष्ण— कर्म में क्या होगा?

हीरानन्द चुप किए रहे।

हीरानन्द ने कुछ थोड़ी-सी और बातों के बाद विदा ली।

श्रीरामकृष्ण— कब जाओगे?

हीरानन्द— परसों सोमवार को देश जाऊँगा। सोमवार प्रातः आकर मिलूँगा।

षष्ठ परिच्छेद

(मास्टर, नरेन्द्र, शरत् आदि)

मास्टर ठाकुर के पास बैठे हैं। हीरानन्द अभी-अभी चले गए हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— खूब भला है; है ना?

मास्टर— जी हाँ, स्वभाव बड़ा ही मधुर है।

श्रीरामकृष्ण— कहता है, ग्यारह सौ कोस[1] है। इतनी दूर से देखने आया!

मास्टर— जी हाँ, खूब प्यार बिना हुए ऐसा नहीं होता।

श्रीरामकृष्ण— उसकी बड़ी इच्छा है कि मुझे वहाँ ले जाए।

मास्टर— जाने में बड़ा कष्ट होगा। रेल में 4-5 दिन का रास्ता है।

श्रीरामकृष्ण— तीनों[2] पास है!

मास्टर— जी, हाँ।

ठाकुर थोड़ा श्रान्त हो गए हैं। विश्राम करेंगे।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— पाखि[3] खोल दो और मादुर बिछा दो।

ठाकुर खड़खड़ी[4] की पाखि खोलने को कह रहे हैं। बहुत गर्मी है, जभी बिस्तर पर मादुर (पतली चटाई) बिछा देने के लिए कह रहे हैं।

मास्टर हवा कर रहे हैं। ठाकुर को तनिक तन्द्रा आई।

श्रीरामकृष्ण *(थोड़ी-सी निद्रा के बाद, मास्टर के प्रति)*— क्या नींद आई थी?

मास्टर— जी, ज़रा-सी आई थी।

---

1 कोस = दो मील का एक कोस अर्थात् 22 सौ मील से आया है।

2 युनिवर्सिटी की तीन उपाधियाँ

3 पाखि = खड़खड़ी खोलने का डण्डा या रस्सी।

4 खड़खड़ी = खिड़की में रोशनी और हवा रोकने के लिए सीधे लगे तख्ते।

नरेन्द्र, शरत् और मास्टर नीचे के हॉल कमरे के पूर्व की ओर बातें कर रहे हैं।

नरेन्द्र— कैसा आश्चर्य! इतने वर्ष पढ़कर भी विद्या नहीं आती; कैसे लोग कहते हैं कि दो दिन साधन किया है, भगवान-लाभ होगा! भगवान-लाभ क्या इतना सहज है?

(शरत् के प्रति) तुझे शान्ति हो गई है; मास्टर महाशय को शान्ति हो गई है, किन्तु मेरा कुछ नहीं हुआ।

मास्टर— तो फिर तुम सानी करो, मैं राजबाड़ी (महल) में जाता हूँ; अथवा नहीं तो मैं राजबाड़ी में जाता हूँ और तुम सानी करो! *(सब का हास्य)*।

नरेन्द्र *(सहास्य)*— वह कहानी* उन्होंने *(परमहंसदेव ने)* सुनी थी और सुनते-सुनते हँसे थे।

सप्तम परिच्छेद

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और नरेन्द्रादि भक्तों की मजलिस)

शाम हो गई। ऊपर के हॉलकमरे में अनेक भक्त बैठे हैं। नरेन्द्र, शरत्, शशी, लाटु, नित्यगोपाल, केदार, राम, मास्टर, सुरेश— अनेक ही हैं।

सबसे पहले नित्यगोपाल आए हैं और ठाकुर को देखते ही उनके चरणों में मस्तक देकर वन्दना की। बैठने के बाद नित्यगोपाल बालक की न्यायीं कहते हैं, केदार बाबू आए हैं।

केदार बहुत दिन पश्चात् ठाकुर को मिलने आए हैं। वे विषयकर्म *(सरकारी काम)* से ढाका में थे। वहाँ पर ठाकुर के रोग की बात सुन कर आए हैं। केदार कमरे में प्रवेश करते ही देखते हैं कि ठाकुर भक्तों के संग संभाषण कर रहे हैं।

---

* कहानी प्रह्लाद-चरित्र की है। प्रह्लाद के पिता ने षण्ड और अमर्क— दो गुरुओं को बुलवा भेजा था। राजा पूछेंगे कि उन्होंने प्रह्लाद को क्यों हरिनाम सिखाया है? उन्हें राजा के पास जाते हुए भय हुआ था। जभी षण्ड ने अमर्क से यही बात कही थी।

केदार ने ठाकुर की पदधूलि अपने मस्तक पर ग्रहण की और आनन्द से वही धूलि लेकर सब को बाँट रहे हैं। भक्तगण सिर झुका कर वह धूलि ग्रहण कर रहे हैं।

शरत् को देने जा रहे थे, उसी समय उन्होंने स्वयं ही ठाकुर की चरणधूलि ले ली। मास्टर हँसे। ठाकुर भी मास्टर की ओर देखकर हँसे। भक्तगण नि:शब्द बैठे हैं। ठाकुर का भाव-लक्षण दिख रहा है। बीच-बीच में निश्वास छोड़ रहे हैं, जैसे भाव दबा रहे हैं। अन्त में केदार को इगिंत कर रहे हैं— गिरीश घोष के साथ तर्क करो। गिरीश कान-नाक मलते हैं और कहते हैं—

'महाशय कान-नाक रगड़ता हूँ। पहले जानता नहीं था कि आप कौन हैं! तब तर्क रहता था; वह एक और था।'
(ठाकुर का हास्य)।

श्रीरामकृष्ण नरेन्द्र के प्रति उँगली से निर्देश करके केदार को दिखा रहे हैं और कह रहे हैं—

''सब त्याग किया है! *(भक्तों के प्रति)* केदार ने नरेन्द्र से कहा था, अब तर्क करो, विचार करो; किन्तु अन्त में हरिनाम में लोट लगानी पड़ेगी। *(नरेन्द्र के प्रति)* केदार के पाँव की धूलि लो।''

केदार *(नरेन्द्र के प्रति)*— उनके पाँव की धूलि लो, उससे ही होगा।

सुरेन्द्र भक्तों के पीछे बैठे हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण ईषत् हास्य करके उनकी ओर ताकते हैं। केदार से कहते हैं, 'आह कैसा स्वभाव है!' केदार ठाकुर का इशारा समझ कर सुरेन्द्र की ओर अग्रसर होकर बैठ गए।

सुरेन्द्र ज़रा अभिमानी है। भक्तों में से कोई-कोई बागान (काशीपुर) के खर्च के लिए बाहिर भक्तों के पास अर्थसंग्रह करने गए थे। तभी बड़ा अभिमान हुआ है। सुरेन्द्र इस बागान का अधिकांश खर्च देते हैं।

सुरेन्द्र *(केदार के प्रति)*— इतने साधुओं के निकट क्या मैं बैठ सकता हूँ! और फिर कोई-कोई (नरेन्द्र) तो कई दिनों तक, संन्यासी के वेश में बुद्ध-गया-दर्शन करने गए थे— बड़े-बड़े साधु देखने।

ठाकुर श्रीरामकृष्ण सुरेन्द्र को शान्त कर रहे हैं। कह रहे हैं, ''हाँ, वे बच्चे

हैं; ठीक तरह समझ नहीं सकते।"

सुरेन्द्र *(केदार के प्रति)*— गुरुदेव क्या जानते नहीं, किसका कैसा भाव है! वे रुपए से तुष्ट नहीं; वे हैं भाव से तुष्ट।

ठाकुर सिर हिलाकर सुरेन्द्र की बात पर हामी भर रहे हैं। 'भाव से तुष्ट', यह बात सुनकर केदार भी आनन्द-प्रकाश कर रहे हैं।

भक्त खाना लाए और ठाकुर के सामने रख दिया। ठाकुर ने जिह्वा से कणिकामात्र छू लिया। सुरेन्द्र के हाथ में प्रसाद देने के लिए कहा और उन्हें (सुरेन्द्र को) अन्य सभी को देने को कहा।

सुरेन्द्र नीचे गए। नीचे प्रसाद-वितरण होगा।

श्रीरामकृष्ण *(केदार के प्रति)*— तुम जाकर समझा दो। जाओ एकदम— बकझक करने से मना करो।

मणि हवा कर रहे हैं। ठाकुर बोले, "तुम नहीं खाओगे?" मणि को भी नीचे प्रसाद पाने के लिए भेज दिया।

सन्ध्या हुई कि हुई! गिरीश और श्री म तालाब के किनारे टहल रहे हैं।

गिरीश— अजी, तुम ठाकुर के विषय में शायद कुछ लिख रहे हो?

श्री म— किसने बताया?

गिरीश— मैंने सुना है। मुझे दोगे?

श्री म— ना; मैं अपने-आप बिना समझे किसी को नहीं दूँगा— वह मैंने अपने लिए लिखा है। औरों के लिए नहीं।

गिरीश— कहते क्या हो!

श्री म— मेरी देह जाने के समय पाओगे।

(ठाकुर अहेतुक कृपासिंधु— ब्राह्मभक्त श्रीयुक्त अमृत)

सन्ध्या के पश्चात् ठाकुर के कमरे में प्रकाश कर दिया गया है। ब्राह्मभक्त श्रीयुक्त अमृत (वसु) देखने आए हैं। ठाकुर उनसे मिलने के लिए उत्सुक हो गए थे। मास्टर और दो-चार जन भक्त बैठे हुए हैं। ठाकुर के सम्मुख केले के पत्ते पर मोतिया और जूही के फूलों की माला रखी है।

कमरा निःस्तब्ध— जैसे एक महायोगी निःशब्द योग में बैठा है। ठाकुर माला लेकर बार-बार उठा रहे हैं— जैसे गले में पहनेंगे।

अमृत *(स्नेहपूर्ण स्वर में)*— माला पहना दूँ?

माला पहन ली गई है, ठाकुर ने अमृत के साथ अनेक बातें कीं। अमृत विदा लेंगे।

श्रीरामकृष्ण— तुम फिर आना।

अमृत— जी, आने की तो बहुत इच्छा है। काफी दूर से आना होता है— इसीलिए हर समय आ नहीं सकता।

श्रीरामकृष्ण— तुम आओ। यहाँ से गाड़ी-भाड़ा ले लेना।

अमृत के प्रति ठाकुर का अहेतुक स्नेह देखकर सब अवाक् हैं!

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण और भक्त के स्त्री-पुत्र)

अगला दिन शनिवार, 24 अप्रैल। एक भक्त आए हैं। संग में पत्नी और एक 7 वर्ष का लड़का है। एक वर्ष हुआ उनकी एक 8 वर्षीय सन्तान ने देह-त्याग किया है। स्त्री उसी समय से पागल-जैसी हो रही है। इसीलिए ठाकुर श्रीरामकृष्ण उन्हें कभी-कभी आने के लिए कहते हैं।

रात को श्री श्री माता ठाकुराणी ऊपर के हॉल कमरे में ठाकुर को खिलाने के लिए आई हैं। उसी भक्त की बहू रोशनी लेकर संग-संग आई हैं।

खाते-खाते ठाकुर ने उनसे घर-गृहस्थी की अनेक बातें पूछीं और कुछ दिन उसी बागान में आकर श्री श्री माँ के पास रहने के लिए कहा। वैसा होने पर शोक काफी कम हो जाएगा। उनकी एक गोद की कन्या थी। पीछे श्री श्री माँ उसको मानमयी कहकर पुकारा करती थीं। ठाकुर इगिंत से कह रहे हैं, उसको भी ले आओगी।

ठाकुर-आहार के पश्चात् उस भक्त की पत्नी ने स्थान साफ कर दिया। ठाकुर के संग कुछ क्षण कथावार्ता के बाद श्री श्री माँ जब नीचे के कमरे में गईं, वे भी ठाकुर को प्रणाम करके उन्हीं के संग ही चली गईं।

रात्रि के प्राय: नौ बजे हैं। ठाकुर भक्त के संग उसी कमरे में बैठे हैं। फूल की माला पहने हुए हैं। मणि हवा कर रहे हैं।

ठाकुर गले से माला निकाल कर हाथ में लेकर अपने मन में कुछ बोल रहे हैं। तत्पश्चात् जैसे प्रसन्न होकर मणि को माला दे दी।

भक्त की शोक–सन्तप्ता पत्नी को ठाकुर ने श्री श्री माँ के पास उसी बागान में आकर कुछ दिन रहने के लिए कहा है, मणि ने समस्त सुन लिया है।

सुरेन्द्रनाथ मित्र (1850 – 1890)

बराहनगर मठ

ठाकुर श्रीरामकृष्ण के शिष्य

परिशिष्ट

ठाकुर श्रीरामकृष्ण भक्त-हृदय में

प्रथम परिच्छेद

(श्रीरामकृष्ण का प्रथम मठ, नरेन्द्रादि की साधना और तीव्र वैराग्य)

आज वैशाखी पूर्णिमा— 7 मई, 1887 ईसवी। शनिवार, अपराह्न। नरेन्द्र मास्टर के साथ बातें कर रहे हैं। कलकत्ता, गुरुप्रसाद चौधुरी लेन में, एक बाड़ी के नीचे के कमरे में, तख्तपोश के ऊपर दोनों बैठे हुए हैं।

मणि उसी कमरे में पढ़ते-लिखते हैं। Merchant of Venice, Comus, Blackie's self-culture (मरचेंट ऑफ वेनिस, कोमस, ब्लैकीज सैल्फकल्चर)— ये ही समस्त पुस्तकें पढ़ रहे हैं। पाठ तैयार कर रहे हैं, स्कूल में पढ़ाना होगा।

कई मास हो गए हैं, ठाकुर श्रीरामकृष्ण भक्तों को अकूल, अथाह जलराशि में डूबते छोड़कर स्वधाम को चले गए हैं। अविवाहित और विवाहित भक्तगण ठाकुर श्रीरामकृष्ण के सेवाकाल में जिस स्नेहसूत्र में बन्ध गए हैं, वह तो फिर छिन्न होने वाला नहीं है। हठात् कर्णधार के अदर्शन से आरोहियों को भय चाहे हो रहा है, किन्तु सब ही तो एक-प्राण हैं। परस्पर मुख देख रहे हैं। अब परस्पर न देखने से वे नहीं बचेंगे। अन्य जनों के साथ बातचीत अब और अच्छी नहीं लगती। उनकी बातों के सिवा और कुछ अच्छा नहीं लगता। सब सोचते हैं, 'उनको क्या फिर

नहीं देख सकेंगे ? वे तो कह गए हैं, व्याकुल होकर पुकारने से, आन्तरिक पुकार सुनकर ईश्वर दिखाई देते हैं।' कह गए हैं, 'आन्तरिक होने पर वे सुनेंगे ही सुनेंगे।' जब निर्जन में रहते हैं, तब वही आनन्दमय मूर्ति याद आती है। मार्ग में चलते हैं तो उद्देश्यहीन, अकेले रोते-रोते फिरते हैं। ठाकुर ने तभी तो लगता है मणि से कहा था—

''तुम लोग रास्ते में रोते-रोते फिरोगे, जभी तो शरीर-त्याग करते हुए किंचित् कष्ट हो रहा है!''

कोई विचार कर रहा है, वे तो चले गए हैं, और मैं तो अभी तक बचा हुआ हूँ। इस अनित्य संसार में अभी तक भी रहने की इच्छा है! अपने मन में हो तो शरीर त्याग कर सकता हूँ, परन्तु वैसा कहाँ करता हूँ!

छोकरे भक्तों ने काशीपुर के बागान में रहकर रात-दिन सेवा की थी। उनके अदृष्ट हो जाने पर वे अनिच्छा से ही चाबी वाली गुड़िया की भाँति अपने-अपने घरों में लौट गए। ठाकुर ने किसी को भी संन्यासी का बाहिरी चिह्न (गेरुआ वस्त्र इत्यादि) धारण करने अथवा गृही की उपाधि त्याग करने का अनुरोध नहीं किया था। उन लोगों ने दत्त, घोष, चक्रवर्ती, घोषाल इत्यादि उपाधि सहित अपना परिचय, ठाकुर के अन्तर्धान होने के पश्चात् भी कुछ दिन तक दिया था। किन्तु ठाकुर उन लोगों को भीतर से त्यागी कर गए थे।

दो-तीन जन के लिए लौटने को घर नहीं था; सुरेन्द्र ने उनसे कहा, भाई तुम और कहाँ पर जाओगे; एक वासस्थान किया जाए। तुम लोग भी रहोगे और हम लोगों को भी शान्ति पाने के लिए एक स्थान चाहिए; उसके बिना गृहस्थ में हम लोग इस प्रकार रात-दिन कैसे रहेंगे ? वहाँ पर तुम जाकर रहोगे। मैं काशीपुर-बागान में ठाकुर की सेवा के लिए यत्किंचित् दिया करता था। अब उससे ही रहने-खाने का खर्चा चलेगा। सुरेन्द्र पहले तो दो-एक मास तीस रुपए देते रहे। क्रमश: जैसे-जैसे मठ में और-और भाई आने लगे, पचास-साठ देने लगे थे। अन्त में सौ रुपए तक देते थे।

बराहनगर में जो घर लिया गया था, उसका भाड़ा और टैक्स ग्यारह रुपए था। रसोइए ब्राह्मण का छः रुपए, और बाकी दाल-भात का खर्चा।

बूढ़े गोपाल, लाटु और तारक के जाने के लिए घर नहीं था। छोटे गोपाल काशीपुर-बागान से ठाकुर की गद्दी तथा और सामान लेकर उस निवास में पहले गए। संग पाचक ब्राह्मण और शशी। रात को शरत् आकर रहे। तारक वृन्दावन गए थे; कुछ दिनों में वे भी आकर मिल गए। नरेन्द्र, शरत्, शशी, बाबूराम, निरंजन, काली— ये लोग पहले तो बीच-बीच में घर से आ जाया करते थे। राखाल, लाटु, योगीन और काली ठीक उसी समय वृन्दावन गए थे। काली एक मास के मध्य, राखाल कई मास बाद, योगीन एक वर्ष पीछे लौटे।

कुछ दिनों के मध्य नरेन्द्र, राखाल, निरंजन, शरत्, शशी, बाबूराम, योगीन, काली, लाटु रह गए और फिर घर नहीं गए। क्रमशः प्रसन्न और सुबोध आकर रहने लगे। गंगाधर और हरि भी पीछे आकर मिल गए।

धन्य सुरेन्द्र! यह प्रथम मठ तुम्हारे हाथों से गढ़ा गया! तुम्हारी साधु इच्छा से ही यह आश्रम बना। तुम्हें यन्त्रस्वरूप बनाकर ठाकुर श्रीरामकृष्ण ने अपने मूलमंत्र— कामिनी-कांचन-त्याग— को मूर्तिमान किया; कौमार-वैराग्यवान, शुद्धात्मा नरेन्द्रादि भक्तों के द्वारा फिर दोबारा सनातन हिन्दु धर्म को जीव के सम्मुख प्रकाशित किया। भाई, तुम्हारे ऋण को कौन भूलेगा? मठ के भाई मातृहीन बालक की न्यायीं रहते हुए तुम्हारी प्रतीक्षा किया करते हैं, तुम कब आओगे। आज घर का भाड़ा देने में सब रुपया चला गया है— आज खाने के लिए कुछ भी नहीं है— कब तुम आओगे— आकर भाइयों के खाने के लिए बन्दोबस्त करोगे! तुम्हारा अकृत्रिम स्नेह स्मरण कर कौन आँसू नहीं बहाएगा?

(नरेन्द्रादि की ईश्वर-जन्य व्याकुलता और प्रायोपवेशन प्रसंग)

कलकत्ता के उसी नीचे के कमरे में नरेन्द्र मणि के साथ बातें करते हैं। नरेन्द्र अब भक्तों के नेता हैं। मठ के सब के अन्तर में तीव्र वैराग्य है। भगवान-दर्शन के लिए छटपट करते हैं।

नरेन्द्र *(मणि के प्रति)*— मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। अब आपके साथ

बातें कर रहा हूँ, इच्छा होती है कि उठकर चला जाऊँ।

नरेन्द्र कुछ क्षण चुप किए रहे। कुछ क्षण पश्चात् फिर कह रहे हैं— प्रायोपवेशन करूँ?

मणि— वह बड़ा अच्छा है। भगवान के लिए तो सब कुछ ही किया जाता है।

नरेन्द्र— यदि भूख को सम्भाल न सका?

मणि— तब फिर खा लेना, और फिर दोबारा लगना।

नरेन्द्र फिर कुछ क्षण चुप किए रहे।

नरेन्द्र— लगता है, भगवान नहीं हैं। जितनी भी प्रार्थना करता हूँ, एक बार भी तो जवाब नहीं पाता।

''कितना ही देखा है, मन्त्र सुनहरी अक्षरों में चमक रहा है।

''कितना काली-रूप! और भी कितने और-और रूप देखे हैं। तब भी शान्ति नहीं होती।

''छह पैसे देंगे?''

नरेन्द्र शोभाबाजार से सवारी गाड़ी पर बराहनगर-मठ जा रहे हैं, तभी छह पैसे चाहिएँ।

देखते-देखते सातु (सातकड़ि) गाड़ी में आ उपस्थित हुए। सातु नरेन्द्र के हमउम्र हैं। वे मठ के छोकरों को बड़ा प्यार करते हैं और सर्वदा मठ में जाते हैं। उनका घर बराहनगर के मठ के पास है। कलकत्ता के ऑफिस में काम करते हैं। उनकी अपनी गाड़ी है। उसी गाड़ी से ऑफिस से होकर आए हैं।

नरेन्द्र ने मणि को पैसे लौटा दिए, बोले— अब तो सातु के संग जाऊँगा। आप कुछ खिलाएँ। मणि ने कुछ जलपान करवाया।

मणि भी उसी गाड़ी में बैठ गए, उनके संग मठ जाएँगे। सन्ध्या के समय सब मठ पहुँचे। मठ के भाई किस तरह दिन काट रहे हैं, और साधना कर रहे हैं, मणि देखेंगे। ठाकुर श्रीरामकृष्ण पार्षदों के हृदय में किस प्रकार प्रतिबिम्बित हो रहे हैं, मणि बीच-बीच में मठ में यह दर्शन

करने जाया करते हैं। मठ में निरंजन नहीं हैं। उनकी एकमात्र माँ हैं, उनको देखने घर गए हैं। बाबूराम, शरत् और काली श्री पुरीक्षेत्र गए हैं। वहाँ पर और भी कुछ दिन रह कर श्री श्री रथयात्रा दर्शन करेंगे।

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण का विद्या का संसार और नरेन्द्र का तत्त्वावधान)

नरेन्द्र मठ के भाइयों की देखरेख कर रहे हैं। प्रसन्न कई दिन से साधन कर रहे थे। नरेन्द्र ने उनके निकट भी अनशन की बात उठाई थी। नरेन्द्र कलकत्ता चले गए हैं, देखकर उस अवसर पर वे कहीं निरुद्देश्य चले गए। नरेन्द्र ने आकर सब सुना। राजा (राखाल) ने क्यों उसको जाने दिया? किन्तु राखाल नहीं थे। वे मठ से दक्षिणेश्वर के बाग में थोड़ा टहलने चले गए थे। राखाल को सब ही राजा कहकर पुकारते हैं। अर्थात् 'राखालराज', श्रीकृष्ण का और एक नाम।

नरेन्द्र— राजा आए ज़रा एक बार, डाँटूँगा। क्यों उसे जाने दिया? *(हरीश के प्रति)*— तुम तो पाँव फैलाकर लैक्चर दे रहे थे; उसको रोक नहीं सके?

हरीश *(अति मृदुस्वर में)*— तारक दा ने कहा था, तो भी वह चला गया।

नरेन्द्र *(मास्टर के प्रति)*— देखो, मेरी बड़ी मुश्किल है। यहाँ पर भी एक माया के संसार में पड़ गया हूँ। फिर वह लड़का कहाँ गया?

राखाल दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी से लौट आए हैं। भवनाथ उनको साथ ले गया था।

राखाल से नरेन्द्र ने प्रसन्न की बात कही। प्रसन्न ने नरेन्द्र को एक पत्र लिखा था; वही पत्र पढ़ा जा रहा है। पत्र में इस प्रकार लिखा है— 'मैं पैदल वृन्दावन जा रहा हूँ। यहाँ पर रहना मेरे लिए विपद है। यहाँ पर भाव का परिवर्तन होता है; पहले बाप, माँ और घर के सब का स्वप्न देखा करता था। फिर माया की मूर्ति देखी। दो बार बहुत कष्ट पाया है; घर जाना पड़ा था। इसीलिए अब दूर जा रहा हूँ। परमहंसदेव ने मुझे कहा था, "तेरे घरवाले सब कुछ कह सकते हैं; उनका विश्वास न कर।"

राखाल कहते हैं, वह इन्हीं सब कारणों से चला गया है। और कहता था—
'नरेन्द्र प्राय: ही घर जाता है— माँ और भाई-बहनों की खबर लेने; और मुकद्दमा करने। भय होता है कि कहीं पीछे उसकी देखा-देखी फिर मेरी भी घर जाने की इच्छा न हो जाए।'

नरेन्द्र यह बात सुनकर चुप रहे।

राखाल तीर्थ जाने की बातें करते हैं। कहते हैं—
'यहाँ पर रहकर तो कुछ भी नहीं हुआ। उन्होंने जो कहा था, भगवान-दर्शन, वह कहाँ हुआ?'

राखाल लेटे हुए हैं। पास में कोई-कोई भक्त लेटे हुए हैं, कोई बैठे हुए हैं।

राखाल— चल, नर्मदा पर घूमने चलें।
नरेन्द्र— घूमने से क्या होगा? क्या ज्ञान होगा? जभी ज्ञान-ज्ञान कर रहा है?
एक भक्त— तो फिर संसार-त्याग क्यों किया?
नरेन्द्र— राम को नहीं पाया तो इसलिए श्याम के संग रहूँगा— और लड़के-लड़कियों का बाप बनूँगा— यह कैसी बात!

यह कहकर नरेन्द्र उठकर चले गए। राखाल लेटे हुए हैं।

कुछ क्षण परे नरेन्द्र फिर आकर बैठ गए।

एक भाई हँसी-मज़ाक कर रहे हैं— मानो ईश्वर के अदर्शन से बड़े कातर हो रहे हैं—

"अरे भाई मुझे एक छुरी ला दे रे!— और (जीने का) काम नहीं है। यन्त्रणा और सह्य नहीं हो रही।"

नरेन्द्र *(गम्भीर भाव से)*— यहाँ पर ही है, हाथ बढ़ा कर ले ले। *(सब का हास्य)*।

प्रसन्न की बात फिर उठी।

नरेन्द्र— यहाँ पर भी माया है! तो फिर संन्यास क्यों?
राखाल— 'मुक्ति और उसका साधन' नामक पुस्तक में है, संन्यासियों का

एक साथ रहना ठीक नहीं है। 'संन्यासी नगर' की बात है।

शशी— मैं संन्यास-वन्यास कुछ नहीं मानता। मेरे लिए कोई स्थान अगम्य नहीं है। ऐसी जगह नहीं है कि जहाँ पर मैं रह नहीं सकता।

भवनाथ की बात उठी। भवनाथ की स्त्री को बड़ी संकटापन्न पीड़ा हुई थी।

नरेन्द्र *(राखाल के प्रति)*— भवनाथ की औरत, लगता है, बच गई है; तभी वह फुर्ती करके दक्षिणेश्वर में टहलने के लिए गया था।

कांकुड़गाछी के बागान की बात हुई। रामबाबू मन्दिर बनवाएँगे।

नरेन्द्र *(राखाल के प्रति)*— राम बाबू ने मास्टर महाशय को एक ट्रस्टी बनाया है।

मास्टर *(राखाल के प्रति)*— कहाँ, मैं तो कुछ नहीं जानता।

सन्ध्या हो गई। ठाकुर श्रीरामकृष्ण के कमरे में शशी ने धूना दिया। अन्य सब कमरों में जितनी ठाकुरों की तस्वीरें थीं, वहाँ पर धूना दिया और मधुरस्वर से नाम करते-करते प्रणाम किया।

अब आरती हो रही है। मठ के भाई तथा अन्यान्य भक्तगण सब हाथ जोड़कर खड़े आरती-दर्शन कर रहे हैं। कांसर-घण्टा बज रहा है। भक्तगण समस्वर में आरती का गाना उसी के संग-संग गा रहे हैं—

जय शिव ओ॓ंकार, भज शिव ओ॓ंकार।
ब्रह्मा विष्णु सदाशिव हर हर हर महादेव॥

नरेन्द्र ने इस गाने को आरम्भ किया है। काशीधाम में विश्वनाथ के सम्मुख यही गाना होता है।

मणि को मठ के भक्तों का दर्शन करके परम प्रीति प्राप्त हुई है।

मठ में खाना-पीना शेष होते-होते ग्यारह बज गए। भक्त जन सब लेट गए। उन्होंने बड़े प्यार से मणि को लिटाया।

रात्रि का दूसरा प्रहर। मणि को नींद नहीं आई। सोच रहे हैं, सब ही हैं; वही अयोध्या है, केवल राम नहीं हैं। मणि नि:शब्द उठ गए। आज वैशाखी पूर्णिमा। मणि एकाकी गंगातट पर विचरण करते हैं। ठाकुर श्रीरामकृष्ण की बातें सोच रहे हैं।

(नरेन्द्रादि मठ के भाइयों का वैराग्य और योगवाशिष्ठ-पाठ— संकीर्त्तनानन्द और नृत्य)

मास्टर शनिवार को आए हैं, बुधवार तक अर्थात् पाँच दिन मठ में रहेंगे। आज रविवार है। गृहस्थ भक्त प्रायः रविवार को मठ-दर्शन करने आते हैं। आजकल प्रायः 'योगवाशिष्ठ'-पाठ होता है। मास्टर ने ठाकुर श्रीरामकृष्ण से योगवाशिष्ठ की कुछ-कुछ वाणियाँ सुनी थीं। देह-बुद्धि रहते (योगवाशिष्ठ का) सोऽहम्-भाव आश्रय करने के लिए ठाकुर ने मना किया था और कहा था, सेव्यसेवक-भाव ही ठीक है! मास्टर देखेंगे कि मठ के भाइयों के साथ मिलता है कि नहीं। योगवाशिष्ठ के सम्बन्ध में ही बात उठा दी।

मास्टर— अच्छा, योगवाशिष्ठ में ब्रह्मज्ञान की बात कैसे है?

राखाल— क्षुधा, तृष्णा, सुख, दुःख— यह सब माया है। मन का नाश ही उपाय है।

मास्टर— मन के नाश के पश्चात् जो रहता है, वही ब्रह्म है। क्यों, ठीक है?

राखाल— हाँ।

मास्टर— ठाकुर भी यही बात ही कहते। नागा (तोतापुरी) ने उनको यही बात बताई थी। अच्छा, राम को क्या वशिष्ठ ने संसार करने के लिए कहा था? ऐसा कुछ इस ग्रन्थ में देखा है?

राखाल— कहाँ, अब तक तो ऐसा नहीं मिला। इसमें तो राम को अवतार ही नहीं मानते।

इसी प्रकार कथावार्ता हो रही है। अब नरेन्द्र, तारक तथा और एक भक्त गंगातीर से लौट आए। उनकी कोन्नगर में टहलने जाने की इच्छा थी। नौका नहीं मिली। वे आकर बैठ गए। योगवाशिष्ठ की बातें चलने लगीं।

नरेन्द्र *(मास्टर के प्रति)*— सब सुन्दर बातें हैं। लीला की बात जानते हैं आप?

मास्टर— हाँ, योगावाशिष्ठ में है, थोड़ा-थोड़ा-सा देखा है। लीला को ब्रह्मज्ञान हुआ था; है ना?

नरेन्द्र— हाँ, और इन्द्र-अहल्या संवाद? और विदुरथ राजा चाण्डाल बन गया?

मास्टर— हाँ, याद आ रहा है।

नरेन्द्र— वन का वर्णन तो कैसा सुन्दर है!*

(मठ के भाइयों का प्रतिदिन गंगा-स्नान और गुरुपूजा)

नरेन्द्रादि भक्तगण गंगास्नान करने जा रहे हैं। मास्टर भी स्नान करेंगे। धूप देख कर मास्टर ने छतरी ले ली। बराहनगर निवासी श्रीयुक्त शरत्चन्द्र भी इनके साथ ही स्नान करने जा रहे हैं। ये सदाचार-निष्ठ गृहस्थ ब्राह्मण युवक हैं। सर्वदा मठ में आते हैं। कुछ दिन पहले इन्होंने वैराग्य लेकर तीर्थों पर भ्रमण किया है।

मास्टर *(शरत् के प्रति)*— धूप तेज़ है!

नरेन्द्र— तो यह बोलो, छतरी लेता हूँ! *(मास्टर का हास्य)*।

भक्तगण अंगोछा कन्धे पर लिए मठ-मार्ग से चलकर परामाणिक घाट के

---

* किसी देश में पद्म नामक राजा और लीला नाम की उनकी सहधर्मिणी थी। लीला ने पति के अमरत्व की आकांक्षा से भगवती सरस्वती की आराधना करके यह वर प्राप्त कर लिया था कि उसके पति की जीवात्मा, देहत्याग के बाद भी, गृह-आकाश में अवरुद्ध रहे। पति की मृत्यु के पश्चात् लीला ने सरस्वती देवी को स्मरण किया। उन्होंने आविर्भूत होकर लीला को तत्त्व-उपदेश द्वारा 'जगत् मिथ्या है और ब्रह्म ही एकमात्र सत्य है', यह सुन्दर रूप से धारणा करवा दी। सरस्वती देवी बोलीं, 'तुम्हारे पद्म नामक स्वामी पूर्वजन्म में वशिष्ठ नामक एक ब्राह्मण थे— मात्र आठ दिन पहले ही उनका देहत्याग हुआ है— और अब उनकी जीवात्मा इस गृह में उपस्थित है,' और फिर अन्य एक स्थल पर विदुरथ नाम का राजा होकर अनेक वर्षों तक राज्य-भोग किया। यह सब माया के बल से सम्भव है। वास्तव में देश-काल कुछ नहीं है। तत्पश्चात् समाधि के बल से सरस्वती देवी के साथ वे सूक्ष्मदेह में उपरोक्त वशिष्ठ ब्राह्मण और विदुरथ राजा के राज्य में भ्रमण कर आईं। सरस्वती देवी की कृपा से विदुरथ को पूर्वस्मृति उदित हो गई। फिर उन्होंने एक युद्ध में प्राणत्याग करके अपनी जीवात्मा पद्मराजा के शरीर में प्रवेश कर ली।

विदुरथ राजा को चाण्डालत्व प्राप्ति नहीं हुई। लवण राजा को हुई थी। उन्होंने जादूगर के जादू के प्रभाव से एक मुहूर्त में ही सारा जीवन चाण्डालत्व अनुभव किया था। अहल्या नाम की किसी राजा की महिषी इन्द्र नामक किसी युवक की आसक्ति में पड़ गई थी।

उत्तर के घाट पर स्नान करते हैं। सब ने गेरुआ पहना हुआ है। आज है 26 वैशाख। प्रचण्ड धूप है।

मास्टर *(नरेन्द्र के प्रति)*— सर्दगर्म होने की तैयारी!

नरेन्द्र— आप लोगों का शरीर ही है वैराग्य का प्रतिबन्धक; क्यों? आपका, देवेनबाबू का—

मास्टर हँसने लगे और सोचने लगे, 'केवल क्या शरीर ही?' स्नान के बाद भक्तगण मठ में लौट आए और पाँव धोकर श्रीरामकृष्ण के कमरे में प्रवेश किया। प्रणामपूर्वक ठाकुर के पादपद्मों में एक-एक जन ने पुष्पांजलि दी।

पूजा के कमरे में आते हुए नरेन्द्र को थोड़ा विलम्ब हुआ था। गुरुमहाराज को प्रणाम करके फूल लेने लगे, तो देखते हैं पुष्पपात्र में फूल नहीं हैं। तब बोल उठे, फूल नहीं हैं। पुष्पपात्र में दो-एक बिल्व-पत्र थे, वे ही चन्दन में डुबोकर निवेदन किए। एक बार घण्टा-ध्वनि की। और फिर प्रणाम करके दानाओं के कमरे में जाकर बैठ गए।

(दानाओं का कमरा, ठाकुर-घर और काली तपस्वी का कमरा)

मठ के भाई अपने को दानव, दैत्य कहते हैं; वे लोग जिस कमरे में इकट्ठे बैठते हैं, उसी कमरे को 'दानवों का कमरा' ('दानादेर घर') कहते हैं। जो निर्जन में ध्यान, धारणा और पाठ आदि करते हैं, वे लोग सब से दक्षिण वाले कमरे में रहते हैं। द्वार बन्द करके काली उसी कक्ष में अधिकांश समय रहते हैं। इसी कारण मठ के भाई कहते हैं, 'काली तपस्वी का कमरा'! काली तपस्वी के कमरे के उत्तर में ही 'ठाकुर' का मन्दिर है। उसके उत्तर में ठाकुरों का नैवेद्य-कक्ष है। उसी कक्ष में खड़े होकर आरती दिखाई देती है और भक्तगण आकर ठाकुर को प्रणाम करते हैं। नैवेद्य-कक्ष के उत्तर में दानवों का कमरा है। यह कमरा खूब लम्बा है। बाहिर के भक्तों के आने पर इसी कमरे में उनकी अभ्यर्थना होती है। दानवों के कमरे के उत्तर में एक छोटी कोठरी है। भाई लोग उसे 'पान-घर' कहते हैं। यहाँ भक्तगण आहार करते हैं।

दानवों के कमरे के पूर्वकोने में दालान है। उत्सव होने पर इसी दालान में खाना–पीना होता है। दालान के ठीक उत्तर में रसोई है।

ठाकुर के मन्दिर और काली तपस्वी के कमरे के पूर्व में बरामदा है। बरामदे के दक्षिण–पश्चिम कोने में बराहनगर की एक समिति की लाइब्रेरी का कमरा है। ये सब कमरे दोतल पर हैं। काली तपस्वी के कमरे और समिति की लाइब्रेरी के कमरे के मध्य में एकतल से दोतल पर चढ़ने वाली सीढ़ियाँ हैं। और फिर भक्तों के कमरे के उत्तर से दोतल पर जाने वाली सीढ़ियाँ भी हैं। नरेन्द्रादि मठ के भाई लोग उन्हीं सीढ़ियों से सन्ध्या के समय कभी–कभी छत पर चढ़ते हैं। वहाँ बैठकर वे लोग ईश्वर के सम्बन्ध में नाना विषयों की बातें करते हैं। कभी ठाकुर श्रीरामकृष्ण की बातें; कभी शंकराचार्य, रामानुज अथवा ईसामसीह की बातें; कभी हिन्दु दर्शन की बातें; अथवा कभी–कभी यूरोपीय दर्शनशास्त्र की बातें; वेद, पुराण, तन्त्र की बातें।

दानवों के कमरे में बैठ कर नरेन्द्र अपने देवदुर्लभ कण्ठ से भगवान का नाम–गुणगान करते हैं। शरत् अन्य–अन्य भाइयों को गाना सिखाते हैं। काली बाजा सिखाते हैं। इसी कक्ष में नरेन्द्र भाइयों के संग कितनी बार हरिनाम–संकीर्त्तन में आनन्दित होते हैं और आनन्द में एकसंग नृत्य करते हैं।

(नरेन्द्र और धर्मप्रचार— ध्यानयोग और कर्मयोग)

नरेन्द्र दानवों के कक्ष में बैठे हैं। भक्तगण बैठे हैं— चुनिलाल, मास्टर और मठ के भाई। धर्मप्रचार की कथा चली।

मास्टर *(नरेन्द्र के प्रति)*— विद्यासागर कहते हैं, मैं बेंत खाने के भय से ईश्वर की बात किसी से नहीं कहता।

नरेन्द्र— बेंत खाने का भय ?

मास्टर— विद्यसागर कहते हैं, मरने के बाद हम सब ईश्वर के पास गए। कल्पना करो, केशवसेन को यमदूत ईश्वर के निकट ले गए। केशवसेन ने संसार में अवश्य पाप–शाप किया है। जब प्रमाण मिल गया तब ईश्वर ने

शायद कह दिया, इसको पच्चीस बेंत मार! तब फिर कल्पना करो, मुझ को ले गए। मैं शायद तब केशवसेन की समाज में जाता हूँ। बहुत अन्याय किया है। उसके लिए बेंत का हुकुम हुआ। तब मैंने सम्भवत: कह दिया, केशवसेन ने मुझे जिस तरह समझाया था, उसी प्रकार मैंने कार्य किया है। तब ईश्वर ने फिर दूतों को कहा, केशवसेन को फिर दोबारा लाया जाय। आने पर हो सकता है उससे कहेंगे— तूने इसको उपदेश दिया था? तू निज तो ईश्वर के विषय में कुछ जानता नहीं, और फिर दूसरों को उपदेश देता था? अरे कौन है— इसके और पच्चीस बेंत दे। *(सब का हास्य)*।

"जभी विद्यासागर कहते हैं, अपने को ही सम्भाल नहीं सकता, और फिर औरों के लिए बेंत खाना! *(सब का हास्य)*। मैं निज ईश्वर के विषय में कुछ नहीं समझता, फिर औरों को क्या लैक्चर दूँगा?"

नरेन्द्र— जो इसको (ईश्वर को) समझा नहीं है, वह अन्य इतना कुछ कैसे समझ गया?

मास्टर— और इतना कुछ क्या?

नरेन्द्र— जो इसे ही नहीं समझा, वह दया, परोपकार कैसे समझ गया? स्कूल को कैसे समझा? स्कूल बनाकर लड़कों को विद्या सिखानी होगी, और गृहस्थ में प्रवेश करके, विवाह करके लड़के-लड़कियों का बाप होना ही ठीक है, यही फिर कैसे समझ गया?

"जो एक को ठीक समझता है, वह सब कुछ समझता है।"

> मास्टर *(स्वगत)*— ठाकुर तो चाहे कहते थे, 'जो ईश्वर को जानता है, वह सब समझता है।' फिर संसार करने, स्कूल चलाने के सम्बन्ध में विद्यासागर से कहा था, 'यह सब रजोगुण से होता है।' विद्यासागर से दया के विषय में कहा था, 'यह रजोगुण का सत्त्व है। इस रजोगुण में दोष नहीं।'

खाना खाने के बाद मठ के भाई विश्राम कर रहे हैं। मणि और चुनिलाल नैवेद्य के कमरे के पूर्व की ओर जो अन्दर की तरफ सीढ़ियाँ हैं, उसके चबूतरे के ऊपर बैठकर बातें कर रहे हैं। चुनिलाल कहते हैं, किस

प्रकार से ठाकुर के साथ दक्षिणेश्वर में उनका प्रथम दर्शन हुआ। संसार अच्छा नहीं लगता था, इसीलिए वे एक बार बाहिर चले गए थे। और तीर्थ-भ्रमण किया था, वे ही सब बातें कह रहे हैं। कुछ क्षण पश्चात् नरेन्द्र आकर पास बैठ गए। 'योगवाशिष्ठ' की बातें होने लगीं।

नरेन्द्र *(मणि के प्रति)*— और विदुरथ का चाण्डाल होना?

मणि— क्या लवण की बात कर रहे हो?

नरेन्द्र— वह! आपने पढ़ी है?

मणि—हाँ, थोड़ी-सी पढ़ी है।

नरेन्द्र— क्या, यहाँ की पुस्तक पढ़ी है?

मणि— नहीं, घर में थोड़ा पढ़ा था।

नरेन्द्र ने छोटे गोपाल से हुक्का-तम्बाकू लाने के लिए कहा। छोटे गोपाल थोड़ा ध्यान कर रहे थे।

नरेन्द्र *(छोटे गोपाल के प्रति)*— अरे, हुक्का बना रे! ध्यान क्या है रे! पहले ठाकुर-सेवा और साधु-सेवा, फिर उसके बाद ध्यान। पहले कर्म, फिर उसके बाद ध्यान। *(सब का हास्य)*।

मठ के मकान के पश्चिम में संलग्न बहुत-सी जमीन है, वहाँ पर बहुत-से पेड़-पौधे हैं। मास्टर वृक्ष के नीचे एकाकी बैठे हैं, उस समय प्रसन्न आ उपस्थित हुए। तीन का समय होगा।

मास्टर— इधर कुछ दिन कहाँ रहे तुम? तुम्हारे लिए सब चिन्तित हो गए हैं। उनसे मिल लिए? कब आए?

प्रसन्न— अभी आया हूँ, आकर मिल लिया हूँ।

मास्टर—तुम 'वृन्दावन जा रहा हूँ', लिखकर चिट्ठी छोड़ गए थे। हम महाचिन्तित हो गए थे। कितनी दूर गए थे?

प्रसन्न— कोन्नगर पर्यन्त गया था। *(दोनों का हास्य)*।

मास्टर— बैठो, कुछ बातें बताओ, सुनूँ। पहले कहाँ गए थे?

प्रसन्न— दक्षिणेश्वर-कालीबाड़ी, वहाँ पर एक रात था।

मास्टर *(सहास्य)*— हाजरा महाशय का अब क्या भाव है?

प्रसन्न— हाजरा कहता था, मुझे क्या समझते हो? *(दोनों का हास्य)*।

मास्टर *(सहास्य)*— तुम ने क्या कहा?

प्रसन्न— मैं चुप किये रहा।

मास्टर— उसके बाद?

प्रसन्न— फिर पूछा, मेरे लिए तम्बाकू लाए हो? *(दोनों का हास्य)*। काम करवा लेना चाहता है! *(हास्य)*।

मास्टर— तत्पश्चात् कहाँ गए?

प्रसन्न— क्रमश: कोन्नगर चला गया। एक जगह रात को पड़ा रहा। सोचा था और आगे चला जाऊँगा। वृन्दावन के रेल के किराये के लिए कुछ सज्जनों से पूछा कि यहाँ पर मिल सकेगा क्या?

मास्टर— वे क्या बोले?

प्रसन्न— बोले, रुपया-चवन्नी तो मिल सकेगी। इतना रेल-भाड़ा कौन देगा? *(दोनों का हास्य)*।

मास्टर— संग में क्या था?

प्रसन्न— एक आधी धोती। परमहंसदेव की छवि। छवि किसी को नहीं दिखाई।

(पिता-पुत्र संवाद, पहले माँ-बाप या पहले ईश्वर)

श्रीयुक्त शशी के पिता आए हैं। पिता मठ से लड़के को ले जाएँगे। ठाकुर श्रीरामकृष्ण के असुख के समय प्राय: नौ महीने तक शशी ने अनन्यचित्त होकर उनकी सेवा की थी। इन्होंने कॉलिज में बी०ए० तक पढ़ा था। एन्ट्रेन्स* में छात्रवृत्ति प्राप्त की थी। बाप दरिद्र ब्राह्मण हैं किन्तु साधक और निष्ठावान् हैं। यह बाप-माँ का बड़ा लड़का है। इसके ऊपर उनकी बड़ी आशा है कि यह पढ़-लिखकर रोजगार करके उनका दु:ख दूर करेगा। किन्तु भगवान को पाने के लिए इन्होंने सब त्याग कर दिया था। मित्रों से रोते-रोते कहा करते, 'क्या करूँ! मैं कुछ भी समझ नहीं सकता। हाय! माँ-बाप की कुछ भी सेवा नहीं कर पाया। वे कितनी आशा लिए थे। मेरी माँ तो गहना तक नहीं पहन पाई; मैंने कितनी साध की थी कि

---

* मैट्रिक (दसवीं क्लास)।

मैं उनको गहना पहनाऊँगा। कुछ भी नहीं हुआ। घर लौटना तो जैसे भार लगता है। गुरु महाराज ने कामिनी-कांचन त्याग करने के लिए कहा है; फिर उधर तो जाना ही नहीं!'

ठाकुर श्रीरामकृष्ण के स्वधाम-गमन कर जाने पर शशी के पिता ने सोचा था, अब लगता है लड़का घर लौट आएगा। किन्तु कुछ दिन घर रहने पर, मठ स्थापित होने के कुछ दिनों में ही, मठ में कुछ दिन आना-जाना करने के बाद, शशी फिर मठ से लौटे नहीं। जभी पिता कभी-कभी उन्हें लेने आते हैं। वे किसी तरह भी नहीं जाएँगे। 'आज पिता जी आए हैं', सुनकर शशी और एक दिशा से भाग गए, जिससे उनके संग मिलाप ही न हो।

पिता मास्टर को पहचानते हैं। उनके संग ऊपर के बरामदे में टहलते-टहलते बातें करने लगे।

पिता— यहाँ पर कर्त्ता कौन है? यह नरेन्द्र ही है जितनी भी आफत की जड़! वे तो अच्छे-भले घरों में लौट गए थे। फिर दोबारा पढ़ने-लिखने लगे थे।

मास्टर— यहाँ पर कर्त्ता कोई नहीं है; सब ही समान हैं। नरेन्द्र क्या करेंगे? अपनी इच्छा न रहे तो क्या कोई चला आता है? हम क्या एकदम घर छोड़कर आ सके हैं?

पिता— तुमने तो अच्छा किया है, भाई। दोनों ओर रख रहे हो। तुम लोग जो कर रहे हो, इससे क्या धर्म नहीं होता? यही तो हम लोगों की भी इच्छा है। यहाँ पर भी रहता रहे, वहाँ पर भी रहे। देखो ना, उसकी माता कितना रोती है!

मास्टर दु:खित होकर चुप रहे।

पिता— और साधु खोजते-खोजते इतना घूमना! मैं अच्छे साधु के पास ले जा सकता हूँ। इन्द्रनारायण के पास एक साधु आता है— बड़ा चमत्कारी है। उसी साधु को मिले ना!

(राखाल का वैराग्य— संन्यासी और नारी)

राखाल और मास्टर काली तपस्वी के कमरे के पूर्व वाले बरामदे में टहल

रहे हैं। ठाकुर और भक्तों के विषय में बातें कर रहे हैं।

राखाल *(उतावलेपन से)*— मास्टर मोशाय, आइये, हम सब ही साधना करें।

"इसीलिए तो फिर घर वापिस नहीं गया। यदि कोई कहता है, ईश्वर को तो पाया नहीं, तब फिर यह सब और क्यों? उस बात पर नरेन्द्र अच्छा कहता है, 'राम को पाया नहीं तो क्या इसलिए श्याम के संग घर बनाना होगा; और बाल-बच्चों का बाप होना होगा?' आहा! नरेन्द्र एक-एक बढ़िया बात कहता है, आप चाहे पूछना।

मास्टर— वह तो ठीक बात है। राखाल बाबू, तुम्हारा भी देख रहा हूँ, मन खूब व्याकुल हुआ है।

राखाल— मास्टर मोशाय, क्या कहूँ? दोपहर को नर्मदा पर जाने के लिए प्राण खूब व्याकुल हुआ था। मास्टर मोशाय, साधना करें, नहीं तो फिर कुछ नहीं होगा। देखिए ना, शुकदेव को भी भय है। जन्मग्रहण करते ही पलायन! व्यासदेव ठहरने को कहते हैं, वे नहीं ठहरते।

मास्टर— 'योगोपनिषद्' की बात है। माया के राज्य से शुकदेव भाग रहे थे। हाँ, व्यास और शुकदेव की अच्छी कथावार्ता है। व्यास संसार में रहकर धर्म करने के लिए कह रहे हैं। शुकदेव कहते हैं, हरिपादपद्म ही सार है। और गृहस्थियों का विवाह करके स्त्री के संग वास, इसमें घृणा प्रकाश कर रहे हैं।

राखाल— बहुत-से सोचते हैं, स्त्री को न देखने से ही हो गया। स्त्री देखकर गर्दन नीची करने से क्या होगा? नरेन्द्र ने कल रात सुन्दर कहा, जब तक मुझे काम (वासना) है, तब तक ही स्त्री है; वह न हो तो स्त्री-पुरुष-भेद-बोध नहीं रहता।

मास्टर— ठीक बात है। बच्चों को लड़का-लड़की-बोध नहीं होता।

राखाल— जभी कहता हूँ, हम लोगों को साधना चाहिए। मायातीत बिना हुए किस तरह ज्ञान होगा? चलो, बड़े कमरे में चलें; बराहनगर से कितने सारे सज्जन आए हैं। नरेन्द्र उनसे क्या कह रहे हैं, चलो, चलकर सुनें।

(नरेन्द्र और शरणागति (Resignation))

नरेन्द्र बातें कर रहे हैं। मास्टर भीतर नहीं गए। बड़े कमरे के पूर्व की ओर वाले दालान में टहलते-टहलते कुछ-कुछ सुन पाए हैं।

नरेन्द्र कह रहे हैं—

''सन्ध्या आदि कर्मों का स्थान, समय नहीं होता।''

एक सज्जन— अच्छा मोशाय, साधना करने पर उन्हें प्राप्त किया जाता है?

नरेन्द्र— उनकी कृपा। गीता में है—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥*

''उनकी कृपा न हो, तो साधन-भजन से कुछ नहीं होता। जभी तो उनके शरणागत होना चाहिए।''

सज्जन— हम कभी-कभी आकर तंग करेंगे।

नरेन्द्र— आप जब इच्छा हो, आएँ।

''आप के वहाँ गंगा के घाट पर हम नहाने जाते हैं!''

सज्जन— उसमें आपत्ति नहीं, किन्तु अन्य लोग न जाएँ।

नरेन्द्र— यदि आप कहें, तो हम नहीं आएँगे।

सज्जन— नहीं, वैसा नहीं— किन्तु यदि देखें कि अनेक जन जा रहे हैं, तब तो फिर न जाएँ।

---

* हे अर्जुन, शरीररूप यंत्र में आरूढ़ हुए सम्पूर्ण प्राणियों को अन्तर्यामी परमेश्वर अपनी माया से (उनके कर्मों के अनुसार) भ्रमाता हुआ सब भूत-प्राणियों के हृदय में स्थित है।

हे भारत! सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही अनन्य शरण को प्राप्त हो। उस परमात्मा की कृपा से ही परम शान्ति को और सनातन परमधाम को प्राप्त होगा।]

— गीता 18:61-62

(आरती और नरेन्द्र का गुरुगीता-पाठ)

सन्ध्या के बाद आरती हुई। भक्तगण फिर हाथ जोड़कर 'जय शिव ॐकार' समस्वर से गाते-गाते भगवान का स्तव करने लगे। आरती हो जाने पर भक्तगण दानवों के कमरे में जाकर बैठ गए। मास्टर बैठे हैं। प्रसन्न गुरुगीता पाठ करके सुनाने लगे। नरेन्द्र आकर स्वयं सुर करके पाठ करने लगे। नरेन्द्र गा रहे हैं—

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम्।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम्॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षीभूतम्।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥

[अर्थ— ब्रह्मानन्द-स्वरूप, परम सुख देने वाले, केवल ज्ञान-स्वरूप, सुख-दुखादि द्वन्द्वों से परे, गगन सदृश, 'तत्त्वमसि' (तुम वही ब्रह्म हो) आदि उपनिषद्-वाक्यों से लक्षित, एक, नित्य, निर्मल, अचल, सब की बुद्धि में साक्षी रूप से विद्यमान, भावों से अतीत, तीनों गुणों से शून्य उस सद्गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ।]

और फिर गा रहे हैं—

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं । शिवशासनत: शिवशासनत: ॥
श्रीमत् परं ब्रह्मगुरुं वदामि । श्रीमत् परं ब्रह्मगुरुं भजामि ॥
श्रीमत् परं ब्रह्मगुरुं स्मरामि। श्रीमत् परं ब्रह्मगुरुं नमामि ॥

[अर्थ— शिव ने घोषणा की है कि गुरु से बढ़कर कुछ नहीं है। इसलिए मैं ब्रह्मरूपी गुरु के विषय में ही बोलूँगा, उसी का भजन करूँगा, उसे ही स्मरण करूँगा और उसी को बारम्बार प्रणाम करूँगा।]

नरेन्द्र सुर करके गुरुगीता-पाठ कर रहे हैं। और भक्तों के मन मानो निवातनिष्कम्प दीपशिखा की न्यायीं स्थिर हो गए हैं। सत्य, सत्य ही ठाकुर कहते, सुमधुर वंशीध्वनि सुनकर साँप जैसे फण उठाकर स्थिर हो जाता है, नरेन्द्र के गाने पर हृदय के बीच में जो हैं, वे भी उसी प्रकार चुप रहकर सुनते हैं।

आहा! मठ के भाइयों की कैसी गुरुभक्ति!

(ठाकुर श्रीरामकृष्ण का प्यार और राखाल)

काली तपस्वी के कमरे में राखाल बैठे हुए हैं। पास ही प्रसन्न हैं। मास्टर भी उसी कमरे में हैं।

राखाल सन्तान और स्त्री-त्याग करके आ गए हैं। अन्तर में तीव्र वैराग्य है, 'एकाकी नर्मदातीर पर या किसी और स्थान पर चला जाऊँ' केवल यही चिन्ता करते हैं। फिर भी प्रसन्न को समझा रहे हैं।

राखाल *(प्रसन्न के प्रति)*— कहाँ भाग-भागकर जाता है! यहाँ साधुसंग है। इसे छोड़कर जाना! फिर नरेन जैसे व्यक्ति का संग! इसे छोड़कर कहाँ जाएगा?

प्रसन्न— कलकत्ता में बाप-माँ हैं। भय होता है कि कहीं पीछे उन का प्यार मुझे खींच न ले जाए; तभी दूर भागना चाहता हूँ।

राखाल— गुरु महाराज जैसा प्यार करते, वैसा क्या बाप-माँ करते हैं? हम ने उनका क्या किया है जो इतना प्यार! क्यों हमारे देह-मन-आत्मा के मंगल के लिए वे इतने बेचैन थे? हमने उनका क्या किया है?

मास्टर *(स्वगत)*— आहा, राखाल ठीक कहते हैं। जभी तो उन्हें कहते हैं, अहेतुक कृपासिंधु।

प्रसन्न— तुम्हारी क्या बाहिर जाने की इच्छा नहीं होती?

राखाल— मन में विचार आता है कि कुछ दिन जाकर नर्मदा के तीर पर रहूँ। कभी-कभी सोचता हूँ, वैसे ही किसी स्थान पर किसी बाग में जाकर रहूँ, और कुछ साधन करूँ। विचार उठता है, तीन दिन पंचतपा करूँ। किन्तु गृहस्थी के बाग में जाने को मेरा मन नहीं है।

(क्या ईश्वर हैं?)

दानवों के कक्ष में तारक और प्रसन्न बातें कर रहे हैं। तारक की माँ नहीं है। पिता ने राखाल के पिता की तरह दूसरा विवाह कर लिया है। तारक ने भी विवाह किया था, किन्तु पत्नी-वियोग हो गया है। अब तो मठ ही तारक का घर है, तारक भी प्रसन्न को समझाते हैं।

प्रसन्न— न हुआ ज्ञान, न हुआ प्रेम; क्या लेकर रहा जाए?

तारक— ज्ञान होना तो कठिन चाहे है, किन्तु प्रेम कैसे नहीं हुआ?

प्रसन्न— क्रन्दन नहीं कर सका, तो प्रेम कैसे होगा? और इतने दिनों में फिर हुआ भी क्या?

तारक— क्यों, परमहंस महाशय को तो देख लिया है। और फिर ज्ञान भी क्यों नहीं होगा?

प्रसन्न— क्या ज्ञान होगा? ज्ञान का अर्थ तो जानना है। क्या जानेगा? भगवान हैं भी या नहीं, यही निश्चय नहीं है।

तारक— हाँ, यह तो है, ज्ञानी के मत में नहीं हैं।

मास्टर *(स्वगत)*— आहा, प्रसन्न की जो अवस्था है! ठाकुर कहा करते, जो भगवान को चाहते हैं, उनकी ऐसी अवस्था हो जाती है। कभी-कभी लगने लगता है कि भगवान हैं या नहीं। तारक, लगता है, इस समय बौद्धमत-आलोचना करते हैं, जभी 'ज्ञानी के मत में ईश्वर नहीं हैं'— कह रहे हैं। किन्तु ठाकुर कहा करते, ज्ञानी और भक्त एक जगह पर पहुँचेंगे।

द्वितीय परिच्छेद

(मठ के भाइयों के साथ नरेन्द्र— नरेन्द्र के अन्तर की वाणी)

ध्यान का कक्ष अर्थात् काली तपस्वी का कमरा, नरेन्द्र और प्रसन्न बातें कर रहे हैं। कमरे के एक तरफ राखाल, हरीश और छोटे गोपाल हैं। सबके अन्त में बूढ़े गोपाल आ गए।

नरेन्द्र गीता-पाठ कर रहे हैं और प्रसन्न को सुना रहे हैं—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढाणि मायया॥
तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात् परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥*

नरेन्द्र— देखा, 'यंत्रारूढ़'?— 'भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढाणि मायया?' ईश्वर को जानना चाहता है! तू कीटस्य कीट है, तू क्या उनको जान पाएगा! एक बार सोच कर देख, मनुष्य क्या है! यही जो असंख्य तारे देख रहा है, सुना है, एक-एक solar system (सौर जगत) हैं। हमारे लिए एक ही solar system है, उसी से रक्षा नहीं है। पृथ्वी की सूर्य के साथ तुलना कर लेने पर अति सामान्य एक गेंद जैसी लगती है, उसी पृथ्वी पर यह मनुष्य ऐसे घूमता है जैसे एक कीड़ा!

नरेन्द्र गा रहे हैं —

(तुम पिता हो हम अति शिशु)

पृथ्वीर धुलिते देव मोदेर जनम,
पृथ्वीर धुलिते अन्ध मोदेर नयन॥
जन्मियाछि शिशु होये खेला करि धुलि लये,
मोदेर अभय दाओ दुर्बल-शरण॥
एकबार भ्रम हो'ले आर कि लबे ना कोले,
अमनि कि दूरे तुमि करिबे गमन?
ता होले जे आर कभु, उठिते नारिबो प्रभु,
भूमितले चिर दिन रबो अचेतन॥
आमरा जे शिशु अति, अति क्षुद्र मन,
पदे पदे होय पिता! चरण स्खलन॥
रुद्रमुख केनो होबे, देखाओ मोदेर सबे,
केनो हेरि माझे माझे भृकुटि भीषण॥
क्षुद्र आमादेर परे करिओ ना रोष,
स्नेह वाक्ये बोलो पिता कि करेछि दोष॥
शतबार लओ तुले, शतबार पड़ि भुले,
कि आर करिते पारे दुर्बल जे जन॥

* गीता— 18 : 61, 62, 66

[भावार्थ— हे देव, पृथ्वी की धूलि में हमारा जन्म हुआ है और यहाँ की धूलि से ही हमारी आँखें अन्धी हैं। हे प्रभु, दुर्बल-शरण! हम शिशु बन कर जन्मे हैं ताकि इस धूलि को लेकर हम खेलें— आप हमें अभय दें। हम से एक बार भ्रम हो जाने पर क्या आप फिर हमें अंक में नहीं उठाओगे और क्या ऐसे ही दूर चले जाओगे? तो फिर क्या हे प्रभु, हम भूमि पर सदा-सदा अचेतन पड़े रहेंगे और कभी भी नहीं उठेंगे? हम तो अति शिशु हैं, और हमारा मन अति छोटा है। पद-पद पर हे पिता! हमारा चरण फिसल जाता है। आप इसीलिए क्यों हमें रोषपूर्ण मुख दिखाते हो? क्यों हम बीच-बीच में आपकी भीषण भृकुटि देखते हैं? पिता! हम छोटे हैं, आप हम पर रोष न करो; और स्नेह से हमारा दोष बताओ। हम भूल से यदि सौ बार गिरते हैं तो आप हमें सौ बार उठा लें। हम तो दुर्बल हैं, हम और कर भी क्या सकते हैं?]

"पड़ा रह! उनका शरणागत हुआ पड़ा रह!"

नरेन्द्र मानो आविष्ट होकर फिर और गा रहे हैं—

(उपाय— शरणागति)

प्रभु मैं गुलाम, मैं गुलाम, मैं गुलाम तेरा।
तू दयावान, तू दयावान, तू दयावान मेरा॥
दो रोटी एक लंगोटी, तेरे पास मैं पाया।
भगति भाव और दे नाम तेरा गावाँ॥
तू दयावान मेहरबान नाम तेरा मीराँ।
अब की बार दे दीदार मेहर कर फकीराँ॥
तू दयावान मेहरबान नाम तेरा बारेया।
दास कबीर शरण में आया चरण लागे तारेया॥

"उनकी बात क्या स्मरण नहीं है? ईश्वर तो चीनी का पहाड़ है। तू चींटी है, एक दाने से तेरा पेट भर जाता है। तू मन में सोचता है, सारा पहाड़ घर ले जाऊँगा। वे कहते हैं, याद नहीं क्या, शुकदेव, हद्द है एक बड़ा चिऊँटा है? जभी तो काली से कहता हूँ— साला! गज, फीता लेकर ईश्वर को मापेगा?

"ईश्वर दया के सिन्धु हैं, उनकी शरणागत होकर रह; वे कृपा करेंगे।

उनसे प्रार्थना कर—

"यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्—"

"असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय॥
मृत्योर्माऽमृतं गमय। आविराविर्म एधि॥
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं। तेन मां पाहि नित्यम्॥"

[भावार्थ— हे प्रभु! आप मुझे असत् से सत् की ओर, अन्धकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो। यह सत्य मेरे अन्तःकरण में प्रकट हो जाए! हे रुद्र, जो तुम्हारा कल्याणकारी मुख है, उसके द्वारा मेरी सदा रक्षा करना।]

प्रसन्न— क्या साधन किया जाए?

नरेन्द्र— केवल उनका नाम कर। ठाकुर का गाना याद नहीं?

(उपाय— उनका नाम)

(1) नामेरि भरोसा केवल श्यामा गो तोमार।
काज कि आमार कोशाकुशि, देंतोर हासि लोकाचार॥
नामेते काल-पाश काटे, जटे ता दियेछे रटे।
आमि तो सेइ जटेर-मुटे, होयेछि आर होबो कार॥
नामेते जा होबार होबे, मिछे केनो मरि भेबे,
नितान्त करेछि शिवे, शिवेरि बचन सार॥

[भावार्थ— हे श्यामा माँ, केवल तुम्हारे नाम का ही भरोसा है। क्या मेरा काम कोशाकुशि लेकर पूजा करना, या दाँत निकालकर हँसते हुए लैक्चर देना है? नाम से काल का बन्धन कटता है। शिव जटाधारी ने इसी को प्रचारित किया है। मैं तो उसी जटाधारी शिव का ही दास (मजदूर) हो गया हूँ, अब और किसका दास बनूँ? नाम से ही जो होना होगा, हो जाएगा। मैं क्यों मिथ्या चिन्ता करके मरूँ? मैंने तो केवल शिव को, और शिव के वचन को सार बना लिया है।]

(2) आमरा जे शिशु अति, अति क्षुद्र मन।
पदे पदे होय पिता चरण-स्खलन॥

[भवार्थ— हम तो अति शिशु हैं और हमारा मन अति छोटा है। पद-पद पर हे पिता! हमारे चरण फिसल जाते हैं।]

(ईश्वर क्या हैं ? ईश्वर क्या दयामय ?)

प्रसन्न— तुम कहते हो ईश्वर हैं। और फिर तुम्हीं तो कहते हो चार्वाक और अन्य बहुत-से कह गए हैं कि यह जगत अपने-आप बना है।

नरेन्द्र— Chemistry (रसायन विद्या) नहीं पढ़ी ? अरे combination (मेल) कौन करता है ? जैसे जल तैयार करने के लिए oxygen, hydrogen और electricity (ऑक्सीजन, हाइड्रोजन और इलैक्ट्रिसिटी) इत्यादि human hand (मनुष्य) ही तो एकत्र करता है।

"Intelligent force (बुद्धि-शक्ति) को सब ही मानते हैं। ज्ञानस्वरूप एक ही हैं, जो यह सब व्यापार चलाते हैं।"

प्रसन्न— दया है, कैसे समझूँ ?

नरेन्द्र— 'यत्ते दक्षिणम् मुखम्' वेद में है।

"John Stuart Mill (जॉन स्टुअर्ट मिल) ने भी यही बात कही है। जिन्होंने मनुष्य के भीतर यह दया दी है, न जाने उनके भीतर कितनी दया है !— Mill (मिल) यह बात कहते हैं। वे (ठाकुर) तो कहते, 'विश्वास ही सार'। वे तो निकट ही रहते हैं। विश्वास करने से ही हो जाता है।

यह कहकर नरेन्द्र फिर और मधुर कण्ठ से गाते हैं—

(उपाय— विश्वास)

मोको कहाँ ढूँढ़े रे बन्दे मैं तो तेरे पास में।
ना होऊँ मैं झग्ड़ि बिगड़ि में, ना छुरि गंढास में
ना होऊँ मैं खाल-रोम में, ना हड्डी ना माँस में॥

ना देवल में, ना मसजिद् में, ना काशी-कैलास में
ना होऊँ मैं अवध द्वारका मेरी भेंट विश्वास में॥

ना होऊँ मैं किरिया करम में, ना योग-वैराग-संन्यास में
खोजेगा तो अभी मिलूँगा, पल भर की तलाश में॥

शहर से बाहिर डेरा हमारा, कुटिया मेरी मौयास* में।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सब सन्तन के साथ में॥

(वासना रहने से ईश्वर में अविश्वास होता है)

प्रसन्न— तुम कभी तो कहते हो, भगवान नहीं हैं; और फिर अब ये सब बातें कह रहे हो! तुम्हारी बात का निश्चय नहीं है, तुम प्राय: मत बदलते हो। *(सब का हास्य)*।

नरेन्द्र— यह बात अब कभी भी नहीं बदलूँगा कि जब तक कामना-वासना है, तब तक ईश्वर पर अविश्वास होता है। एक न एक कामना रहती ही है। हो सकता है, भीतर ही भीतर पढ़ने की इच्छा है— पास करूँगा या पण्डित बनूँगा— ऐसी कामनाएँ।

नरेन्द्र भक्ति से गद्गद् होकर गाना गाने लगे—

'तिनि शरणागत वत्सल, परम पिता माता'।
जय देव जय देव जय मंगलदाता, जय जय मंगलदाता।
संकट-भय-दुख त्राता, विश्वभुवनपाता, जय देव जय देव॥

अचिन्त्य अनन्त अपार, नाइ तव उपमा प्रभु, नाहि तव उपमा।
प्रभु विश्वेश्वर व्यापक विभु चिन्मय परमात्मा, जय देव जय देव॥

जय जगवन्द्य दयाल, प्रणमि तव चरणे, प्रभु प्रणमि तव चरणे।
परम शरण तुमि हे, जीवने मरणे, जय देव जय देव॥

कि आर जायिबो आमरा करि हे ए मिनति, प्रभु करि हे ए मिनति।
ए लोके सुमति देओ, परलोके सुगति, जय देव जय देव॥

[भावार्थ— वे 'शरणागत वत्सल हैं, परम पिता माता' हैं।
जय देव, जय देव, जय मंगलदाता, जय जय मंगलदाता! संकट-भय-दु:ख को दूर करने वाला, विश्वभुवन की रक्षा करने वाला, जय देव, जय देव! आप अचिन्त्य, अनन्त, अपार हैं, आपकी उपमा नहीं है प्रभु! हे प्रभु, विश्वेश्वर, व्यापक, विभु, चिन्मय परमात्मा, जय देव! जय देव! हे प्रभु, जगत-वन्द्य दयाल, तुम्हारी जय हो। मैं तुम्हारे चरणों में प्रणाम करता हूँ, प्रणाम करता हूँ। जीवन-मरण में परम शरण आप ही हैं, जय देव, जय देव!

---

* मौयास = मवास, आश्रम, शरण, त्राणस्थल

हे प्रभु, हम लोग विनति करके आप से और क्या माँगें? आप इस लोक में सुमति दो और परलोक में सुगति दो, जय देव, जय देव!]

नरेन्द्र ने और भी गाया। भाइयों को हरिरस-प्याला पान करने के लिए कह रहे हैं। ईश्वर बहुत ही निकट हैं— जैसे मृग की कस्तूरी—

पी ले रे अवधूत हो मतवारा, प्याला प्रेम हरिरस का रे।
बाल अवस्था खेल गँवाई, तरुण भयो नारी बस का रे।
वृद्ध भयो कफ वायु ने घेरा, खाट पड़ा रहे नहीं जाय बस का रे।
नाभि कमल में है कस्तूरी, कैसे भ्रम मिटे पशु का रे।
बिना सद्गुरु नर ऐसे ही ढूँढ़े, जैसे मृग फिरे वन का रे।

मास्टर बरामदे से ये समस्त गाने सुन रहे हैं।

नरेन्द्र उठे। कमरे से निकलते हुए कह रहे हैं, मेरा तो सिर गरम हो गया है बकते-बकते! बरामदे में मास्टर को देखकर बोले, "मास्टर महाशय, कुछ जल पिएँ!"

मठ के एक भाई नरेन्द्र से कहते हैं, "फिर तुम जो कहते हो भगवान नहीं हैं!" नरेन्द्र हँसने लगे।

(नरेन्द्र का तीव्र वैराग्य— नरेन्द्र की गृहस्थाश्रम-निन्दा)

अगला दिन सोमवार 9 मई। मास्टर प्रात:काल मठ के बाग में वृक्ष के नीचे बैठे हैं। मास्टर सोच रहे हैं, "ठाकुर ने मठ के भाइयों का कामिनी-कांचन-त्याग करवा लिया है। आहा, ये सब ईश्वर के लिए कैसे व्याकुल हैं! यह स्थान तो मानो साक्षात् वैकुण्ठ है। मठ के भाई सब मानो साक्षात् नारायण हैं। ठाकुर को गए अधिक दिन नहीं हुए; जभी वही समस्त भाव प्राय: स्थिर है।

"वही अयोध्या! केवल राम नहीं!

"इन लोगों का उन्होंने गृहत्याग करवा लिया। कुछ जनों को उन्होंने गृह में रखा हुआ है, क्यों? इसका क्या कोई उपाय नहीं है?"

नरेन्द्र ऊपर के कमरे से देख रहे हैं— मास्टर एकाकी वृक्षतले बैठे हैं।

उतर कर आकर हँसते-हँसते कहते हैं, ''क्यों मास्टर महाशय! क्या हो रहा है? कुछ बातें हो जाने पर मास्टर कहते हैं, ''आहा, तुम्हारा क्या सुर है! कोई एक स्तव बोलो।''

नरेन्द्र सुर करके अपराधभंजन स्तव कहते हैं। गृहस्थ लोग ईश्वर को भूले हुए हैं— कितना अपराध करते हैं— बाल्यावस्था में, प्रौढ़ावस्था में, वार्धक्य में! क्यों वे कायमनोवाक्य से भगवान की सेवा अथवा चिन्तन नहीं करते?—

बाल्ये दु:खातिरेको मललुलितवपु: स्तन्यपाने पिपासा,
नो शक्तश्चेन्द्रियेभ्यो भवगुणजनिता: जन्तवो मां तुदन्ति।
नानारोगोत्थदु:खाद् रुदनपरवश: शंकरं न स्मरामि,
क्षन्तव्यो मेऽपराध: शिव शिव शिव भो श्रीमहादेव शम्भो॥

प्रौढ़ोऽहं यौवनस्थो विषयविषधरै: पंचभिर्मर्म सन्धौ
दष्टो नष्टो विवेक: सुत-धन-युवतीस्वादसौख्ये निषण्ण:।
शैवीचिन्ताविहीनं मम हृदयमहो मानगर्वाधिरूढ़ं
क्षन्तव्यो मेऽपराध: शिव शिव शिव भो श्रीमहादेव शम्भो॥

वार्धक्ये चेन्द्रियाणां विगतगतिमतिश्चाधिदैवादितापै:,
पापै: रोगैर्वियोगैस्तनवसितवपू: प्रौढ़िहीनं च दीनम्॥
मिथ्यामोहभिलाषैर्भ्रमति मम मनो धूर्ज्जटेर्ध्यानशून्यम्
क्षन्तव्यो मेऽपराध: शिव शिव शिव भो श्रीमहादेव शम्भो॥

स्नात्वा प्रत्यूषकाले स्नपनविधिविधौ नाहृतं गांगतोयम्
पूजार्थं वा कदाचिद्बहुतरगहनात् खण्डबिल्वीदलानि।
नानीता पद्ममाला सरसि विकसिता गन्धपुष्पे त्वदर्थम्।
क्षन्तव्यो मेऽपराध: शिव शिव शिव भो श्रीमहादेव शम्भो॥

गात्रं भस्मसितं सितं च हसितं हस्ते कपालं सितम्
खट्वांगं च सितं सितश्च वृषभ: कर्णे सिते कुण्डले।
गंगाफेनसिता जटा पशुपतेश्चन्द्र: सितो मूर्धनि,
सोऽयं सर्वसितो ददातु विभवं पापक्षयं सर्वदा॥ इत्यादि

[भावार्थ— बाल्यावस्था में दु:ख की अधिकता रहती थी, शरीर मल-मूत्र से लिथड़ा रहता था और निरन्तर स्तनपान की लालसा रहती थी, इन्द्रियों में कोई कार्य करने की सामर्थ्य न

थी, आप की माया से उत्पन्न नाना जन्तु मुझे काटते थे, नाना रोगादि दु:खों के कारण मैं रोता ही रहता था, मैं परवश था, उस समय भी मुझ से शंकर का स्मरण नहीं बना, इसलिए हे शिव! हे शंकर, हे महादेव, हे शम्भो, मेरा अपराध क्षमा करो।

जब मैं युवा अवस्था में आकर प्रौढ़ हुआ तो पाँच विषयरूपी सर्पों ने मेरे मर्मस्थानों में डंसा, जिससे मेरा विवेक नष्ट हो गया और मैं धन, स्त्री, सन्तान के सुख भोगने में लग गया। उस समय भी आपका चिन्तन भूलकर मेरा हृदय बड़े घमण्ड और अभिमान से भरा रहा। इसलिए हे शिव! हे महादेव! हे शंकर! हे शम्भो! अब मेरा अपराध क्षमा करो! क्षमा करो।

वृद्धावस्था में भी जब इन्द्रियों की गति शिथिल हो गई, बुद्धि मन्द पड़ गई और आधिदैविकादि तापों, पापों, रोगों और वियोगों से शरीर जर्जरित हो गया है, (तब भी) मेरा मन मिथ्या मोह और अभिलाषाओं से दुर्बल और दीन होकर (आप) श्री महादेव के चिन्तन से शून्य हो भ्रम रहा है। इसलिए हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! अब मेरा अपराध क्षमा करो। क्षमा करो।

प्रात:काल स्नान करके आप का अभिषेक करने के लिए मैं गंगा-जल लेकर प्रस्तुत नहीं हुआ, कभी आपकी पूजा के लिए वन से बिल्वपत्र नहीं लाया और न ही तालाब में खिले हुए कमलों की माला तथा गन्ध-पुष्प ही लाकर आपको अर्पण किए। अत: हे शिव! हे शंकर! हे महादेव! हे शम्भो! मेरा अपराध क्षमा करो। क्षमा करो।

शरीर भस्मलेपन से श्वेत, शुभ्र (विशद) हँसी, हाथ में सफेद नरमुण्डमाला, सफेद दण्ड, सफेद बैल, कानों में सफेद कुण्डल, गंगा की झाग से सफेद जटाएँ और मस्तक पर सफेद चन्द्रमा— इस प्रकार सब तरह से शुभ्र बने हे भगवान शंकर! आप हमेशा पाप का नाश करें एवं समृद्धि लाएँ।]

स्तव पाठ हो गया। फिर कथावार्ता हो रही है।

नरेन्द्र— निर्लिप्त संसार कहें और कुछ भी कहें, कामिनी-कांचन-त्याग बिना किए नहीं होगा। स्त्री-संग में सहवास करते हुए घृणा नहीं होती? जिस स्थान पर कृमि, कफ, मेद, दुर्गन्ध है—

अमेध्यपूर्णे कृमिजालसंकुले स्वभावदुर्गन्धि विनिन्दितान्तरे।
कलेवरे मूत्रपुरीषभाविते रमन्ति मूढ़ा विरमन्ति पण्डिता:॥

"वेदान्तवाक्यों में जो रमण नहीं करता, हरिरसकथा की मदिरा जो नहीं पान करता उसका जीवन वृथा ही है—

ॐकारमूलं परमं पदान्तरं गायत्रीसावित्रीसुभाषितान्तर:।
वेदान्तरं यं पुरुषो न सेवते वृथान्तरं तस्य नरस्य जीवनम्॥"

''एक गाना सुनो—

छोड़ मोह— छाड़रे कुमंत्रणा, जानो तांरे तबे जाबे यंत्रणा।
चारिदिनेर सुखेर जन्य, प्राणसखारे भुलिले, ए कि विडम्बना॥

[भावार्थ— मोह छोड़ो, उलटा विचार छोड़ो, उनको जान लो, तभी कष्ट दूर होगा। चार दिन के सुख के लिए, प्राणसखा को भूल गए हो, यह कैसी विडम्बना है!]

''कौपीन पहने बिना अन्य उपाय नहीं है। संसार-त्याग।''

यह कहकर फिर सुर से कौपीनपंचकम् बोलते हैं—

वेदान्तवाक्येषु सदा रमन्तो, भिक्षान्नमात्रेण च तुष्टिमन्तः।
अशोकमन्तःकरणे चरन्तः कौपीनवन्तः खलु भाग्यवन्तः॥ इत्यादि*

नरेन्द्र फिर कह रहे हैं—

''मनुष्य क्यों संसार में बद्ध होगा, क्यों माया में बद्ध होगा? मनुष्य का स्वरूप क्या है?— 'चिदानन्दरूपः शिवोऽहम्'— मैं ही वह सच्चिदानन्द हूँ।''

और फिर सुर से शंकराचार्य का स्तव बोल रहे हैं—

ॐमनोबुद्धियहंकारचित्तानि नाहं न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
न च व्योमभूमिर्न तेजो न वायुश्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

नरेन्द्र और एक स्तव, वासुदेव अष्टक सुर से बोल रहे हैं—

हे मधुसूदन! मैं तुम्हारी शरणगत हूँ; मुझ पर कृपा करके काम, निद्रा, पाप, मोह, स्त्रीपुत्र के मोहजाल, विषयतृष्णा से बचाओ और पादपद्मों में भक्ति दो।

ॐमिति ज्ञानरूपेण रागाजीर्णेन जीर्य्यतः।
कामनिद्रां प्रपन्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन॥

न गतिर्विद्यते नाथ त्वमेकः शरणं प्रभो।
पापपंके निमग्नोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन॥

मोहितो मोहजालेन पुत्रदारगृहादिषु।
तृष्णया पीड्यमानोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन॥

भक्तिहीनं च दीनं च दुःखशोकातुरं प्रभो।
अनाश्रयमनाथं च त्राहि मां मधुसूदन॥

---

* सम्पूर्ण गान तथा भावार्थ के लिए इसी ग्रन्थ का पृष्ठ 360-361 देखिए।

गतागतेन श्रान्तोऽस्मि दीर्घसंसारवर्त्मसु।
पुनर्नागन्तुमिच्छामि त्राहि मां मधुसूदन॥

बहवोऽपि मया दृष्टं योनिद्वारं पृथक् पृथक्।
गर्भवासे महद्दुखं त्राहि मां मधुसूदन॥

तेन देव प्रपन्नोऽस्मि नारायण परायणः।
जगत संसार मोक्षार्थं त्राहि मां मधुसूदन॥

वाचयामि यथोत्पन्नं प्रणमामि तवाग्रतः।
जरामरणभीतोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन॥

सुकृतं न कृतं किञ्चित् दुष्कृतं च कृतं मया।
संसारे पापपंकोऽस्मि त्राहि मां मधुसूदन॥

देहान्तरसहस्राणामान्योन्यं च कृतं मया।
कर्त्तृत्वं च मनुष्याणां त्राहि मां मधुसूदन॥

वाक्येन यत् प्रतिज्ञातं कर्मणा नोपपादितम्।
सोऽहं देव दुराचारस्त्राहि मां मधुसूदन॥

यत्र तत्र हि जातोऽस्मि स्त्रीषु वा पुरुषेषु वा।
तत्र तत्राचला भक्तिस्त्राहि मां मधुसूदन॥

[भावार्थ— 'ॐ'-ज्ञान से तो रागों के कारण जीर्ण मनुष्य की भी आसक्ति निर्बल हो जाती है। किन्तु मैं तो कामनिद्रा में डूबा हूँ। इसलिए हे मधुसूदन! मेरी रक्षा करो।

हे नाथ, तुम्हीं मेरी एकमात्र शरण हो, कोई और चारा ही नहीं है। मैं पाप के कीचड़ में धँसा हूँ, इसलिए हे मधुसूदन! मेरी रक्षा करो।

मैं पुत्र-पत्नी-गृह आदि के मोहजाल में मुग्ध हूँ और तृष्णाएँ मुझे पीड़ित कर रही हैं। हे मधुसूदन! मैं भक्तिहीन, दीन, दुःख और शोक से आतुर, आश्रय-रहित, अनाथ हूँ। हे मधुसूदन! मेरी रक्षा करो।

इस लम्बे संसार के मार्ग पर पुनः पुनः जन्म-मरण से मैं थक चुका हूँ और फिर इस संसार में नहीं आना चाहता, इसलिए हे मधुसूदन! मेरी रक्षा करो।

बार-बार के जन्म से मैंने योनिद्वार अनेक बार देखा है और गर्भ-वास में तो महद् दुःख है। इसलिए हे देव नारायण, मैं तुम्हारी शरण हूँ। संसार से मुक्ति देकर मेरी रक्षा करो।

जरा-मरण से डरा हुआ मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ। मैंने अच्छे कर्म नहीं किए, दुष्कर्म ही किए, इसलिए मैं संसार के पाप-पंक में धँसा हूँ। हे मधुसूदन! मेरी रक्षा करो।

सहस्र जन्म लेकर भी मनुष्य-जन्मोचित कर्त्तव्य मैंने नहीं किए, मुँह से प्रतिज्ञा करके भी आचरण में उसे पूरा नहीं किया, इसलिए हे देव! मैं दुराचारी हूँ, मेरी रक्षा करो।

जब-जब भी मैं नर या नारी रूप में जन्मूँ, तो हे प्रभु! तुम्हारे चरणों में मेरी अचला भक्ति हो! हे मधुसूदन! मेरी रक्षा करो।]

मास्टर *(स्वगत)*— नरेन्द्र का तीव्र वैराग्य! जभी मठ के भाइयों की सब की ही ऐसी अवस्था है। इन्हें देखकर ठाकुर के भक्तों में से जो अब भी संसार में हैं, उनमें केवल कामिनी-कांचन-त्याग की बात का ही उद्दीपन होता है। आहा, इनकी कैसी अवस्था है! उन कुछ जनों को उन्होंने संसार में क्यों रखा हुआ है? क्या वे (श्रीरामकृष्ण) कोई उपाय करेंगे? क्या वे तीव्र वैराग्य देंगे; अथवा उन्हें संसार में ही भुलाए रखेंगे?

आज नरेन्द्र तथा और भी दो-एक भाई आहार के उपरान्त कलकत्ता गए। फिर रात को नरेन्द्र लौटेंगे। नरेन्द्र के घर का मुकदमा अभी तक समाप्त नहीं हुआ। मठ के भाई नरेन्द्र का अदर्शन सहन नहीं कर सकते। सब ही सोच रहे हैं, नरेन्द्र कब लौटेंगे।